देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642
June 2025
Vol.-21, Issue-6(1)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

पर्यावरण मुद्दों के उभरते आयाम

Editor-in-Chief :
Dr. Komal Singh

Editor :
Dr. Naresh Kumar Sihag

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 21 **ISSUE-6(1)** **(जून 2025)** **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

विशेषांक सम्पादक :

डॉ. कोमल सिंह

प्राचार्य, श्री गुरू माधवानन्द प्रतिभा महाविद्यालय,
रूपवास, भरतपुर, राजस्थान।

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमाणिका – जून 2025 विशेषांक

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. कोमल सिंह	09–09
2.	जलवायु परिवर्तन का कृषि एवं सामान्य जनजीवन पर प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन	डॉ. कोमल सिंह	10–17
3.	प्रकृति और पर्यावरण के प्रति भारतीय दृष्टिकोण	डॉ. भरत कुमार	18–26
4.	भारत में पेयजल संकट, प्रदूषण एवं संरक्षण	डॉ. बृजकिशोर	27–36
5.	Green Chemistry and Biochemistry : Towards Sustainable Innovation	Digambar Singh	37-42
6.	□ास्य संयोजन प्रतिरूप पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव : गुरूग्राम जनपद के संदर्भ में	डॉ. राकेश कुमार	43–50
7.	सामा–चकवा में पर्यावरण संरक्षण	मन्जू कठायत	51–55
8.	The Economic Aspect of Sustainability	Amit Singh	56-64
9.	वर्तमान समय में भूमण्डलीय तापमान	भूपेन्द्र सिंह	65–68
10.	रूपवास तहसील में पर्यावरण प्रदूषण के कारण मलेरिया का प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन	रामनिवास	69–79
11.	Environmental Depiction and Environmental Vision in Saint Tukaram's Abhangas	Gautam Kedar Brahme	80-85
12.	पर्यावरण प्रदूषण – एक विकट समस्या का अध्ययन	श्याम कुमार	86–89
13.	वैश्विक ताप में वृद्धि : एक बड़ी चुनौती (Increase in Global Temperature : A Big Challenge)	अनीषा	90–93
14.	पर्यावरण और प्रशासन	डॉ. यादव सिंह	94–99
15.	कोविड–19 का प्रभाव	बृजेश कुमार वर्मा, डॉ. राखी	100–102
16.	Artificial Intelligence and its Impact on Environment Sustainability	Dr. Rajesh Agarwal	103-106
17.	कोरोना महामारी दौरान – बाजार और समाज एवं पर्यावरण का नया संकट	डॉ. कृष्ण भगवान दुबे	107–113
18.	पर्यावरण के विभिन्न आयामों का अध्ययन	जगत सिंह	114–122
19.	पर्यावरण प्रदूषण के कारक : पर्यावरण पर प्रभाव एवं उपचार	शरद उपाध्याय, डॉ. अशोक कुमार कौशिक	123–136
20.	पर्यावरण मुद्दों के उभरते आयाम	पूनम सिंह, निशीथ गौड़	137–143

21.	साहित्य में पर्यावरण संरक्षण	जाविन्त्री यादव, निशीथ गौड़	144–148
22.	पौराणिक दृष्ट्या भारतवर्षम् : एकं संक्षिप्तावलोकनम्	शिवराज मीणा	149–155
23.	सुशासन एवं महिला सशक्तिकरण के दौर में राजस्थान के पंचायती राज में महिलाओं की स्थिति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	रामचंद्र सिंह, डॉ. संजुला थानवी	156–166
24.	Transforming Education through Law: The Role of the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 in Shaping Inclusive Education in India	USHA LATA DR. ANITA SHARMA	167-174
25.	DATA PREPROCESSING AND FEATURE ENGINEERING FOR HEALTH METRICS	Dipmala Bhagwat Trimukhe, Dr. Rahul Kumar Budhania	175-185
26.	A STUDY ON THE CORPORATE SECTOR IN THE CONTEXT OF JUDICIAL TRENDS IN INDIA	HRISHIKESH RAM MORE DR. VIJAYMALA	186-193
27.	ANALYSIS OF CROSS BORDER MERGER IN INDIA AND THEIR REGULATION	Jnana Ranjan Dhal, Dr. Ajeet Singh	194-201
28.	Study of Fiber-Reinforced and Ferrocement Concrete : Mechanical Performance and Durability	Mr. Utkarsh Singh, Ms. Radha	202-211
29.	महिला उत्पीड़न के प्रकार और कारण	डॉ. गजानन्द मीणा	212–215
30.	NEED TO STUDY SWAMI DAYANANDA EDUCATIONAL PHILOSOPHY : IN THE CONTEMPORY EDUCATION SYSYTEM	Himani Meena	216-220
31.	शिक्षणाधिगमप्रक्रियायां TPACK – एकमं प्रतिमानम् (TPACK : A Model In Teaching & Learning Process)	Arun Biswas	221-227
32.	PROBLEM OF CHILD LABOUR IN INDIA IN INFORMAL AND UNORGANISED SECTORS AND LAWS : ISSUES AND CHALLENGES	Dr. Mukta Verma	228-234

संपादकीय.....

'बोहल शोध मंजूषा' का नवीनतम अंक "पर्यावरण मुद्दों के उभरते आयाम" आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। पाठकों के स्नेह एवं प्रोत्साहन से अपार ऊर्जा प्राप्त होती है, जिससे यह शुभ कार्य निरंतर आगे बढ़ता जा रहा है। शोधकर्ता निरंतर जागरुक रहें और हमारे देश की उज्जवल भविष्य के लिए नित नवीन शोधों से प्रगति के मार्ग प्रशस्त करते रहें, यह हमारी कामना है।

पर्यावरण मुद्दे आज के समय में सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है ये मुद्दे न केवल हमारी पृथ्वी के भविष्य को खतरे में डालते हैं बल्कि मानव जीवन एवं स्वास्थ्य पर भी इनका गहरा प्रभाव डालते है। इनमें जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, पर्यावरणीय ह्रास, संसाधनों का ह्रास, जैव विविधता का ह्रास, ग्लोबल वार्मिंग, घटता हुआ भूमिगत जल का स्तर तथा जल गुणवत्ता में ह्रास आदि प्रमुख है :–

- **जलवायु परिवर्तन** – यह एक वैश्विक समस्या है जो हमारे पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित कर रही है। इसके कारण तापमान में वृद्धि, चरम मौसम की घटनाएं और समुद्र के स्तर में वृद्धि हो रही है।
- **प्रदूषण** – वायु, जल और मृदा प्रदूषण हमारे पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहे हैं। इससे न केवल हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, बल्कि यह हमारे पारिस्थितिकी तंत्र को भी नुकसान पहुंचाता है।
- **पर्यावरणीय गिरावट** – हमारे प्राकृतिक संसाधनों का अधिक दोहन और अविवेकपूर्ण उपयोग पर्यावरणीय गिरावट का कारण बन रहा है। इससे हमारे पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता खतरे में पड़ रही है।
- **संसाधनों की कमी** – हमारी बढ़ती जनसंख्या और उपभोग की दर के कारण हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है। इससे संसाधनों की कमी हो रही है और हमारे भविष्य के लिए खतरा उत्पन्न हो रहा है।
- **जैव विविधता की हानि** – हमारे पारिस्थितिकी तंत्र में जैव विविधता की हानि हो रही है, जिससे हमारे पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता खतरे में पड़ रही है।
- **ग्लोबल वार्मिंग** – ग्लोबल वार्मिंग के कारण हमारे पर्यावरण पर कई बुरे प्रभाव पड़ रहे हैं। इससे तापमान में वृद्धि, चरम मौसम की घटनाएं और समुद्र के स्तर में वृद्धि हो रही है।

इन मुद्दों को हल करने के लिए हमें मिलकर काम करना होगा। हमें अपने दैनिक जीवन में कुछ बदलाव लाने होंगे, जैसे कि ऊर्जा की बचत करना, पानी का संरक्षण करना और कूड़ा–कचरा प्रबंधन करना। हमें अपने सरकारों और नीति निर्माताओं से भी आग्रह करना होगा कि वे पर्यावरण संरक्षण के लिए ठोस कदम उठाएं।

आशा है सभी पाठकगण अपने गंभीर एवं मौलिक लेखन से हमारे देश की समस्याओं के प्रति जवाब देह होंगे और जनमानस में जागरूकता उत्पन्न करने में मदद करेंगे।

सधन्यवाद।

डॉ. कोमल सिंह

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 10-17

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जलवायु परिवर्तन का कृषि एवं सामान्य जनजीवन पर प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ. कोमल सिंह

प्राचार्य / विभागाध्यक्ष, श्री गुरू माधवानन्द प्रतिभा महाविद्यालय, रूपवास, भरतपुर (राज.)

मनुष्य का प्राकृतिक पर्यावरण के साथ गहन साहचर्य रहा है। यद्यपि मनुष्य विभिन्न प्राकृतिक घटनाओं से संकट में पड़ता रहता है, फिर भी पृथ्वी के कई भौतिक व जैविक तंत्रों में वह नियंत्रणकारी शक्ति की भूमिका निभाता है। हजारों वर्षो से भौतिक पर्यावरण एक यथेष्ट सीमा तक मनुष्य के प्रगति की दिशा व सीमा तय करता रहा है। मनुष्य अपनी सुविधा के अनुसार अपने भौतिक पर्यावरण से छेड़छाड़ करने में समर्थ हो चुका है। यद्यपि प्रकृति से छेड़छाड़ का उद्देश्य जीवन स्तर को सुधारना ही रहा है लेकिन कुछ मामलों में इससे कई गंभीर समस्याएं उत्पन्न हुई है जो प्राकृतिक पर्यावरण व स्वयं मनुष्य के लिए विनाशकारी साबित हुई हैं।

पृथ्वी की जलवायविक दशाओं में नकारात्मक परिवर्तन प्रारम्भ हो चुके है। जलवायु परिवर्तन इस समय एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आया है जिससे निपटना मानवता एवं सभ्यता के लिए अनिवार्य होता जा रहा है। आज लगभग सभी बड़े अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर यह विचार–विमर्श के प्रमुख मुद्दे के रूप में उभरा है, क्योंकि यह हम सबके अस्तित्व से जुड़ा मसला है। राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण विदो की चिंताएं हो या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आयेाजित सम्मेलन ये सभी विश्व के लोगों को जागरूक बनाने की कोशिश का हिस्सा है। ताकि जलवायु परिवर्तन के खतरे का मुकाबला किया जा सके। इस संदर्भ में यह जानना महत्वपूर्ण और प्रसांगिक है कि जलवायु परिवर्तन भी खतनाक स्थिति के कारण क्या है? और इससे किन किन खतरनाक प्रभावों को जन्म दिया है?

जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारणों में प्रमुख कारण उत्सर्जित कार्बनडाई ऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि होना है। उद्योगों की चिमनियों, फैक्ट्रियों और वाहनों से निकलने वाला धुआँ तथा घरो, दफ्तरों आदि में विविध उपकरणों से निकलने वाली गर्म वाष्प आदि प्रतिदिन हमारे वातावरण में पर्याप्त गर्मी छोड़ती है।

पिछली दो शताब्दी में पेट्रोलियम पदार्थो एवं अन्य जीवाश्म ईधनों के प्रयोग में गुणात्मक वृद्धि हुई है। परिवहन साधनों में अभूतपूर्व प्रगति के चलते वाहनों से उत्सर्जित खतरनाक जहरीली गैसों की सांद्रता बढ़ी है। जलवायु परिवर्तन का एक अन्य कारण है – क्लोरोफ्लोरो कार्बन का उत्सर्जन। ये ओजोन परत को क्षति पहुंचाते हैं। क्लोरो फ्लोरो कार्बन का उपयेाग रेफ्रिजरेटर, एयरकंडीशनर, फोम और एरोसोल आदि के निर्माण में होता है।

तालिका नं. 1

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जित देश

क्रमांक	देश	कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन (लाख टन में)	प्रति व्यक्ति कार्बनडाई ऑक्साइड उत्सर्जन (लाख टन में)
1	संयुक्त राज्य अमेरिका	6046	20.6
2	चीन	5007	3.8
3	रूस	1524	12.6
4	जापान	1257	9.9
5	जर्मनी	808	9.8
6	कनाडा	639	60.0
7	ब्रिटेन (यू.के.)	587	9.7
8	भारत	1342	1.2
9	कोरिया	465	9.7
	कुल योग	28953	4.5

स्रोत : वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक 2010

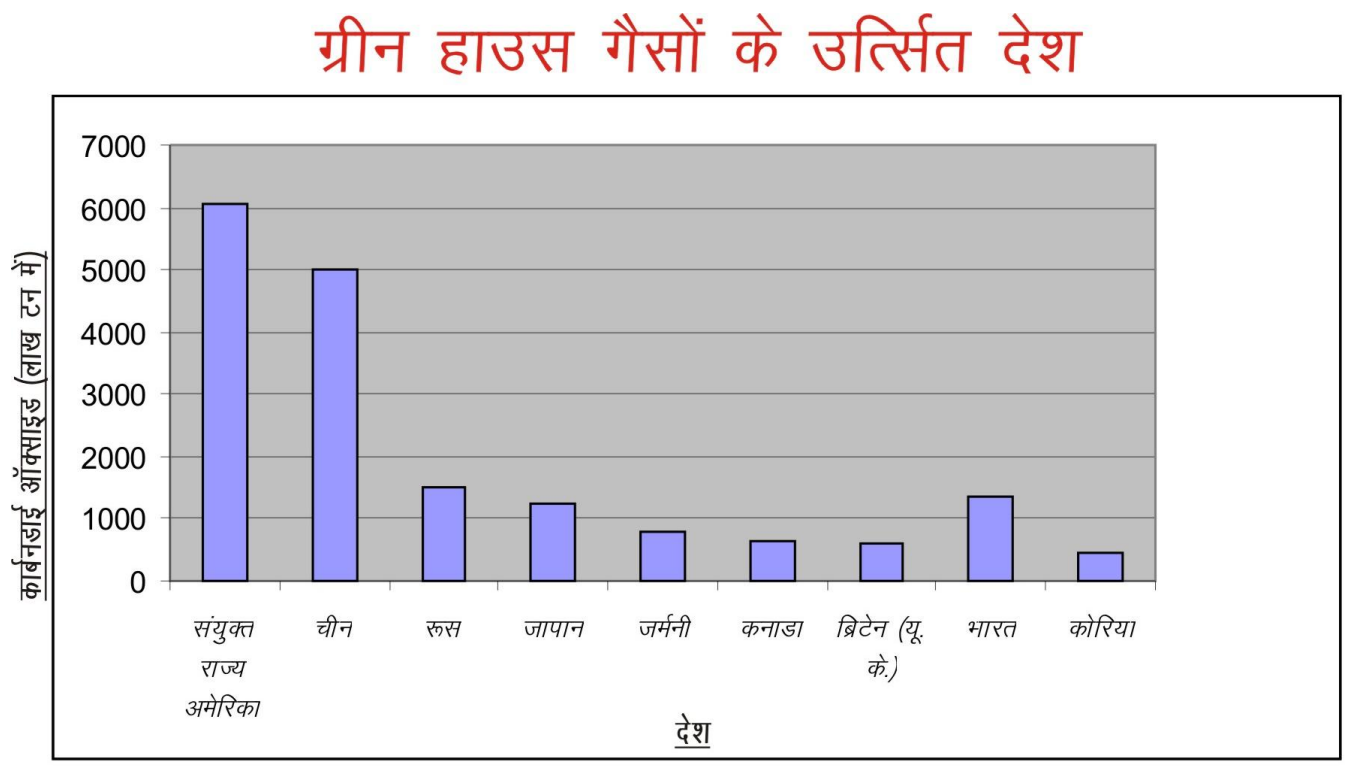

तालिका : 02

ग्रीन हाउस गैसे : स्रोत एवं प्रभाव

क्रमांक	गैस	स्रोत	प्रभाव
1	कार्बन डाई ऑक्साइड	ऊर्जा उत्पादन के लिए ईधन का दहन (पेट्रोल, कोयला, लकड़ी)	पृथ्वी पर ताप में वृद्धि
2	कार्बन मोनो ऑक्साइड	ऊर्जा उत्पादन में ईधन का अधूरा दहन	सांस और फेफड़ों की समस्या
3	नाइट्रोजन ऑक्साइड	भट्ठियों में ईधन का जलना	ताप वृद्धि और श्वास रोग
4	सल्फर डाई–ऑक्साइड	गंधयुक्त ईधन का दहन	अम्लीय वर्षा
5	ओजोन	हाइड्रोकार्बन और नाइट्रोजन के ऑक्साइड	ताप वृद्धि और फेफड़ों में क्षति
6	मीथेन	प्राकृतिक गैस एवं अवशिष्ट पदार्थ	पृथ्वी के तापमान में वृद्धि
7	क्लोरोफ्लोरो कार्बन	औद्योगिक उत्सर्जन	ओजोन क्षरण, ताप वृद्धि
8	अन्य हाइड्रो कार्बन	औद्योगिक क्रियाओं के दौरान	ताप वृद्धि, आंखों में जलन

शोध पत्र का उद्देश्य :–

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारत में जलवायु परिवर्तन द्वारा कृषि एवं सामान्य जन जीवन पर पड़ रहे प्रभावों से अवगत कराना है और भविष्य में इससे होने वाले खतरों के प्रति सचेत करना है।

आंकड़ों का संकलन एवं विधि तन्त्र :–

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है और आंकड़ों का संकलन सरकारी व गैर सरकारी समाचार पत्र, तथा विभिन्न पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से किया गया है।

भारत में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव : जलवायु परिवर्तन के निम्नलिखित प्रभाव सामने आयें हैं :–

1. **समुद्र तटीय भागों में प्रभाव :** जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप भारत के उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडू, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गोवा, गुजरात तथा पश्चिम बंगाल राज्यों के तटीय क्षेत्र जलमग्नता के शिकार हो रहे हें। आगामी समय में आस पास के गांवों व शहरों में 10 करोड़ से भी अधिक लोग विस्थपित हो जायेंगे जबकि समुद्र में जलस्तर की निरन्तर वृद्धि के परिणाम स्वरूप भारत के लक्षद्वीप तथा अंडमान निकोबार द्वीपों का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा समुद्र का जलस्तर बढ़ने से मीठे पानी की समस्या होगी।

2. **कृषि पर प्रभाव :** जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कृषि पैदावार पर पड़ रहा है इसके परिणामस्वरूप गन्ना, मक्का, ज्वार, बाजरा तथा रागी जैसी फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुयी है जबकि इसके विपरीत मुख्य फसलों जैसे गेहूं, धान, तथा जौ की उपज में गिरावट दर्ज हुई है। सब्जियों के राजा आलू के उत्पादन में भी अभूतपूर्व गिरावट दर्ज हुई है।

तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप दलहनी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की दर में वृद्धि के कारण अरहर, चना, मटर, मूंग, उड़द, मसूर आदि की उपज में वृद्धि हुई हे। जबकि तिलहनी फसलों जैसे पीली सरसो, सरसो राई, सूरजमुखी तिल, अलसी की पैदावार में गिरावट है जबकि सोयाबीन तथा मूंगफली की पैदावार में वृद्धि हुई है।

एक अनुमान के अनुसार अगर वर्तमान वैश्विक तापवृद्धि की दर निरन्तर जारी रही तो भारत में वर्षा सिंचित क्षेत्रों में 125 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन में कमी आएगी। शीत ऋतु में 0.50 सेल्सियस तापवृद्धि के कारण पंजाब राज्य में गेहूं की फसल की पैदावार में 10 प्रतिशत तक कमी आ सकती है।

भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय देश में जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप आम, केला, पपीता, चीकू, अनन्नास, शरीफा, अनार, बेल, खजूर, जामुन, अंजीर, बेर, तरबूज तथा खरबूज आदि फलों के उत्पादन में बढ़ौतरी हुई है जबकि सेब, आलू, बुखारा, अंगूर, नाशपाती, आदि की पैदावार में गिरावट आई है।

पिछले कुछ वर्षो में कृषि क्षेत्र में एक बड़ा बदलाव हुआ है और उत्पादन के मामलें में बागवानी ने अनाज को पीछे छोड़ दिया है। कृषि मंत्रालय भारत सरकार के अनुसार वर्ष 1991–92 में 1.27 करोड़ हेक्टेयर में बागवानी होती थी जो वर्ष 2012–13 में 2.36 करोड़ हे0 हो गया है। इसमें 85 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। और वर्ष 2012–13 में 26.89 करोड़ टन उत्पादन हुआ जबकि अनाज का उत्पादन 25.71 करोड़ टन हुआ बागवानी उत्पादन में एक दशक में 84 पतिशत की वृद्धि हुई है।

3. जलवायु परिवर्तन का स्वास्थ्य पर प्रभाव :-

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार जलवायु में उष्णता के कारण श्वास तथा हृदय संबंधी बीमारियों में वृद्धि हुई है। दुनिया के विकासशील देशों में दस्त, पेचिश, हैजा, क्षयरोग, पीत ज्वर तथा मियादी बुखार जैसी संक्रामक बीमारियों की बारंबारता में वृद्धि हो रही है।

बदलते पर्यावरण का प्रकोप भारत पर स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। सेंटर फॉर सांइस एंड एनवायरमेंट की 13 जनवरी 2015 मंगलवार को जारी रिपोर्ट बॉडी बर्डन 2015 स्टेट ऑफ इंडियाज हेल्थ में देश की बिगड़ती आबोहवा का इंसानी स्वास्थ्य पर पड़ने वाले नकारात्मक असर को लेकर गंभीर चिंता व्यक्त की गई है। रिपोर्ट बताती है कि पर्यावरण में परिवर्तन से जन स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली आपदाओं में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई है। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन से मौसमी दशाओं की तीव्रता और डेंगू, मलेरिया, चिकुनगुनिया जैसी बीमारियों को बढ़ोत्तरी देखने को मिलती है।

तालिका सं. 3

भारत में बीमारियों से प्रभावित मरीजों की संख्या (वर्षवार)

वर्ष	डेंगू	मलेरिया	चिकुनगुनिया
2010	28292	1177378	48176
2011	18860	113845	20402
2012	50222	82815	15977
2013	75808	72215	8840
2014	40571	921214	16049
2015	99913	72213	27533
2016	27879	471083	12255

स्रोतः दैनिक जागरण 28 सितम्बर 2016 पृ.11 नोट 2016 के आंकड़े 31 अगस्त तक के हैं।

तालिका सं. 4

भारत में डेंगू का राज्यवार प्रभाव (2010 से 2016 तक)

क्र.सं.	राज्य	प्रभावित व्यक्ति की संख्या	प्रतिशत
1	पश्चिमी बंगाल	31270	9
2	तमिलनाडू	32002	9
3	दिल्ली	32406	9
4	केरल	27853	8
5	पंजाब	27775	8
6	महाराष्ट्र	26895	8
7	देश के अन्य राज्य	163344	49
	योग	341545	100

स्रोतः दैनिक जागरण 18 सितम्बर 2016 पृ. 11

तालिका सं. 5

भारत में चिकनगुनिया का राज्यवार प्रभाव (2010 से 2016 तक)

क्र.सं.	राज्य का नाम	प्रभावित व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
1	कर्नाटक	55024	34
2	पश्चिम बंगाल	29446	18
3	महाराष्ट्र	18468	12
4	आंध्र प्रदेश, तेलंगाना	14291	9
5	तमिलनाडू	15302	10
6	अन्य राज्यों में	26724	17
	योग	159255	100

स्रोतः दैनिक जागरण 18 सितम्बर 2016 पृ. 11

वर्ष 2016 में मलेरिया के मामले 471083 सामने आये हैं। जबकि जुलाई 2016 में देश में 119 मोतें हुई है।

पिछले 70 वर्षो में पशुओं में होने वाली तकरीवन 300 बीमारियां इंसानों को संक्रमित कर रही है। इन बीमारियों की वजह से सालाना 27 लाख मरने वाले लोग है। हर साल इससे बीमार होने वालों की संख्या 2.5 अरब है। जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न हो रही अति मौसमी दशाओं के कारण जीवाणु और विषाणु जनित बीमारियां बारम्बारता महामारी का रूप ले रही है। भारतीय हर साल जल जनित बीमारियों के 3.5 करोड़ लोग शिकार होते हैं। जबकि 7.3 करोड़ लोगों में प्रति वर्ष इन रोगों से प्रभावित होते है। 15 लाख बच्चे देश में केवल डायरिया से ही हर साल मर जाते हैं। देश की डॉलर आबादी में विटामिन और खनिज तत्वों की कमी से जी.डी.पी. के 12 अरब डॉलर का नुकसान होता है। कई अध्ययन बताते है कि कैंसर का संबंध जेनेटिक मेकअप के अलावा आस–पास के पर्यावरण की स्थितियों से भी है। कीटनाशकों का प्रयोग करने वाले सर्वाधिक

प्रमुख राज्यों में उत्तर प्रदेश, पंजाब, आन्ध्रप्रदेश और हरियाणा है। पंजाब को देश का कैंसर की राजधानी कहा जाने लगा है। 2030 तक 1.31 करोड़ लोग कैंसर की वजह से मारे जाएंगे जो मौजूदा दर की तुलना में 20 गुना अधिक हैं।

जलवायु परिवर्तन और वर्षा :–

इस बार देश में आम तौर पर सामान्य बारिश दर्ज की गई है, इसके बावजूद देश के एक तिहाई जिलों में सामान्य से बहुत कम बारिश हुई है। 01 सितम्बर 2016 के अमर उजाला के अनुसार देश के 205 जिले 20 से 40 फीसदी कम बारिश हुई है, 16 जिले सामान्य से 40 फीसदी कम बारिश कम बारिश हुई है। 271 जिलों में सामान्य बारिश हुई जबकि 118 जिलों में सामान्य से 20 फीसदी अधिक वारिश हुई है। सामान्य से कम बारिश वाले राज्यों को निम्न तालिका में दर्शाया गया है :–

तालिका सं. 6

सामान्य से कम बारिश वाले राज्य (2016)

राज्य	मेघालय	केरल	असम	पंजाब	हरियाणा	गुजरात	बिहार
सामान्य से कम वर्षा (प्रतिशत में)	46	30	28	25	24	23	17

स्रोत : अगस्त तक के आई.एम.डी. (1 सितम्बर 2016)

जलवायु परिवर्तन के कारण प्रजातियों का विलुप्तीकरण :–

विगत सौ वर्षो में विलुप्त होने वाले पक्षियें में अमरीकी सुनहरी ईगल, सफेद चोंच वाला डुडपेकर, जंगली टर्की, हुपिंग क्रेन, ट्रेम्पेंटर हंस आदि है जबकि भारत की गिद्ध, गौरैया, आदि है। जीवों की अनेक जातियां विलुप्त प्रायः है सफेद शेर, हाथी, दरियाई घोड़ा, कस्तूरी मृग, श्वेत मृग, आदि अब भारत में दुर्लभ जीव है। मस्क वैल, ग्रिजली रीछ, समुद्री ऑटर व नीली ह्वेल, बीजू आदि लुप्त होने की सीमा पर है, पश्चिमी राजस्थान में गोंडावन (वस्टर्ड) पक्षी कम होने जा रहे हैं। उद्योग संस्थानों से निकलने वाले विषाक्त जल से बड़ी संख्या में मछलियां व अन्य छोटे जलीय जीवों की मृत्यु हो जाती है इससे जलीय पौधों की कई प्रजातियां नष्ट हो चुकी है जब जीव की कोई जाति विलुप्त होती है तो हमें सदैव के लिए सजीव जगत के एक अंश को खो देने है। साथ ही साथ इससे खाद्य श्रृंखला पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सन् 1952 ई. में भारत में वन्य जीव मण्डल की स्थापना हुई आखेल पर प्रतिबन्ध लगे, प्रवासी पक्षियों हेतु अन्तर्राष्ट्रीय नियम बने।

जलवायु परिवर्तन का भौतिक संसाधनों पर प्रभाव :–

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव हिमनदों (ग्लेशियर) पर भी पड़ रहा है। उष्णता के कारण हिमनद पिंघल कर खत्म हो जायेंगे। एक शोध के अनुसार भारत के हिमालय क्षेत्र में वर्ष 1962 से 2000 के बीच हिमनद 16 प्रतिशत तक घटे है। पश्चिमी हिमालय में हिमनदों के पिंघलने की प्रक्रिया में तेजी आई है। बहुत से छोटे हिमनद पहले ही विलुप्त हो चुके हैं। कश्मी में कोल्हाई हिमनद 20 मीटर तक पिंघल चुका है। गंगोत्री हिमनद 23 मीटर प्रति वर्ष की दर से पिंघल रहा है। अगर पिंघलने की वर्तमान दर कायम रही तो जल्दी ही हिमालय से सभी हिमनद समाप्त हो जाएंगे जिससे गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सिन्धु, सतलज, रावी, झेलम, चिनाव व्यास आदि का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। इन नदियों पर स्थित जल विद्युत ऊर्जा इकाईयाँ बंद हो जाएंगी। परिणाम स्वरूप

विद्युत उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। इसके अतिरिक्त सिंचाई हेतु जल की कमी के कारण कृषि उत्पादकता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा। उपर्युक्त नदियों का अस्तित्व समाप्त हो जाने से भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान, अफगानिस्तान, तथा बांग्लादेश भी प्रभावित होंगे।

जलवायु परिवर्तन का भूमिगत जल पर प्रभाव :–

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा अनियमित हो गयी है और वर्षा कई प्रदेश में सामान्य से कम हो रही है। इसके कारण, कृषि उत्पादन हेतु भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन हो रहा है। कई खरीफ फसलें भी सिंचाई पर निर्भर हो गयी है। विगत तीन दशकों में कृषि औद्योगिक क्षेत्र तथा शहरों में भूगर्भ जल संसाधन का अप्रत्याशित दोहन सामने आया है। परिवार स्वरूप इस प्राकृतिक सम्पदा का अविवेकपूर्ण दंग से दोहन होने से अनेक क्षेत्रों में भूजल स्तर में चिन्ताजनक गिरावट परिलक्षित हुई है। भूगर्भ जल विभाग द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार वर्तमान में भूगर्भ जल तो तेजी से नीचे जा रहा है देश के 91 प्रमुख जल स्रोतों की 17 मार्च 2016 समीक्षा रिपोर्ट के अनुसार देश में 1123 अरब क्यूसिक (घन मीटर) पानी उपयोग के लिए उपलब्ध है जबकि मांग 710 अरब घन मीटर हो जायेगी। केन्द्रीय भूजल बोर्ड के अनुसार पंजाब, हरियाणा, दिल्ली और प. बंगला में जलस्तर चार मीटर के अधिक की गिरावट हुई है। देश के 802 विकासखण्ड में भूजल के अति दोहन से उन क्षेत्रों में जल संकट पैदा हो गया है। पंजाब के 80 प्रतिशत, हरियाणा के 59 प्रतिशत, राजस्थान के 69 प्रतिशत दिल्ली के 74 प्रतिशत और उत्तर प्रदेश 15 प्रतिशत विकास खण्डों में भूजल का अति दोहन हुआ है। भूगर्भ का अतिदोहन और कम रिचार्ज के कारण यह समस्या उत्पन्न हो रही है।

जलवायु परिवर्तन का वनों पर प्रभाव :–

पिछले 15 वर्षो से देश के अधिकांश राज्यों में वनाच्छादित क्षेत्र में गिरावट दर्ज की गई है। सबसे ज्यादा गिरावट अरूणाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र छत्तीसगढ़, जम्मू कश्मीर और हिमाचल प्रदेश आदि राज्यों में दर्ज की गयी है। जबकि त्रिपुरा, मिजोरम और गोवा में जंगल क्षेत्र में बढ़ोत्तरी देखने को मिली है। पर्यावरण प्रदूषण, जल की कमी वर्षा की कमी तथा तीव्र औद्योगिक विकास एवं जनसंख्या दबाब के कारण प्रकृति वन स्थिति में कमी आ रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण अनेक पादप प्रजातियां समाप्त होती जा रही हैं।

निष्कर्ष :–

जलवायु परिवर्तन एक गंभीर वैश्विक समस्या है जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण विश्व में बड़े पैमाने पर उथल पुथल हो रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण दुनिया के द्वीपों का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा। प्राकृतिक आपदाओं जैसे–सूखा, बाढ़, समुद्री तूफान, अलनीनो की बारंबारता में बढ़ौतरी हो रही है। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप फसलों की उत्पादकता में वृद्धि हेतु कीटनाशकों, खरपतवार नाशकों तथा रासायनिक खादों पर निर्भरता बढ़ रही है। जिससे न सिर्फ पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है अपितु भारत जैसे विकासशील देश में किसानों की आर्थिक दशा में गिरावट आ रही है। जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को देखते हुए समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हरित–गृह प्रभाव के लिए उत्तरदायी गैसों के उत्सर्जन पर रोक लगाई जाए जिससे वैश्विक तापवृद्धि पर प्रभावी नियंत्रण हो सके और विश्व को जलवायु परिवर्तन के संभावित खतरों से बचाया जा सके।

सन्दर्भ सूची :–

1. अमर उजाला, 23 जनवरी 2016
2. अमर उजाला, 1 सितम्बर 2016
3. दैनिक जागरण, 17 जनवरी 2016
4. दैनिक जागरण, 18 सितम्बर 2016
5. योजना पत्रिका, अप्रैल 2010
6. डॉ कोमल सिंह एण्ड डॉ. बृज किशोर– मथुरा जनपद में गिरता भूजल स्तर एक ज्वलंत समस्या International Journal for current research and techniques issn 2348-4446 (print) 2349-3194 Conline) Vol. III i ssue II April- June 2016 P. 45.
7. Dr. Ajay Kumar Gurjar (2014) "Agriculture vulmerability of climate change in Rajasthan. 1950-2010
8. M.Edm. Richard. Chimate Change Human Systems and policy - Vol. I - Climate change and Agriculture.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 18-26

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रकृति और पर्यावरण के प्रति भारतीय दृष्टिकोण

डॉ. भरत कुमार

भूगोल (विभागाध्यक्ष), श्री अग्रसेन कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बयाना, भरतपुर (राज0)

भारत में पर्यावरण की सुरक्षा एवं सतुलन के लिये सदियों से प्रयास किये जा रहे है। भारत के लोगों का आदिकाल से ही जीव–जन्तुओ एंव वनस्पतियों से गहरा संबन्ध रहा है। यहां लोग आज भी जीव जन्तुओ एवं वनस्पतियो को धर्म से जोड़कर उनकी पूजा एव संरक्षण करते है। पृथ्वी पर जीवन का आधार ही पर्यावरण है। प्राकृतिक आपदाओ की त्रासदी को मनुष्य हमेशा से ही देखता आया है और अब वह कृत्रिम कारको के द्वारा पर्यावरण को प्रभावित होते हुए देख रहा है। पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से 1972 का वर्ष भारत के लिए अत्याधिक महत्वपूर्ण रहा है क्योंकि वन्य जीव संरक्षण अधिनियम इसी वर्श से लागू हुआ है। आज हम प्रत्येक वर्श 5 जून को पर्यावरण दिवस मनाकर पर्यावरण को संरक्षित करने का प्रयास करते है।

भारत आदिकाल से ही पर्यावरण प्रेमी रहा है यदि हम भारतीय दर्शन शास्त्र को देखे तो सभी मनुष्यों के साथ सहयोग समन्वय के व्यवहार के साथ अन्य प्राणियों के लिये भी अच्छा व्यवहार करने की बात कही गयी है। भारतीय ग्रंथों में लिखा गया ''सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरायमाः'' इस बात की पुष्टि करता है। यह प्रकृति के साथ मानव के स्वस्थ संवध को बताता है और मानव द्वारा सभी जीवों तथा सम्पूर्ण प्रकृति का कल्याण करने की बात कहता है। हमारे भारत में प्रकृति की पूजा आदिकाल से होती आ रही है। यहां पर वृक्ष, नदी, भूमि वायु, अग्नि आदि की पूजा की जाती है। राजस्थान में विश्नोई समाज का खेजरी वृक्ष के प्रति लगाव इसके संस्कृति महत्व को बताता है।

पर्यावरण की प्रकृति निरन्तर परिवर्तनशील रही है जिसके अन्तर्गत वर्तमान में हम यदि प्रकृति का अध्ययन मानव के परिप्रेक्ष्य में करते हैं। भारत में आदिकाल से ही प्रकृति की पूजा होती रही है लेकिन वर्तमान समय में हम प्रकृति का दोहन कर रहे है और प्रकृति के प्रति हमारी सोच में अनेक बदलाव आया है और हम प्रकृति को दूषित कर रहे है।

यदि हम वर्तमान में देखे तो भारत की जनसंख्या 140 करोड़ के लगभग है और भारत की 31.16% जनसंख्या नगरीय क्षेत्रों में निवास करती है लेकिन आज भी भारत की अंधिकाश जनसंख्या ग्रामीण (68.84) क्षेत्रो में निवास करती है। ग्रामीण जनसंख्या अधिकाश कृशि कार्यों में संलग्न रहती है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्ति प्रत्यक्ष रुप से पर्यावरण के साथ जुड़े रहते है।

मानव पर्यावरण सम्बंध – प्राचीन काल से वर्तमान तक :–

मनुष्य की प्राकृतिक पर्यावरण के साथ दोतरफा भूमिका में होती है। वह जैविक संघटक के रूप में भौतिक

मनुष्य की हैसियत से तथा दूसरी तरफ सामाजिक, आर्थिक एक प्रोद्योगिक मानव के रूप में पर्यावरण को प्रभावित करता है। मनुष्य के सभी प्राकृतिक गुण यथा जन्म, वृद्धि, स्वास्थय, मृत्यु आदि प्राकृतिक पर्यावरण से उसी तरह प्रभावित होते हैं जैसे कि अन्य जीवों का गुण। प्रारंभ में आदिमानव की भौतिक पर्यावरण की कार्यात्मकता के दो प्रकार की भूमिका होती थी – ग्राही तथा दाता अर्थात मनुष्य भौतिक पर्यावरण से अन्य जीवो के समाने संसाधन प्राप्त करता था तथा पर्यावरण संसाधनों में अपना योगदान भी करता था (फलों के बीजों को अनजाने में बिखेरकर) इस प्रकार मानव सस्कृति के विकास के प्रथम चरण में मनुष्य भौतिक पर्यावरण के अन्य कारकों के सामन एक कारक मात्र था परन्तु उसके समाज तथा संस्कृति के विकास के साथ उसकी बृद्धि, उसका कौ ाल तथा उसका प्रोद्योगिकी भी विकसित होती है।

वर्तमान समय मे यदि देखा जाए तो मानव–पर्यावरण के मध्य बदलते संबंधो कर मूल कारक प्राद्योगिकी है क्योंकि इसी ने प्रागेतिहासिक काल से लेकर वर्तमान के आद्योगिक काल तक मानव पर्यावरण संबंधों में आमूल–चूल परिवर्तन किया है। यदि हम प्राचीन काल में मनुश्य तथा प्राकृतिक पर्यावरण के बीच संबंध को देखा तो ये पहले का भी संतुलित थे लेकिन समय के साथ मनुश्य के व्यवहार में परिवर्तन, जो कि उपभोक्तावाद को द ार्शाता है। इसलिए मानव पर्यावरण का संबध असंतुलित हो गया है।

यदि हम सम्पूर्ण पृथ्वी पर देखे तो मानव का उदय अफ्रीका में 6 से 2 मिलियन साल पहले हुआ है तब से लेकर आज तक मानव प्रकृति पर निर्भर होता आ रहा है और आज भी प्रकृति पर निर्भर है क्योंकि अगर हम देखे तो इस पृथ्वी पर दो प्रकार के तत्व मिलते है जिनमें एक वे तत्व है। जिन्हें प्रकृति नें बनाया है तो वही दूसरे वे तत्व है जिन्हे मानव ने बनाया है लेकिन मानव भी जिन तत्वों का निर्माण करता है वे सभी तत्व प्रकृति से प्राप्त करके बनाता है। प्राकृतिक तत्वों में स्थलमण्डल, जलवायुमण्डल तथा जल मण्डल के सभी तत्व आते है। इन प्राकृतिक तत्वों में मृदा, वनस्पति, वर्षा, खेत, आदि आते है। मानव जिस प्रकार प्रकृति पर निर्भर होता आ रहा है उसे समय के अनुसार निम्नलिखित 4 भागों में बांटा जा सकता है।

1. प्रागैतिहासिक काल या भोजन संग्रह तथा आखेट काल :–

इस समय को भोजन एवं आखेट संग्रह काल भी कहते है। मानव का उदय 6 से 2 मिलियन साल पहले माना जाता है जब से लेकर प्रागेतिहासिक काल तक मानव सम्पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर होता आ रहा है। यह समय मानव संस्कृति एव सभ्यता का शुरुआती काल कहा जाता है। इस समय में मानव सीधे प्राकृतिक संसाधन पर निर्भर था और कन्द–मूल, फल खाकर मानव ने अपने जीवन की शुरुआत की है मानव जैसे–जैसे अपना विकास करता गया तो मानव ने अपना भोजन कन्द–मूल, फल के अलावा शिकार आरम्भ करके किया मानव जव शिकार करता था तो उसे शिकार करने में समस्या होती थी। तो मानव ने अपने अनुसार हथियार बनाना प्रारम्भ किया लेकिन मानव के ये हथियार प्रकृति से प्राप्त पत्थर व लकड़ी के होते थे। मानव ने जब अग्नि का आविष्कार किया तो दावानल जैसी घटनाऐं होने लगी यह प्राकृतिक पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाली पहली घटना थी।

2. प्राचीन काल या कृशि काल :–

ऐसा माना जाता है कि मानव का विकास प्राचीन काल से अधिक प्रारम्भ हुआ है क्योंकि प्राचीन समय में मानव ने कृशि कार्य और पशुपालन पर अधिक ध्यान दिया था। वही मानव ने बीजो से पौधों को उगता देखा

जिससे उसने कृषि कार्य प्रारम्भ किया। मानव ने जब कृषि कार्य प्रारम्भ किया तो मानव को जल की आवश्यकता हुई और फिर मानव नदियों के किनारे बसता चला गया। यदि हम प्राचीन सभ्यताओ को देखे तो ये सभ्यताएँ नदियों के किनारे बनी थी सिन्धु सभ्यता भी एक इसी का उदाहरण माती जाती है।

3. मध्य काल या पशुपालन व पशुचारण काल :–

यदि देखा जाए तो मध्य काल 400 से 1499 ई. तक माना जाता है। इस काल में मानव प्रकृति के साथ पूर्ण रूप से जुड़ गया। यदि दूसरे शब्दों में कहे तो मानव पूर्ण रूप से अपना विकास प्रकृति के साथ जुड़कर करने लगा था। इस काल में मानव ने पशुपालन एवं पशुचारण का कार्य किया। प ुपालन के अन्तर्गत मानव पशुओं से प्राप्त दूध, घी, मांस, चमड़ा आदि की प्राप्ति के लिए पशुओं को पालने लगा जब मानव स्थायी कृषि नही करता था। इसलिए पशुओं के लिए चारा की समस्या होती थी। मानव ने इस समस्या को सुलझाने के लिए मानव पशुचारण करने लगा, पशुपालन और पशुचारण में ये अन्तर होता था कि पशुपालन में पशुओं को जहां एक स्थान पर रखकर पाला जाता था वहीं पशुचारण में मानव पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर चराने के लिए ले जाने लगा हालांकि इस काल में विश्व की जनसंख्या 50 करोड़ के लगभग थी। तो वही भारत की जनसंख्या 8–10 करोड़ के बीच थी हालांकि जनसंख्या नियंत्रण होने के कारण इस काल में प्रकृति का अधिक नुकसान नहीं हुआ।

4. आधुनिक एवं प्रोद्योगिकी काल :–

प्रगैतिहासिक काल के समय के कुछ प्रोद्योगिकीय विकास प्रोद्योगिकी के इतिहास मे मील के पत्थर साबित हुए थे जैसे औजारों का निर्माण, आग का आविष्कार, पहिये का निर्माण, पौधो से भोजन प्राप्त करने हेतु जानवरों का शिकार करने के लिए औजार का निर्माण। आज सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या 800 करोड़ से अधिक है वहीं अकेले भारत की जनसंख्या 140 करोड़ के लगभग है। इस बढ़ती हुई जनसख्या के बीच आज मानव औद्योगीकरण की दौड़ में लगा हुआ है।

पर्यावरण सरंक्षण आन्दोलन एव सार्वजनिक भागीदारी –

भारत की कुल जनसख्या वर्तमान समय में 140 करोड़ के लगभग है। भारत में विश्व की 17 प्रतिशत के लगभग जनसंख्या रहती है तथा भारत में विश्व का कुल क्षेत्रफल 2.41 प्रतिशत के लगभग है और विश्व का केवल 4 प्रतिशत जल भारत में मिलता है। भारत में बढ़ रही जनसख्या घटता जल का स्तर चिन्ता का विषय है लेकिन भारत में अनेक पर्यावरणीय जनजागृति कार्यक्रम चलाये गये।

पर्यावरण संरक्षण के लिये सरकार अकेले कार्य नहीं कर सकती है। पर्यावरण की स्वच्छता एव संरक्षण के लिये जन भागीदारी अत्यंत आवश्यक है। जन भागीदारी द्वारा ही पर्यावरण जागरुकता आम लोगों तक पहुंचाई जा सकती है। यदि सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों को जनसमर्थन भी व्यापक रूप से मिल जाए तो पर्यावरण संरक्षण के लक्ष्य को हासिल करने में आसानी होगी। जन भागीदारी द्वारा लोग पर्यावरण संबंधी समस्याओं को सरकार तक पहुंचा सकते है और सरकार पर उचित कदम उठाने के लिये दबाव बना सकते है। भारत में काफी पहले से ही पर्यावरण, पौधो एंव जीवों को बचाने के लिये आन्दोलन होते रहे है। ये आन्दोलन निम्नलिखित है

1. चिपको आन्दोलन (Chipko Movement) :–

यह आन्दोलन वर्तमान उत्तराखड राज्य के चमोली जिले के गोपे वर नामक स्थान पर सन् 1973 में प्रारम्भ

हुआ जिसका प्रारम्भिक लक्ष्य वृक्षों की रक्षा करना था तथा बाद में इसमें समन्वित रूप से पर्यावरण के सभी आयामों को सम्मिलित कर लिया गया। इसके प्रणेता वर्तमान में टिहरी आन्दोलन के जनक सुन्दरलाल बहुगुणा तथा चण्डीप्रसाद भट्ट रहे है।

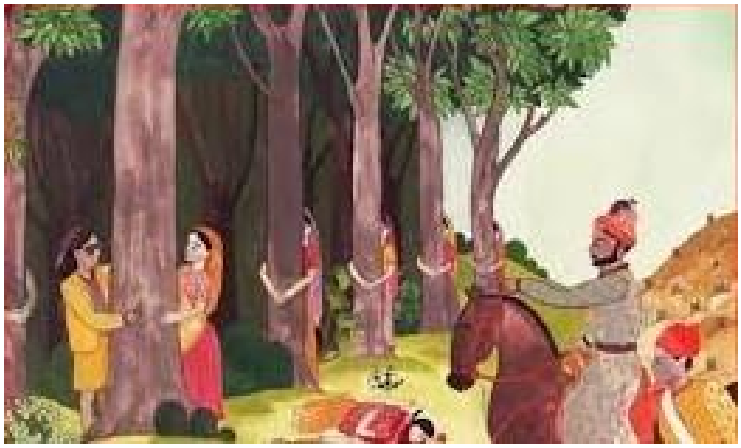

2. एपिको आन्दोलन (Appiko Movement) :-

यह आन्दोलन चिपको आन्दोलन की तर्ज पर ही कर्नाटक में याण्डुरंग हेगडे के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। 'एप्पिको 'कन्नड भाषा में चिपको का पर्याय शब्द है। इसका मूल उद्देश्य वनरोपण, विकास तथा संरक्षण रहा है।

3. शान्त घाटी आन्दोलन (Silent Valley Movement) :-

शान्त घाटी केरल में उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वनों का क्षेत्र है जो समृद्ध जैव विविधता रखता है। यहाँ पर जल विद्युत परियोजना की स्थापना के विरोध में आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। जिसके परिणामस्वरूप सरकार को अपना निर्णय बदलकर वहाँ राष्ट्रीय आरक्षित वन क्षेत्र घोषित करना पड़ा।

4. नर्मदा बचाओ आन्दोलन (Narmada Bachao Movement) :-

यह आन्दोलन नर्मदा घाटी की जैवविविधता को बचाने तथा मूल आदिवासियों के सांस्कृतिक पर्यावरण की रक्षा के लिए सन् 1985 से मेधा पाटेकर के नेतृत्व में चलाया जा रहा है। जिसके साथ अब अरुंधति राय तथा बाबा आम्टे भी हो गये हैं।

इन वन्य आंदोलन के अलावा भारत में जल का संरक्षण करने के लिए तथा पर्यावरण को बचाने के लिए भारत तथा राजस्थान में अनेक प्रकार की जल संचयन विधियों को अपनाया जाता है जो निम्नलिखित है।

पानी के उचित प्रबन्ध हेतु पश्चिमी राजस्थान में आज भी पराती (लोहे का बड़ा बर्तन) में चौकी रखकर उस पर बैठकर स्नान करते हैं ताकि शेष बचा पानी अन्य घरेलू उपयोग में आ सके। राज्य में निम्नलिखित जल संरक्षण की संरचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

(जल संरक्षण विधियॉं)

1. तालाब :–

बरसाती पानी को संचित करने का तालाब प्रमुख स्रोत रहा है। प्राचीन समय में बने इन तालाबों में अनेक प्रकार की कलाकृतियाँ बनी हुई हैं। इन्हें हर प्रकार से रमणीक एवं दर्शनीय स्थल के रूप में विकसित किया जाता है। इनमें अनेक प्रकार के भिति विक्रय के बरामदों, तिबारों आदि में बनाये जाते हैं। कुछ तालाबों की तलहटी के समीप कुआ बनाते थे जिन्हें वेरी कहते हैं।

2. झीलें :–

राजस्थान में जल का परम्परागत ढंग से सर्वाधिक संचय झीलों में होता है। यहाँ पर विश्व प्रसिद्ध झीलें स्थित हैं। जिनके निर्माण में राजा महाराजाओं, बनजरों एवं आम जनता का सम्मिलित योगदान रहा है। विश्व प्रसिद्ध पुष्कर झील का अस्तित्व धार्मिक भावना से ओतप्रोत है। इन तालाबों से सिंचाई के लिए भी जल का उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त इनका पानी रिसकर बावड़ियों में पहुँचता है जहाँ से इसका उपयोग पेयजल में कर करते हैं।

3. नाड़ी :–

नाड़ी एक प्रकार का पोखर होता है, जिसमें वर्शा जल संग्रहित होता है। इसका आगोर विशिष्ट प्रकार का नहीं होता है। राजस्थान में सर्वप्रथम पक्की नाड़ी निर्माण का विवरण सन् 1520 में मिला है, जब राव जोधाजी ने जोधपुर के निकट एक नाड़ी बनवाई थी। पश्चिमी राजस्थान में लगभग प्रत्येक गांव में एक नाड़ी अवश्य मिलती है। नाड़ी बनाते समय बरसाती पानी की मात्रा एवं जल ग्रहण क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही जगह का चुनाव करते हैं। इनमें संचित पानी इनकी क्षमता के अनुसार चलता है। नाड़ी निर्माण करने वाले स्थान से ही उसका आगोर एवं जल निकास तय होता है। रेतीले मैदानी क्षेत्रों में नाड़ियाँ 3 से 12 मीटर गहरी होती हैं। इनका जल ग्रहण क्षेत्र (आगोर) भी बड़ा होता है।

4. बावड़ी :–

राजस्थान में कुआं व सरोवर की तरह ही वापी (बावड़ी) निर्माण की परम्परा अति प्राचीन है। राजस्थान में बावड़ी निर्माण का मुख्य उद्देश्य वर्षा जल का संचय रहा है। आरम्भ में ऐसी बावड़ियाँ हुआ करती थीं जिनमें आवासीय व्यवस्था हुआ करती थी। कालिदास के रघुवंश में प्रतिकर्णि ऋषि के एक क्रीड़ा सरोवर का उल्लेख किया है।

5. झालरा :–

झालराओं का कोई जल स्रोत नहीं होता है। ये अपने से ऊँचाई पर स्थित तालाबों या झीलों के रिसाव से पानी प्राप्त करते हैं। इनका स्वयं का कोई आगोर नहीं होता है। झालराओं का पानी पीने के लिए उपयोग में नहीं आता था। उनका जल धार्मिक रीति–रिवाजों को पूर्ण करने, सामूहिक स्नान व अन्य कार्यों हेतु उपयोग में आता था।

6. टोबा :–

नाड़ी के समान आकृति वाला जल संग्रह केन्द्र टोबा कहलाता है। टोबा का आगोर नाड़ी से अधिक गहरा होता है। इस प्रकार थार के रेगिस्तान में टोबा एक महत्त्वपूर्ण पारम्परिक जल स्रोत है। सघन संरचना वाली भूमि

जिसमें पानी का रिसाव कम होता है। टोबा निर्माण हेतु उपयुक्त स्थान माना जाता है। इसका ढलान नीचे की ओर होना चाहिए। इसके जल का उपयोग मानव व पशुओं द्वारा किया जाता है। टोबा के आस–पास नमी होने के कारण प्राकृतिक घास उग जाती है, जिसे जानवर चरते हैं।

भारत में पर्यावरण जनजागृति में सफलता :–

भारत में पर्यावरण आन्दोलन के प्रारम्भिक वर्षों (1970–80) में अगर कोई पर्यावरण की बहुत चिन्ता करता दिखाई देता था, तो उसे तुरन्त ही सीआईए का एजेंट और अमरीका का दलाल घोषित कर दिया जाता था। ऐसा करने वालों में यूँ तो सभी प्रकार की राजनीतिक विचारधारा के लोग थे, लेकिन वामपंथियों की तादाद इसमें कुछ ज्यादा थी। उनका तर्क था– यह पर्यावरण आदि अमीर देशों के चोंचले हैं। भारत में जो यह कर रहे हैं इससे हमारी आर्थिक और सामाजिक न्याय की लड़ाई से लोगों का ध्यान हट जाता है।

बाद के वर्षों में पता चला कि यह धारणा गलत थी और पर्यावरण में सुधार का फायदा गरीबों को ही अधिक मिला है। राजस्थान के राजेन्द्र सिंह और महाराष्ट्र के अण्णा हजारे सीआईए के एजेंट नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन में भारी सुधार लाने वाले लोग हैं, जिनके कारण सूखे कुएँ भर गए, उजड़े गाँव बस गए। मरुभूमि में भी हरियाली आई और जीवन स्तर ऊँचा उठा है।

दूसरे स्तर पर काम करने वाले पर्यावरण कार्यकर्ता भी मसीहा साबित हुए। दिल्ली के सेंटर फॉर साइन्स एण्ड इन्वायरमेन्ट के संस्थापक अनिल अग्रवाल कम ही आयु में गुजर गए (सन् 2002 में), फिर भी बहुत कुछ कर गए। देश ने उन्हें पदमभूषण से सम्मनित किया। उनकी संस्था ने शोध कार्य किए, जिससे सरकारी पालिसी पर असर पड़ा और पर्यावरण कार्यकर्ताओं को मार्गदर्शन मिला।

अनिल अग्रवाल की संस्था जैसी और भी संस्थाएँ देश में उभरी जिनमें टाटा की 'टेरी' (टाटा इन्वायरमेंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट) भी है। देश के विश्वविद्यालयों में भी पर्यावरण सम्बन्धी पाठ्यक्रम विभिन्न स्तरों पर पढ़ाए जाने लगे हैं, बहुत सारी सरकारी संस्थाएँ भी पिछले 20–25 सालों में बनी हैं।

पूरे भारत में एक और बड़ी सफलता मिली है, वह है देश भर में क्लोरोफ्लुरोकार्बन (सीएफसी) गैसों के उपयोग में 90 प्रतिशत से भी अधिक कमी। (ओजोन परत) के विनाश की जिम्मेदार इन गैसों का प्रयोग अगले दो सालों में बिल्कुल समाप्त कर दिया जाएगा। ऐसे ही जैसे सीसा वाला पेट्रोल बड़े शहरों से खत्म हो गया है।

भारत में पर्यावरणीय जनजागृति की आवश्यकता (Need for Public Awareness) :–

पर्यावरण संचेतना जनजागृति में पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान एवं शोध की प्राप्ति होती है, इसमें पर्यावरण के भौतिक तथा जैविक पक्षों (Physical and Biological Aspects) की जानकारी तथा पारस्परिक निर्भरता का बोध होता है। बेलग्रेड में सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशाला (1975) में प्रस्तुत विभिन्न शोधपत्रों के आधार पर पर्यावरण शिक्षा की वास्तविक स्थिति का बोध होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1994 को पर्यावरण संचेतना का वर्ष घोषित किया था। इस वर्ष पर्यावरण चेतना तथा जागरूकता के प्रयास किये गये, जिनकी नींव 1992 में रियो डी जेनेरो में सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण संचेतना सम्मेलन में रखी गई थी। पर्यावरण संचेतना के अन्तर्गत अनेक अनुसन्धान हुए, जिनके द्वारा पर्यावरणीय दशाओं में मानव कल्याणकारी कार्य सम्पन्न हुए, जिनमें बढ़ते मरुस्थल, घटते वन क्षेत्र, घटती वर्षा की मात्रा तथा बिगड़ते पृथ्वी के सन्तुलन पर ध्यानाकर्षित किया गया।

पर्यावरण संचेतना या जागरूकता के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

(1) प्राकृतिक पर्यावरण, पेड़–पौधे, जीव–जन्तु तथा मनुष्य की पारस्परिक निर्भरता को पहचान एवं पर्यावरणीय विकास को समझना।

(2) सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास के लिए व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से क्रियाकलापों को शुरू करना।

(3) पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से मानव उपयोगी सामग्री, स्थान, समय और स्त्रोतों को चिह्नित करना।

(4) विभिन्न पर्यावरणीय स्रोतों का उपयुक्त दक्षता से दोहन हो तथा इसके लिए विभिन्न विधियों को चिह्नित किया जाना।

(5) पर्यावरण के प्राकृतिक स्रोतों के उपयोग सम्भव हो सके तथा उपयुक्त निर्णय लेना ताकि इनका विशिष्ट विश्व में विभिन्न अभियानों के तहत पर्यावरण संचेतना का प्रयास संयुक्त राष्ट्र संघ का अभिन्न अंग बन गई है, जिसके अन्तर्गत विश्व के विभिन्न भागों में पर्यावरण संरचना का बोध कराया जा रहा है।

इस सन्दर्भ में विभिन्न संगठनों, ग्रीनपीस संस्था (Greenpeace Society), पृथ्वी के मित्र (Friends of Earth) तथा विश्व वन्य निधि (WWF) आदि महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इनके तहत अफ्रीका महाद्वीप में वृक्षारोपण तथा विशिष्ट जंगली जड़ी–बूटियों के संरक्षण एवं हिमालय के तराई में स्थित कुछ दुर्लभ जड़ी बूटियों को संरक्षित करने के प्रयास किए गये हैं। इस सन्दर्भ में अफ्रीकी एशियाई देशों के राजनीतिक संगठन भी साथ मिलकर पर्यावरण संरक्षण में जुट गये हैं।

भारत में पर्यावरण चेतना के अभियान सफल रहे है। इनमें 1970 के दशक के 'चिपको आन्दोलन' (हिमालय क्षेत्र के वन एवं जैव विविधता को बचाने के लिए), 'अप्पिको आन्दोलन' (पालनी तथा नीलगिरि पर्वतीय क्षेत्रों के वन बचाने के लिए), शान्तघाटी (Silent Valley) आन्दोलन (केरल में प्रस्तावित जल विद्युत परियोजना के विरुद्ध जिससे पश्चिमी घाट के वनों एवं जैव विविधता का संरक्षण हुआ), राजस्थान का' अरावली बचाओ आन्दोलन' (इससे सरिस्का वन्य अभयारण्य व बाघ परियोजना को संरक्षण मिला), तथा दून घाटी आन्दोलन महत्त्वपूर्ण है जो पर्यावरण संचेतना विकसित करने में सफल रहे। इनके अतिरिक्त ताजमहल को बचाने के लिए मथुरा तेल शोधनशाला पर कानूनी प्रतिबन्ध लगा जिसमें से ताजमहल को हानि पहुँचाने वाला प्रदूषक तत्त्व सल्फर डाई–ऑक्साइड निःसृत हो रहा था। राजस्थान के अलवर जिले के गाँवों में तरुण भारत संघ के श्री राजेन्द्र सिंह ने जल संरक्षण के प्रति जनचेतना विकसित की तथा लोगों को इसके वास्तविक पक्ष का बोध कराया, जिसके परिणामस्वरूप आज वहाँ पर्यावरण संरक्षण की संचेतना इस स्तर पर विकसित हो चुकी है कि लोगों ने' जनता के वन्य अभयारण्य' (People's Sancturary) के नाम से स्वयं के प्रयास से एक वन्य अभयारण्य स्थापित किया है। यहाँ जलस्तर में भी सुधार हुआ है तथा मृत नदियाँ पुनः प्रवाहित हो गई हैं। इसी प्रकार का जल संरक्षण अभियान राले गाँव सिद्दी (महाराष्ट्र) में सफल रहा है जिसका संचालन प्रसिद्ध पर्यावरणविद् अन्ना हजारे ने किया

पर्यावरण का महत्त्व (Importance of Environment) :-

1. पर्यावरण के अध्ययन के द्वारा हमें वन, वृक्ष, नदी–नाले आदि का हमारे जीवन में क्या महत्त्व है, इसकी

उपयोगिता की जानकारी होती है।

2. पर्यावरण अध्ययन से पर्यावरण के प्रति चेतना जागृत होने, सकारात्मक अभिवृत्तियाँ तथा पर्यावरण के प्रति भावनाओं का विकास होता है।
3. वर्तमान में विश्व में बढ़ते पर्यावरणीय प्रदूषण की जानकारी, इसके प्रभाव तथा सामान्य जनता के प्रदूषण के प्रति उत्तरदायित्व तथा कर्तव्य आदि के बारे में पर्यावरण अध्ययन अपना महत्त्वपूर्ण योगदान रखता है।
4. पर्यावरण अध्ययन आधुनिक समय में सर्वसाधारण को पर्यावरणीय समस्याओं की जानकारी, इनके बारे में विस्तृत विश्लेषण तथा समस्याओं के समाधान में उपयोगी योगदान प्रदान करता है।
5. पर्यावरणीय अध्ययन का महत्त्व उन क्षेत्रों में अधिक है जहाँ शिक्षा एवं ज्ञान का उच्च स्तर पाया जाता है। अज्ञान तथा अशिक्षा वाले क्षेत्रों में पर्यावरणीय सुरक्षा तथा संरक्षण के प्रति जनसाधारण में उदासीनता पायी जाती है।
6. पर्यावरण अध्ययन के द्वारा जनसाधारण को विभिन्न प्रदूषणों की उत्पत्ति, उनसे होने वाली हानि तथा प्रदूषण को रोकने के उपायों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।
7. शहरीकरण एवं नगरीयकरण की प्रवृत्ति से उत्पन्न समस्याओं के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है।
8. वर्तमान समय में परिवर्तन के विभिन्न साधनों की बढ़ती संख्या के कारण प्रदूषण का स्तर तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है। पर्यावरणीय अध्ययन का परिवहन द्वारा उत्पन्न प्रदूषण की रोकथाम में विशेष महत्त्व है।

पर्यावरण संरक्षण के लिये बनायी गयी सरकारी नीतियां :-

पर्यावरण संबधी कानून पर्यावरण के सरक्षण व प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को नियन्त्रित करने में महवपूर्ण भूमिका निभाते है। पर्यावरण सम्वन्धी कानूनो की सफलता मुख्य रूप से इस बात पर निर्भर करती है कि उन्हे किस प्रकार लागू किया जाता है। वैदिक काल में भी पर्यावरण संरक्षण व उसके बेहतर उपयोग के कई उदाहरण मौजूद थे। भारत में प्रकृति व पर्यावरण का संरक्षण करने के लिए निम्नलिखित अधिनियम व नीतिया बनायी गयी है,

(1) जल प्रदूषण सम्बंधी कार्यक्रम :-

(i) रीवर वोडर्स एक्ट, 1956
(ii) जल (प्रदूषण व नियंत्रण) अधिनियम, 1974
(iii) जल उपकर (प्रदूषण व निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1977
(iv) पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986

(2) वायु प्रदूषण संबंधी कानून :-

(i) फैक्ट्रीज एक्ट, 1948
(ii) वायु (प्रदूषण निवारण एव नियंत्रण) अधिनियम, 1981
(iii) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986

(3) वन तथा वन्य जीव संबधी कानून :-

(i) वन संरक्षण अधिनियम, 1960

(ii) वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972

(iii) वन संरक्षण अधिनियन 1980

(iv) वन जीव संरक्षण अधिनियम, 1995

(v) जैव विविधता अधिनियम, 2002

सन्दर्भ सूची :-

1. पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, दृष्टि पब्लिके ान, दिल्ली।
2. पर्यावरण अध्ययन, डा. रामकुमार गुर्जर व वीं. सी. जाट पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. पर्यावरण और पारिस्थिकी, आर राजगोपालन।
4. पर्यावरण और पारिस्थिकी, अरिहन्त।
5. जल संरक्षण. डॉ. डी.डी. ओझा।
6. जल संरक्षण : नीति और सस्कृति, सांगी दान भाटिया।
7. भूगोल और आप पत्रिका– 2022
8. योजना पत्रिका–2023

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 27-36

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में पेयजल संकट, प्रदूषण एवं संरक्षण

डॉ. बृजकिशोर

भूगोल प्राध्यापक, अभिनव प्रज्ञा पी0 जी0 कालेज, निवादा, हमीरपुर (उ0 प्र0)

आज भारत ही नहीं, दुनिया के अनेक देश सूखा और जल संकट की पीड़ा से त्रस्त हैं। देश के अनेक गांवों में आज भी पीने योग्य शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं है। आर्थिक विकास, औद्योगीकरण अैर जनसंख्या विस्फोट से जल का प्रदूषण और जल की खपत बढ़ने के कारण जल चक्र विगड़ता जा रहा है। सूखा अचानक नहीं पड़ता यह भूकम्प के समान अचानक घटित न होकर शनैः शनैः आगे बढ़ता है। जनसंख्या विस्फोट, जल संसाधनों का अति उपयोग/दुरूपयोग पर्यावरण की क्षति तथा जल–प्रबंधन की दुर्व्यवस्थ के कारण भारत के कई राज्य जल संकट की त्रासदी भोग रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद देश ने काफी वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति की है। सूचना प्रौद्योगिकी में यह एक अग्रणी देश बन गया है लेकिन सभी के लिए जल की व्यवस्था करने में काफी पीछे हैं। आज भी देश में कई बीमारियों का एक मात्र कारण प्रदूषित जल है।

पृथ्वी का लगभग 99.2 प्रतिशत जल सागरों, महासागरों में सामान्य है। 2.15 प्रतिशत वर्फ के रूप में ग्लेशियरों में मौजूद है, 06 प्रतिशत भूमिगत या भौम जल के रूप में तथा 0.01 प्रतिशत नदियों और झीलों में एवं 0.001 प्रतिशत वायुमण्डल में मौजूद है। पीने योग्य मीठा जल मात्र 3 प्रतिशत है, शेष भाग खरा जल है। इसमें से भी मात्र एक प्रतिशत मीठे जल का ही वास्तव में हम उपयोग कर पाते हैं। सामान्यतः मीठे जल का 52 प्रतिशत झीलों और तालाबों में 38 प्रतिशत मृदा नम, 8 प्रतिशत वाष्प, 1.0 प्रतिशत नदियों और 01 प्रतिशत वनस्पति में निहित है। आर्थिक विकास, औद्योगीकरण और जन संख्या विस्फोट से जल का प्रदूषण और जल की खफत बढ़ने के कारण जल चक्र बिगड़ता जा रहा है।

भारत में 15 प्रतिशत जल का प्रयोग होता है, शेष जल बह कर समुद्र में चला जाता है। शहरों एवं उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ नदियों के जल को प्रदूषित करके पीने योग्य नहीं रहने देते। जल की मांग भी निरन्तर बढ़ती जा रही है। प्रति व्यक्ति मीठे जल की उपलब्धि जो सन् 1947 में 600 घन मीटर थी, घटकर सन् 2000 में मात्र 2300 घन मीटर रह गई है, जनसंख्या वृद्धि दर और जल की बढ़ती खपत को देखते हुए यह आंकड़ा सन् 2025 तक मात्र 1600 घन मीटर हो जाने का अनुमान है। अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्था ने अनुमान लगाया है कि अगले 20 वर्षों में ही भारत में जल की मांग 50 प्रतिशत बढ़ जाएगी।

तालिका संख्या-01

भारत में जल संसाधनों की मांग व उपयोग

उपयोग	वर्ष 2010		वर्ष 2025		वर्ष 2050	
	जल मांग (बी0सी0एल0)	कुल मांग का प्रतिशत	प्रक्षेपित मांग बीसीएम	कुल मांग का प्रतिशत	प्रक्षेपित मांग बीसीएम	कुल मांग का प्रतिशत
सिंचाई	557	78	611	72	807	69
घरेलू	43	6	62	7	111	9
औद्योगिक	37	5	67	8	81	7
वातावरण	5	1	10	1	20	2
अन्य	68	10	93	12	161	13
कुल योग	710	100	843	100	1180	100

स्रोत : कुरूक्षेत्र नवंबर 2017 पृ0सं0–62

जल संसाधन परिदृश्य :

- विश्व के भूमि क्षेत्र का 2.45 प्रतिशत।
- विश्व के पुर्नभरणीय जल संसाधनों का 04 प्रतिशत।
- विश्व की जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत
- जल उपलब्धता–1545 घन मी0/ प्रति व्यक्ति/प्रति वर्ष
- अभाव 1000

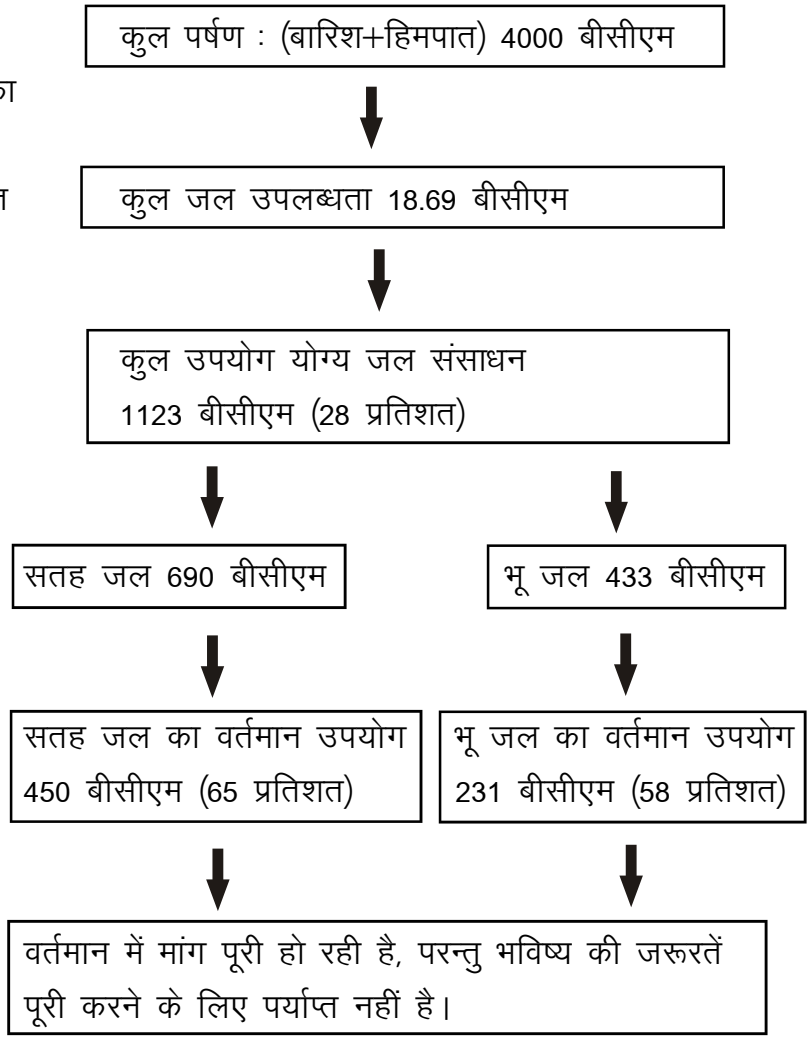

आकृति :-

जल प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है। यह मनुष्य की बुनियादी आवश्यकता है और बहुमूल्य सम्पदा है। हवा

और जल प्रकृति ने प्रत्येक जीव के लिए निःशुल्क प्रदान किए हैं। लेकिन आज अमीर व्यक्तियों ने भूजल पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया है। जलापूर्ति का एक प्रमुख स्रोत भूजल है। किसी भी स्रोत का अत्यधिक दोहन भविष्य में परेशानी खड़ी कर देता है। भारत में कुछ ऐसा ही हो रहा है। वर्तमान में देश के कई हिस्सों में जहां पेयजल की किल्लत छाई हुई है, वहीं कई हिस्सों में भूजल की अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है। इस दोहन का पता लगाने के लिए भारत सरकार की ओर से 2017 में 17 राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों की 6881 इकाईयों का मूल्यांकन किया था। यह इकाईयॉ ब्लॉक, तहसील आदि थीं।

पिछले संसद सत्र में जल शक्ति मंत्रालय द्वारा बताया गया कि इन इकाइयों में से 1186 इकाईयों में भूजल संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया जा रहा है। सबसे अधिक पानी का दोहन पंजाब में होता है। जॉच में पाया गया कि यहॉ के 79 प्रतिशत ब्लॉकों में पानी का दोहन अत्यधिक किया। इसके बाद राजस्थान दिल्ली, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश हैं, जहॉ 50 प्रतिशत तक जल दोहन होता है। वहीं तमिलनाडु की स्थिति की बात करें तो वहां पर कुल 1116 ब्लॉकों में 462 में सबसे ज्यादा जल दोहन होता है।

महाराष्ट्र के सूखाग्रस्त क्षेत्र मराठावाड़ा की तीन प्रतिशत तहसीलों में भी जल का वेहद ज्यादा दोहन पाया गया। उ0 प्र0 की 830 इकाइयों (820 ब्लॉकों और 10 शहर) में 11 प्रतिशत में अतिरिक्त जल दोहन हुआ। वहीं आठ पूर्वोत्तर राज्यों की किसी भी इकाई में अतिरिक्त दोहन नहीं पाया गया। इतनी अधिक मात्रा में भूजल का दोहन कई समस्याऐं पैदा कर सकता है, इसके लिए समय रहते उचित कदम उठाने की जरूरत है।

भारत में भूजल की स्थिति :-

देश में भूजल विकास की समग्र स्थिति मुश्किल से 58 प्रतिशत है। भूजल दोहन की स्थिति विभिन्न राज्यों में अलग–अलग पायी जाती है। कुछ राज्यों में भूजल की स्थिति यह है कि इसका पूरी तरह से इस्तेमाल नहीं हो पाता है, जबकि कुछ अन्य राज्यों में अति दोहन स्थितियां पैदा हो गयी हैं। उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, असम, विहार, त्रिपुरा, केरल तथा मध्य प्रदेश उन राज्यों के उदाहरण हैं जिनमें भूजल का पूर्ण रूप से दोहन नहीं हो पाता। इसके विपरीत, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा उत्तर प्रदेश में भूजल की अति दोहन से पर्यावरणीय संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। खासकर पंजाब राज्य के रोपण, फतेहगढ़, साहिब, लुधियाना, गुरदासपुर, नवांराहर, जालंधर, पटियाला, संगरूर, अमृतसर, फिरोजपुर, मोंगा, मानसा, कपूरथला तथा फरीदकोट आदि जिले, जो राज्य के 90 प्रतिशत क्षेत्र में आते हैं। इनमें भूजल का अति दोहन हुआ है। इसी प्रकार हरियाणा राज्य के जिलों में भूजल का अति दोहन हुआ है :– कुरूक्षेत्र, महेंद्रगढ़, पानीपत, रेवाड़ी, करनाल, कैथल, गुडगांव, भिवानी, यमुनानगर, फतेहाबाद और सोनीपत।

भूजल के अति दोहन ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। दरअसल भूजल का उपयोग बैंक में जमा पूंजी की तरह किया जाना चाहिए। धरती के अन्दर जितना जल संरक्षित हो, उसी हिसाब से निकासी होनी चाहिए। वर्तमान में भूमि के अन्दर जल तो कम संग्रहित हो रहा है और विभिन्न माध्यमों से भूजल की अधिक निकासी हो रही है। इसके चलते भूजल स्तर नीचे गिरता जा रहा है।

तालिका सं. – 2

भारत में सबसे अधिक दोहन करने वाले राज्य 2017

राज्य	कुल इकाई	चिन्ताजनक		गम्भीर		अति गम्भीर	
		इकाई	प्रतिशत	इकाई	प्रतिशत	इकाई	प्रतिशत
पंजाब	138	5	4	2	1	109	79
राजस्थान	295	29	10	33	11	185	63
दिल्ली	34	7	21	2	6	22	65
हरियाणा	128	21	16	3	2	78	61
हिमाचल	8	1	13	0	0	4	50
तमिलनाडू	1166	163	14	79	7	462	40
तेलांगना	584	169	29	67	11	70	12
भारत	6881	972	14	313	5	1186	17

स्रोत : दैनिक जागरण 5 सितम्बर, 2019

जल प्रदूषण के मानवीय स्रोत :–

घरेलू अपशिष्ट, औद्योगिक कल कारखानों के अपशिष्ट कृषि अपशिष्ट, तेलीय पदार्थों का मिलना, नगर एवं कस्वों का मलवा, रेडियोएक्टिव, अपशिष्ट आदि। कीटनाशक दवाईयां भी पानी मं मिलकर उसे दूषित करती हैं। महानगरों का अपशिष्ट, मलमूत्र, तथा कूराकरकट आदि पानी में मिलकर उसे दूषित बनाते हैं। मुंबई में प्रतिदिन 330 मिलियन लीटर मलमूत्र और 21 मिलियन लीटर कचरा फैंका जाता है। उड़ीसा स्थित खाद का कारखाना 10 से 15 टन तक गंधक और अम्ल दामोदर नदी में प्रवाहित करता है। बंगाल की हुगली नदी में जूट, लोहा, कोयला तथा पटसन के 180 उद्योगों का लाखों टन अशुद्ध अपशिष्ट प्रतिदिन डाला जाता है। बनारस, मथुरा, कानपुर, कोटा, अलवर, पाली तथा इन्दौर जैसे नगरों में भी रंग–रोगन व कपड़ा उद्योग के कारण नदियों और नलकूपों का पानी दूषित हो गया है।

भारत में 80 प्रतिशत बीमारियां का कारण प्रदूषित जल है। जल में उपस्थित विभिन्न पदार्थों तथा सूक्ष्म जीव जैसे शैवाल इत्यादि जल में रंगत उत्पन्न करते हैं, जिससे जल पीने में अरूचिकर लगता है। गांवों में शुद्ध पेयजल की समस्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है। लगभग एक लाख गांवो में पेयजल की कोई उचित व्यवस्था नहीं है। पानी में फ्लोराइड की मात्रा अधिक होने से आज भी गांवों में अपंगता, एकृति रोग तथा उदर रोगों में वृद्धि हो रही है।

तालिका संख्या–3

भूमिगत जल के मुख्य प्रदूषक

प्रदूषक पदार्थ
कार्बनिक पदार्थ :–
जैविक ऑक्सीजल मांग (बीओडी)
क्लोरीनीकृत फीनास्की अम्ल शाकनाशी
डिटरजेन्ट
आर्गेनोफास्फोरस खरपतवार नाशक

अकार्बनिक पदार्थ :–

अम्ल

क्षार

अल्यूमिनियम, जिंक आदि धातुएं

जैविक पदार्थ :–

कोलीफार्म जीवाणु

मल कोलीफार्म

मल स्ट्रेप्टोकोकाई

भौतिक लक्षण :–

रंग

गंध

ताप

अविलता

रेडियोधर्मी पदार्थ :–

सिजियम

आयोडीन

रेडियम

यूरेनियम

स्रोत : कुरूक्षेत्र जून 2003, पृ0सं0 24

तालिका संख्या–4

फ्लोराइड का शरीर पर दुष्प्रभाव

फ्लोराइड की मात्र (मिग्रा0/ली0)	माध्यम	दुष्प्रभाव
1.0	जल	दांतों में खोखलापन
2.0 या अधिक	जल	दांतों का बदरंग पड़ना
8.0	जल	अस्थि रोग
20–80	जल और वायु	लंगड़ापन
50	भोजन और जल	थाइराइड ग्रंथि परिवर्तन
100	भोजन और जल	वृद्धि में अवरोध
125 से अधिक	भोजन और जल	गुर्दों का रोग
2.5 से 5.0 ग्राम	अत्यधिक खुराक	मृत्यु भी हो सकती है।

स्रोत : कुरूक्षेत्र जून 2003, पृ0सं0 25

भूजल के अति दोहन से उत्पन्न समस्याऐं :–

भूजल की अत्यधिक दोहन या दुरूपयोग से अनेक समस्याऐं उत्पन्न हो रही हैं। अति दोहन के परिणाम स्वरूप भूजल स्तर में कमी तो हो ही रही है। इससे उथले कुओं के सूखने की समस्या नलकूल, ट्यूववेल आदि ने पानी देना छोड़ दिया है। जल के अभाव में किसानों की फसलें नष्ट हो रही हैं और वे भूखमरी के कगार पर पहुॅच जाते हैं।

जल संकट के घातक प्रभाव से मानव, पशु–पक्षी और हरे भरे खेत आदि सभी प्रभावित हैं। नदियों, झीलों, जलाशयों के साथ–साथ भूमिगत जल भी प्रदूषण की चपेट में आ गया है। भूजल का स्तर नीचे की ओर जाने से अनेक समस्याओं का जन्म हुआ है– ट्यूववेलों से अधिक गहराई से पानी खींचने के कारण धरती के गर्भ में पड़े हानिकारक रसायन–आर्सेनिक, फ्लोराइड आदि ऊपर आ जाते हैं, जो भूजल को प्रदूषित कर अनेक रोगों को जन्म देते हैं। अधिक फ्लोराइड से दांत खराब हो जाते हैं तथा रीड़, टांगों, पसलियों और खोपड़ी की हड्डियां भी प्रभावित होती हैं। जबकि आर्सेनिक की अधिकता से अतिसार, बमन, शरीर में ऐंठन, किडनी, लीवर तथा त्वचा को प्रभावित करती है। भूजल में कैडमियम, मरकरी (पारा) लेड (शीशा) तथा कॉपर (तांबां) आदि भारी धातुऐं मौजूद होती हैं। ये शरीर में तरह–तरह की बीमारियों को जन्म देती हैं। इस प्रकार देश में भूजल की स्थिति काफी गम्भीर एवं चिंताजनक है। इस दिशा में शीघ्र ही जरूरी कदम उठाये जाने की आवश्यकता है।

भारत में बढ़ते हुए जल संकट के कुछ मुख्य कारण निम्न है :–

1. भारत में कानून के तहत भूमि के मालिक को जल का भी मालिकाना हक दिया जाता है जबकि भूमिगत जल साझा संसाधन है।
2. बौरवेल का प्रोद्योगिकी से धरती के गर्भ से अंधाधुंध जल खींचा जा रहा है, जितना जल वर्षा से पृथ्वी में समाता नहीं है, उससे अधिक हम निकाल रहे हैं।
3. साफ एवं स्वच्छ जल भी प्रदूषित होता जा रहा है।
4. **जल संरक्षण हेतु :–** जल का सही ढंग से इस्तेमाल, जल का पुनः इस्तेमाल और भूजल की रिचार्जिंग पर समुचित ध्यान नहीं दिया जा रहा है।
5. **बारिश के जल का दुरूपयोग :–** केन्द्रीय जल आयोग के अनुसार भारत की सालाना जल जरूरत 3000 अरब घन मीटर है। देश में सालाना औसतन 4000 अरब घन मीटर की बारिश होती है। दुखद यह है कि 130 करोड़ लोग इन अनमोल बूंदों को तीन चौथाई हिस्से का भी सदुपयोग नहीं कर पाते हैं। जिसके चलते यह हर साल बर्बाद हो जाता है। एकीकृत जल संसाधन विकास पर गठित राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट बताती है कि सालाना लोगों द्वारा बारिश के कुल 1123 अरब घन मीटर पानी का ही इस्तेमाल हा पाता है। इसमें 6 प्रतिशत अबर घन मीटर सतह पर मौजूद जल है और 433 अरब घन मीटर जल रिसकर भूजल में मिलता है। बाकी सब व्यर्थ चला जाता है। इस बर्बाद होने वाले पानी को बचाकर हम पानीदार बन सकते हैं।
6. **भूजल का हाल :–** पेयजल के लिए सर्वाधिक भूजल का इस्तेमाल होता है लेकिन देश की कुल सिंचाई का 80 प्रतिशत भूजल से की जा रही है। ज्यादातर किसानों और उद्योगों द्वारा इसका दुरूपयोग किया जा रहा है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार इन दोनों मदों में देश के कुल भूजल का 12 प्रतिशत हिस्सा

खर्च किया जा रहा है। इन लोगों को अपनी जरूरतों के पूरा करने के लिए भूजल का इस्तेमाल सबसे आसान तरीका लगता है। इसी सोच में भारत सबसे अधिक भूजल दोहन करने वाले देश बना दिया है। भूजल दोहन के मामले में भारत विश्व में पहले स्थान पर है, दूसरे पर चीन और तीसरे पर अमेरिका के संयुक्त से भी ज्यादा भारत इसका दोहन कर रहा है।

7. **भूजल और पेयजल :–** भारत जितना भूजल दोहन करता है उसका सिर्फ आठ प्रतिशत ही पेयजल के रूप में इस्तेमाल करता है। भारत का अधिकांश भूजल गुणात्मक रूप से अभी पीने लायक है। जबकि अन्य स्रोतों का पानी प्रदूषित हो चुका है, उनके शुद्धिकरण की जरूरत है। समस्या इसलिए जटिल हो रही है क्योंकि देश की सिंचाई प्रणाली की कुशलता निम्नस्तर की है। सिंचाई के लिए जितना पानी इस्तेमाल होता है उसमें से करीब 60 प्रतिशत बर्वाद हो जाता है।

8. **गिरता भूजल स्तर :–** सरकारी अध्ययन बताते हैं कि देश का भूजल स्तर 0.3 मीटर सालाना की दर से गिर रहा है। एक अनुमान के मुताबिक 2002 से 2008 के बीच भारत ने 109 घन किलो मीटर भूजल का इस्तेमाल किया है।

9. **भूजल की उद्योगों में जरूरत :–** एक सार्वभौमिक विलायक, शीतलक और सफाई करने वाले तत्व के रूप में पानी उद्योगों की अनिवार्य जरूरत है ज्यादातर उद्योगों में भूजल का अत्यधिक दोहन के चलते कई बार इन उद्योगों को पानी न मिलने के कारण कारोबार ठप्प भी करना पड़ता है। वर्ल्ड रिसोर्स इंस्टीट्यूट की रिसोर्ट के अनुसार 2013 से 2016 के बची 14 से 20 थर्मल पावर प्लांट को पानी की किल्लत के चलते अपना काम बंद करना पड़ा था। उद्योगों को भी पानी इस्तेमाल के विकल्पों को तलाशना होगा अथवा जितना पानी साल भर इस्तेमाल करते हैं उतनी मात्रा का धरती में पुर्नभरण करना पड़ेगा तभी समस्या से निजात मिल सकती है।

10. **घरेलू बर्बादी और आरओ प्यूरीफायर :–** हमारे घंरों में इस्तेमाल होने वाला पानी 80 प्रतिशत बर्बाद हो जाता है। अधिकांश मामलों में इस पानी को शुद्ध करके दूसरे कार्यों या कृषि में इस्तेमाल नहीं हो पाता है। वाटर प्यूरीफायर का कारोबार तेजी से बढ़ रहा है, लेकिन इससे होने वाले पानी का नुकसान बड़ी चिंता का विषय है। आरओ से एक लीटर पानी हासिल करने के लिए चार लीटर पानी की जरूरत होती है। एक अध्ययन के अनुसार आरओ आधार वाटर प्यूरीफायर 74 प्रतिशत पानी का नुकसान करते हैं।

11. **बोतल बंद पानी :–** ब्यूरो ऑफ इंडियन स्टैण्डर्ड से पंजीकृत 6000 कंपनियां देश में बोतल बंद पानी के कारोबार से जुड़ी हुई हैं। औसतन हर घण्टे एक कम्पनी पांच हजार लीटर से 20 हजार लीटर तक पानी धरती से निकाल रही है। सालाना 15 फीसदी की दर से बढ़ रहे इस उद्योग से पानी इस्तेमाल में बर्बादी की दर करीब 35 फीसदी है।

12. **रोजाना की गतिविधियों में :–** इस्तेमाल होने वाले जल में सबसे ज्यादा उपभोग नहाने, कपड़े और गाड़ी धोने में होता है। इस तरह घरेलू उपभोग में खर्च होने वाला पानी का प्रतिशत– 35 प्रतिशत, पानी नहाने व कपड़े धोने में– 30 प्रतिशत, फ्लश करने में– 20 प्रतिशत, कपड़े धोने में– 10 प्रतिशत, खाना पकाने में और 5 प्रतिशत सफाई में होता है।

13. **राजनैतिक एवं प्रशासनिक इच्छा शक्ति की कमी :–** गलत प्राथमिकताऐं, जनता की उदासीनता एवं

सबसे प्रमुख ऊपर से नीचे तक फैली भ्रष्टाचार की संस्कृति। जल संसाधन वृद्धि योजनाओं पर करोड़ों रूपये खर्च करने के बावजूद समस्याग्रस्त गॉवों की संख्या उतनी की उतनी ही बनी रहती है।

14. बढ़ती आबादी और विकास के साथ आधुनिक जीवन शैली के कारण जल का उपयोग तीव्रता से बढ़ रहा है।

15. भूगर्भ जल भण्डार के असीमित दोहन और जल भण्डार व नदियो के पुर्नभरण पर ध्यान नहीं देने से भूगर्भ जल स्तर भी नीचे चला गया है।

प्रश्न यह है कि होने वाली वर्षा के कितने भाग को हम बेकार जाने देते हैं। बारिश के पानी को जितना ज्यादा हम जमीन के भीतर जाने देकर भूजल संग्रहण करेंगे उतना ही हम जल संकट को दूर रखेंगे और मृदा अपरदन रोकते हुए देश के सूखे और अकाल से बचा सकेंगे। अतः आवश्यकता है वर्षा की एक–एक बूँद का भूमिगत संग्रहण करके भविष्य के लिए एक सुरक्षा निधि बनाई जाय। यदि हम अपने देश के जमीनी क्षेत्र फल में से मात्र 5 प्रतिशत ही गिरने वाली वर्षा के जल का संग्रहण करलें, तो एक विलियन लोगों को 100 लीटर पानी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन मिल सकता है।

जल संकट निवारण के लिए कुछ मुख्य सुझाव निम्न हैं :–

1. जल का संस्कार समाज में हर व्यक्ति को बचपन से ही स्कूलों में दिया जाना चाहिए।
2. जल, जमीन और जंगल तीनों एक दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। इन्हें एक साथ देखने, समझने और प्रबंधन करने की आवश्यकता है।
3. भूजल दोहन अनियंत्रित तरीके से न हो इसके लिए आवश्यक कानून बनना चाहिए।
4. नदियों और नालों पर चैक डैम बनाए जाए, खेतों में वर्षा पानी को संग्रहीत किया जाए।
5. **नल बंद करके ब्रश करें** – आमतौर पर ब्रश करते समय हम नल खुला ही रखते हैं। इस आदत से एक बार में 5 लीटर तक पानी व्यर्थ बह जाता है। अगर पूरे महीने का हिसाब लगायें तो आंकड़ा 150 लीटर तक पहुँचता है। चार लोगों के परिवार में यह आंकड़ा 600 से 700 लीटर के बीच बैठता है।
6. **रिसते नल की टोंटियां बदलें** – बाथरूम या घर में नलों के रिसने से भी बहुत सा पानी बर्बाद होता है। टोंटी थोड़ी सी खराब हो जाए तो एक मिनट टपकने से 45 बूंद पानी बेकार हो जाता है। इससे तीन घंटे में लगभग एक लीटर से ज्यादा पानी बह जाता है। पानी बचाने के लिए रिसती टोंटियों को बदलना होगा।
7. **शेविंग करते समय टोंटी खुली न छोड़ें** – शेविंग करते समय टोंटी खुली छोड़ने से भी 7 लीटर पानी बेकार बह जाता है। पानी बचाने के लिए इस आदत को छोड़ दीजिए इससे आप महीने में 200 लीटर तक पानी बचा सकते हैं।
8. **शॉवर की जगह बाल्टी में पानी भरकर नहायें** – नहाने के लिए शॉवर की जगह बाल्टी में पानी रख लें तो पानी की काफी बचत हो सकती है। बाल्टी में पानी लेकर नहाने से पानी की खपत को 60 से 80 प्रतिशत तक कम कर सकते हैं।
9. **आज घरों में आरओ प्यूरीफायर का चलन है** – यह एक लीटर पानी साफ करने में 4 लीटर पानी खर्च कर देता है। तीन लीटर तक पानी बेकार वह जाता है। एक दिन में 10 लीटर पानी के लिए मशीन 40

लीटर पानी खर्च करती है। इस प्रकार 1 महीने में 12 हजार लीटर तक पानी बह जाता है। इस पानी को आप फ्लश, गाड़ी धोने और पौधों में पानी देने में काम ला सकते हैं।

10. **कम कपड़ो के लिए वाशिंग मशीन का प्रयोग न करें :–** कपड़े दो हों या 10 वाशिंग मशीन से धुलाई करने पर पानी इतना ही खर्च होता है। इसलिए पानी बचाने के लिए 8–10 कपड़ों को एक साथ धोना चाहिए। ऐसा करने से 4 या 5 हजार लीटर तक पानी बचा सकते हैं।

11. **टॉयलेट में भी पानी की बर्बादी –** खराब फ्लश के कारण हर महीने 5000 लीटर तक पानी बर्बाद हो सकता है। टॉयलेट टेंक की लीकेज पानी की बर्वादी का बड़ा कारण है। पानी बचाने के लिए फ्लश की जगह पानी की बाल्टी का इस्तेमाल करें। इससे हर महीने 4 या 5 हजार लीटर पानी की बचत होगी।

12. **कार धोने के लिए बाल्टी में पानी रखें :–** पाइप से पानी डालकर कार धोने में 230 लीटर तक पानी खर्च हो जाता है, जबकि अगर बाल्टी में पानी लेकर धुलाई की जाए तो 20 से 30 लीटर पानी ही लगता है। ऐसे में कार धोने के लिए थोडी सी मेहनत करायें, तो 200 लीटर पानी तक बचा सकता है।

13. **वर्तमान समय में वर्षा का बहुत कम होना –** वर्षा का बहुत सा जल बरसाती नदियों के रास्ते समुद्र में वह जाता है। इससे निचले इलाकों में बाढ़ भी आती है। इस पानी को धरती की टंकी में डाल दिया जय तो दो तरफा लाभ होगा। एक तरफ बाढ़ का समाधान होगा और दूसरी तरफ पानी की उपलब्धता बढ़ेगी।

14. **ऊँची मेड़ बन्दी करना –** हर किसान अमुक ऊँचाई की मेढ़ बंदी करेगा। इसकी इतनी ऊँचाई इतनी हो कि फल को नुकसान न हो। इससे वर्षा का जल अधिक समय तक खेत पर रूकेगा और धरती में जल अधिक भरेगा।

15. भूजल प्रदूषण पर निगरानी रखने के लिए एक नोडल प्रणाली विकसित की जाए।

16. भूजल के विकास : संरक्षण, उपयोग व नियोजन हेतु माइक्रो प्लानस बनाये जायें।

17. जल के वर्तमान संकट का कारण जल प्रबंधन की कमी है न कि जल की कम उपलब्धता इसका एक ही उपाय है कि जल संसाधनों को इस हद तक पुनर्जीवित किया जाये ताकि जल की सतत् उपलब्धता इसकी मांग से कहीं ज्यादा हो।

18. गिरते भूजल स्तर को रोकना होगा तथा अधिक गहरे भूजल स्तर वाले क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन भूगर्भ जल रिचार्जिंग, भूजल संसाधनों के दोहन को विनियमित करने तथा फसल चक्र में परिर्वतन करने हेतु क्षेत्र विशेष के लिए कार्य योजना तैयार करने की आवश्यकता है।

परम्परागत जल संसाधनां का रख–रखाव :–

वर्षा ऋतु के आगमन से पूर्व ग्रीष्म ऋतु के आगमन से पूर्व परम्परागत जल श्रोतों को– जल कुंड, सरोवर, कुआं और तालाबों की सफाई एवं अकाल राहत कार्यों के तहत उनको गहरा कराने के साथ ही उनकी मरम्मत का कार्य, ग्रामीण जल क्षमता के संवर्धन का श्रेष्ठतम उपाया हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों के जल स्रोतों को सरंक्षित रखने, भूगर्भीय, जल का विनियोजित, विदोहन, कृषि में न्यूनतम जल उपयोग, गन्दे घरेलू और उद्योगों के जल का समुचित निस्तारण और प्रबंधन, कृषि में कीटनाशकों प्रबंधन और जैविक खेती, पेय एवं सिंचाई के पानी की नियमित और समुचित जांच व देखरेख जैसे कुछ ऐसे महत्वपूर्ण पक्ष हैं जिन पर ध्यान देकर जल संबंधी

समस्याओं को नियंत्रित किया जा सकता है।

निष्कर्ष :-

मनुष्य को अभी से सचेत होना होगा, सोना, चॉदी और पैट्रोलियम के बिना जीवन चल सकता है, परन्तु बिना पानी के सब कुछ सूना और उजाड़ होगा। अतः हर व्यक्ति को अपनी जिम्मेदारी के प्रति सचेत रहना है। कि वे ऐसी जीवन शैली तथा प्राथमिकताऐं नहीं अपनाऐं जिसमें जीवन अमृत रूपी जल का अपव्यय होता है। भारतीय संस्कृति जल का वरूणदेव के रूप में पूजा अर्चना की जाती है। अतः जल की प्रत्येक बूंद का संरक्षण एवं सदुपयोग करने का निभाना आवश्यक है। देश में बढ़ते जल संकट को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने जल संरक्षण और वर्षा जल संचयन, पारंपरिक जल निकायों और टैंकों का नवीनीकरण बोरबेल रिचार्ज संरचनाओं का पुनः उपयोग, वाटरथेड़ विकास और गहन वनीकरण पर जोर देते हुए जल शक्ति अभियान शुरू किया है।

संदर्भ सूची :-

1. Dr. protush Mishra (2011) : Problems and prospects of water resource management in Bundelkhand regional sysmbiosis. Vol-10, 2011 page 57 Kanpur.
2. M.A. Chitatali (1992) : Population and water resource management un mish Communications pune page -52
3. H.R. Gautam and E.R. Kumar (2010) Butter Ground water management can user India in to second green Revolution, Kurukshetra, A Journal on Rural Development Vol. No.-7 page-3-5
4. V.K. Patil (1999): Water Resource potential and development Bilaspur district Transactions of the India status of India Geography Vol. 71 page 77-88
5. योजना पत्रिका जून 2003, सितम्बर, 2007
6.) कुरूक्षेत्र पत्रिका जून, 2003
7. कुरूक्षेत्र पत्रिका नवम्बर 2017, पेज–56
8. इण्डिया टुडे मई, 2016, पृ0 सं0–27–29
9. अमर उजाला 2016, 2017, 2018, 2019
10. दैनिक जागरण 2016, 2017, 2018, 2019
11. भूगर्भ जल विभाग, उ0 प्र0 2017
12. विज्ञान प्रगति, अगस्त 2018
13. हिन्दुस्तान, 2016, 2017, 2018

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 37-42

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Green Chemistry and Biochemistry : Towards Sustainable Innovation

Digambar Singh

B.Ed. (Student), Pt. Badri Prasad TT College, Bandikui, Dausa.

Definition and Scope of Green Chemistry :

Green chemistry refers to the design of chemical products and processes that reduce or eliminate the use and generation of hazardous substances. It focuses on sustainability by minimizing negative environmental impacts and enhancing energy efficiency.

Overview of Biochemistry :

Biochemistry is the study of chemical processes within and related to living organisms. It integrates principles of chemistry, biology, and physics to explore the molecular mechanisms that underpin biological functions, including metabolic pathways, enzyme activity, and cellular processes.

The Intersection of Green Chemistry and Biochemistry :

Green chemistry and biochemistry intersect in their shared aim of promoting sustainability. Green chemistry techniques are increasingly applied in biochemistry to improve the efficiency, safety, and environmental impact of biochemical processes.

Importance of Sustainability in Chemical and Biological Processes :

Sustainable practices in chemistry and biochemistry are critical in addressing global environmental challenges such as pollution, resource depletion, and climate change. Sustainable practices aim to create systems that are not only efficient but also have minimal adverse environmental effects.

Principles of Green Chemistry

Prevention of Waste :

Waste minimization is a core principle of green chemistry. By designing chemical processes that reduce or eliminate by-products, industries can reduce environmental contamination.

Atom Economy :

Atom economy measures the efficiency of a chemical reaction in terms of how much of the

starting materials end up in the desired product. Higher atom economy leads to reduced waste and more sustainable processes.

Less Hazardous Chemical Syntheses :

Green chemistry emphasizes the use of less hazardous chemicals in synthesis. This includes minimizing the toxicity of reactants, intermediates, and final products.

Designing Safer Chemicals :

The design of safer chemicals with minimal environmental impact is central to green chemistry. This includes chemicals that are biodegradable, less toxic, and non-persistent in the environment.

Energy Efficiency in Chemical Processes :

Green chemistry advocates for processes that require less energy, which reduces carbon emissions and energy consumption. Using alternative energy sources, like solar or biofuels, is a growing trend.

Use of Renewable Feedstocks :

Green chemistry promotes the use of renewable feedstocks, such as plant-based materials, instead of finite natural resources like fossil fuels.

Catalysis in Green Chemistry :

Catalysis reduces the energy required for chemical reactions, making processes more efficient. Green chemistry encourages the use of both traditional and bio-based catalysts to minimize energy consumption and by-product formation.

Applications of Green Chemistry in Biochemistry

Biocatalysis and Enzyme Applications :

Biocatalysis, which uses natural catalysts like protein enzymes to perform chemical reactions, is a prime example of green chemistry in biochemistry. Enzymes can catalyze reactions under mild conditions, reducing the need for harsh chemicals and energy-intensive processes.

Green Synthetic Pathways for Bioactive Molecules :

Green chemistry principles are applied to the synthesis of bioactive molecules used in pharmaceuticals and other biochemicals. For example, utilizing enzymes to catalyze reactions can eliminate the need for toxic solvents or reagents.

Green Solvents in Biochemical Processes :

Traditional organic solvents are often toxic and environmentally harmful. Green solvents, such as water or ionic liquids, offer safer alternatives in biochemical reactions and industrial applications.

Biochemical Processes in Renewable Energy Production :

Green chemistry is central to the development of biofuels and other renewable energy sources.

Biochemical processes such as fermentation and anaerobic digestion play key roles in converting biomass into renewable energy.

Green Chemistry in Pharmaceutical and Biotech Industries

Eco-friendly Drug Development :

The pharmaceutical industry has a significant environmental impact due to the large quantities of solvents, reagents, and energy required for drug synthesis. Green chemistry methods focus on reducing waste and energy use in the production of pharmaceuticals.

Green Methods for Drug Synthesis :

Green chemistry approaches such as microwave-assisted synthesis, enzyme catalysis, and solvent-free processes are being used to make drug production more sustainable by reducing hazardous waste and energy consumption.

Biotechnological Innovations for Sustainable Drug Production :

Biotechnology offers alternative pathways for drug production. By using microorganisms and enzymes to produce active pharmaceutical ingredients, the pharmaceutical industry can achieve more sustainable, scalable, and environmentally friendly production methods.

Reducing Environmental Impact of Pharmaceutical Manufacturing :

Green chemistry can reduce the environmental impact of pharmaceutical manufacturing by optimizing chemical reactions, reducing energy use, and utilizing green solvents and renewable feedstocks.

Biomass and Bio-based Materials

Biomass Conversion into Chemicals :

Biomass is a renewable feedstock that can be converted into valuable chemicals. Green chemistry methods are being developed to convert agricultural residues, wood, and other biomass into biofuels, bioplastics, and specialty chemicals.

Bioplastics and Sustainable Polymers :

Bioplastics, derived from renewable resources such as starch or cellulose, are a sustainable alternative to conventional petroleum-based plastics. Green chemistry is essential in developing efficient, environmentally friendly processes for bioplastic production.

Green Chemistry in Biofuels Production :

Green chemistry approaches to biofuels production focus on improving yield, efficiency, and sustainability. This includes the use of microorganisms for fermentation, enzymes for conversion, and bio-based feedstocks.

Biorefining and Its Role in Sustainability :

Biorefining is the process of converting biomass into a variety of bio-based products, including biofuels, chemicals, and materials. Green chemistry plays a key role in optimizing biorefining processes to minimize waste and energy consumption.

Nanotechnology in Green Chemistry and Biochemistry

Nanomaterials for Environmental Remediation :

Nanomaterials can be used in environmental remediation to remove pollutants from air, water, and soil. Green chemistry principles are applied to the synthesis of these nanomaterials to ensure that they are both effective and environmentally friendly.

Green Synthesis of Nanomaterials :

Nanomaterials can be synthesized using green chemistry methods that avoid toxic chemicals and reduce waste. Biologically inspired methods, such as using plant extracts or microorganisms, offer sustainable ways to produce nanoparticles.

Applications of Nanotechnology in Sustainable Biochemistry :

Nanotechnology offers innovative solutions for sustainable biochemistry, including the development of nanocatalysts for chemical reactions and nanostructured materials for energy storage and biosensing applications.

Challenges in Green Chemistry and Biochemistry

Economic and Technical Barriers :

Despite its promise, green chemistry faces economic and technical challenges. The costs of implementing green technologies, lack of infrastructure, and resistance to change can hinder widespread adoption.

Scaling Laboratory Success to Industrial Application :

Many green chemistry innovations work well in laboratory settings but face difficulties when scaled up to industrial production. Overcoming these barriers requires further research and technological advancements.

Public and Industry Perceptions of Green Chemistry :

Public awareness and industry adoption of green chemistry are crucial for its success. Educating stakeholders on the benefits of green chemistry can foster greater acceptance and implementation of sustainable practices.

Regulatory Issues and Green Chemistry :

Regulatory frameworks must adapt to incorporate green chemistry innovations. Governments and industries must work together to create standards that support sustainable practices while ensuring safety and efficacy.

Future Directions and Emerging Trends

Advances in Green Biochemistry :

The field of green biochemistry is advancing rapidly, with new biocatalysts, bio-based feedstocks, and sustainable reaction pathways being developed. Future research will likely focus on improving enzyme efficiency and expanding the range of bio-based products.

Sustainability in Chemical Engineering :

As the demand for sustainable processes grows, chemical engineering will play a key role in developing scalable green chemistry techniques. This will include innovations in process intensification, recycling, and energy recovery.

The Role of Artificial Intelligence and Machine Learning in Green Chemistry :

Artificial intelligence (AI) and machine learning (ML) are being explored to optimize chemical reactions, predict the environmental impact of processes, and discover new green materials and techniques.

Future Prospects for Green Chemistry in Global Sustainability :

The future of green chemistry is closely tied to global sustainability goals. As industries move toward circular economies and net-zero emissions, green chemistry will be at the forefront of developing processes that are not only efficient but also eco-friendly.

Conclusion

Summary of Key Concepts :

Green chemistry and biochemistry are integral to the development of sustainable technologies. By focusing on reducing waste, improving energy efficiency, and utilizing renewable resources, green chemistry offers solutions to many environmental challenges.

Importance of Integration in Green Chemistry and Biochemistry :

The integration of green chemistry with biochemistry enhances the sustainability of biochemical processes, from drug development to biofuel production, providing new opportunities for innovation.

Call to Action for Sustainable Practices :

As the world faces increasing environmental pressures, the adoption of green chemistry and biochemistry is critical for creating a sustainable future. Collaboration between academia, industry, and government is essential to drive forward the transition to greener, more sustainable practices.

Reference

Books :

1. **Anastas, P. T., & Warner, J. C. (1998).**Green Chemistry: Theory and Practice.Oxford

University Press.

2. **Meyer, A. S., & Santi, D. V. (2005).**Green Chemistry: A Guide to Frontiers and Applications. Springer.
3. **Clark, J. H., & Macquarrie, D. J. (Eds.). (2004).**Handbook of Green Chemistry and Technology. Blackwell Science.
4. **Tundo, P., & Anastas, P. T. (2016).**Green Chemistry: A Mechanistic Approach. Wiley-VCH.
5. **Dicks, A. L., & Rand, D. A. J. (Eds.). (2002).**Green Chemistry and Engineering: A Guide to Theory and Practice. Wiley.

Websites :

- U.S. Environmental Protection Agency (EPA). (2020). Green Chemistry Program. Retrieved from https://www.epa.gov/green-chemistry
- American Chemical Society (ACS). (2020). Green Chemistry Institute. Retrieved from https://www.acs.org/content/acs/en/greenchemistry.html

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 43-50

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

□स्य संयोजन प्रतिरूप पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव : गुरूग्राम जनपद के संदर्भ में

डॉ. राकेश कुमार

एक्सटेंशन लेक्चरर (भूगोल), एच.एल.जी. राजकीय कॉलेज, तावडू जिला नूँह (हरि0)

भारत में ग्रामीण आजीविका का प्रमुख स्रोत कृषि है। भारत की बड़ी जनसंख्या हेतु आजीविका खाद्य एवं पोषक सुरक्षा सुनिश्चित करने के क्रम में जलवायु परिवर्तन एक चिंता का विषय है, क्योंकि भारत की लगभग 700 मिलियन ग्रामीण जनसंख्या जलवायु संवेदनशील क्षेत्र से आजीविका प्राप्त करती है जोकि जलवायु परिवर्तन की प्रभावित सबसे ज्यादा सुभेदय हैं। ग्लोबल क्लाइमेट डिस्क इंडेक्स 2017 (Global Climate Disk Index 2017) के अनुसार भारत उन देशों में 14वे स्थान पर है जहां जलवायु परिवर्तन का प्रभाव सबसे अधिक होगा। जलवायु परिवर्तन की प्रभाव द्वारा मानसून वर्षा में कमी होने का अनुमान लगाया गया है। तथा साथ ही वर्षा की मात्रा में कमी होने का अनुमान लगाया गया है और साथ ही वर्षा की मात्रा में परिवर्तन होने से फसलों की उत्पादकता के साथ–साथ पौष्टिकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। भारत में 2010 से 39 के मध्य जलवायु परिवर्तन की नकारात्मक प्रभाव पड़ने के कारण 4.5 प्रतिशत से 9 प्रतिशत के मध्य कृषि उत्पादन के गिरने की संभावना है। यदि 10c तापमान बढ़ता है तो भारत में गेहूं के उत्पादन में 4 से 5 मिलियन टन की गिरावट आएगी। IPCC, 2007 की रिपोर्ट के अनुसार शुष्क तथा अर्ध शुष्क जलवायु प्रदेश जलवायु परिवर्तन से सर्वाधिक प्रभावित होंगे।

अध्ययन का उद्देश्य :–

1. जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न शस्य संयोजन प्रतिरूप में परिवर्तन का अध्ययन करना।
2. अध्ययन क्षेत्र में शस्य संयोजन प्रतिरूप का स्थानिक एवं कालिक अध्ययन करना।

शस्य विधियों में परिवर्तन :–

अधयन क्षेत्र : हरियाणा राज्य के दक्षिण–पूर्व में स्थित गुरुग्राम का पुराना नाम गुरूग्राम था जो महाभारत काल में राजा युधिष्ठिर ने गुडगांव गांव को अपने धर्मगुरू द्रोणाचार्य को उपहार स्वरूप दिया था। यह जनपद $27^0 39'$ से $28^0 32'$ उत्तरी अक्षांश एवं $76^0 39'$ से $77^0 20'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य फैला हुआ है।

गुरूग्राम जनपद की स्थिति एवं विस्तार

हरियाणा में गुरूग्राम जनपद

गुरूग्राम जनपद

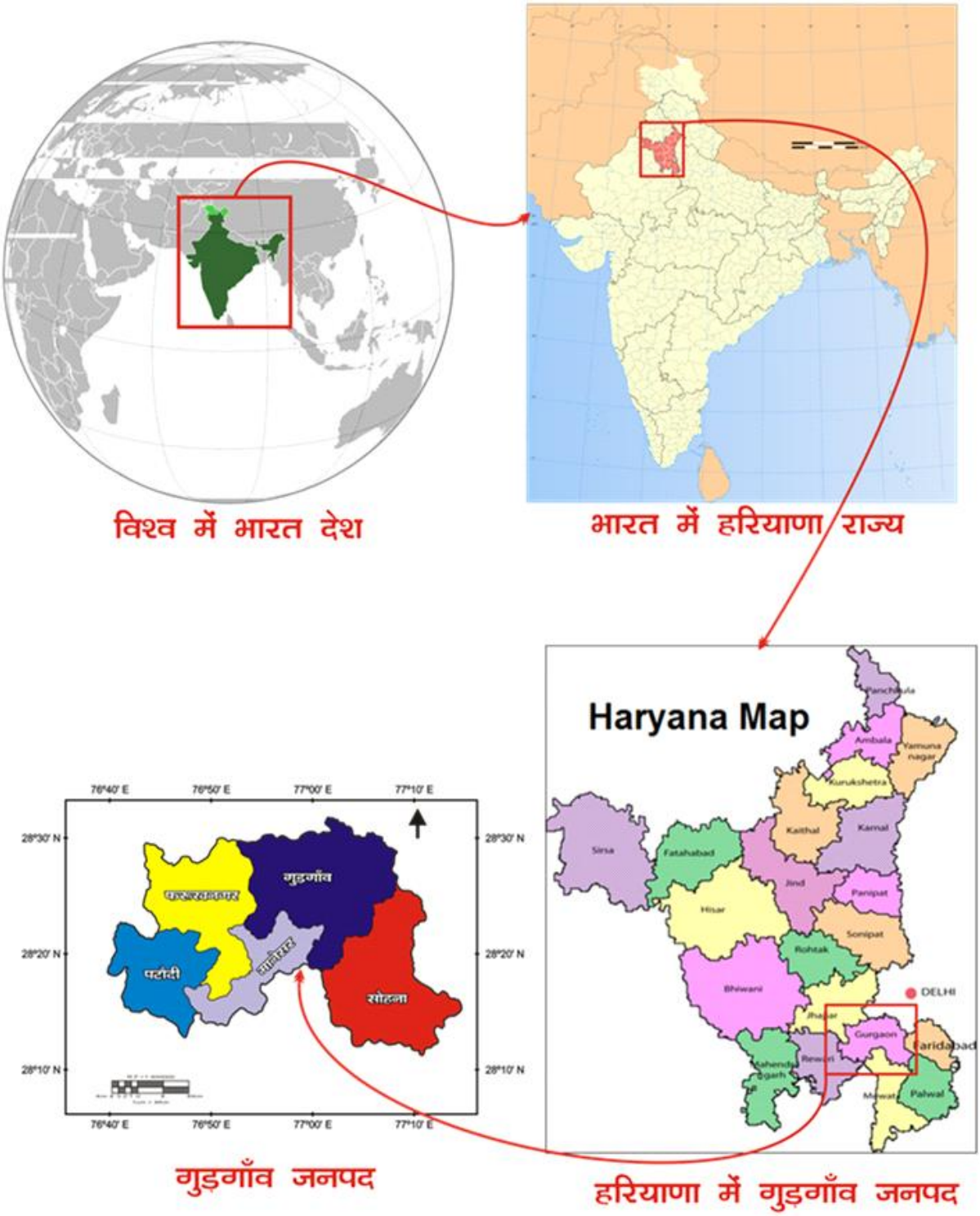

इस जनपद की उत्तरी सीमा दिल्ली राज्य, पूर्व में फरीदाबाद, दक्षिण–पूर्व में पलवल, दक्षिण में मेवात, दक्षिण–पश्चिम में राजस्थान राज्य की जनपद अलवर, पश्चिम में रेवाड़ी तथा उत्तर–पश्चिम में झज्जर जनपद

से लगी हुई है। यह जनपद राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के अन्तर्गत सम्मिलित है।

गुरुग्राम जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल 1254 वर्ग किमी है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार जनपद की कुल जनसंख्या 1514085 है। जिसमें पुरूषों की संख्या 817274 एवं महिलाओं की 696811 है। साक्षरता दर 84.4 प्रतिशत है। जिसमें पुरूषों की साक्षरता 90.26 प्रतिशत एवं महिलाओं की 77.61 प्रतिशत है। जनघनत्व 1207 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। जनपद में 5 तहसील, 3 उपतहसील, 4 पंचायत समिति, 4 विकासखण्ड, 207 पंचायतों तथा 281 (271 आबाद एवं 10 गैर आबाद) गांव हैं।

अध्ययन क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव विशेष रूप मानसून की क्रिया विधि पर देखा गया है। प्रत्येक वर्ष इस क्षेत्र में फसलों का बर्बाद होना, पेयजल समस्या, पशुओं की मृत आदि दुखद घटना की कारण अक्सर खबरों में रहता है।

अध्ययन क्षेत्र की संवेदनशीलता क्षेत्र में जल की कमी से और ज्यादा बढ़ जाती है। इसका प्रमुख कारण बरसा की अपर्याप्त एवं अनियमितता, सतही बहाव की अधिक दर एवं मृदा की चल धारण करने की क्षमता न्यून है। इसके साथ ही पारंपरिक जल प्रबंधन पद्धतियों को छोड़ना, अपर्याप्त जल संग्रहण संरचनाओं के कारण स्थिति और विकराल होती जा रही है। जल की कमी के कारण मृदा अवनयन की समस्या उत्पन्न हो गई है। वर्षा प्रतिरूप में परिवर्तन, बढ़ती उत्पादन लागत, बाजार मांग आदि के परिणामस्वरुप अध्ययन क्षेत्र में सत्य संयोजन प्रतिरूप में कालिक परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है।

ोध प्रविधि :–

प्रस्तुत अध्ययन में जे.सी. बीवर (1954) द्वारा प्रतिपादित न्यूनतम विचलन निर्धारण विधि को अपनाया गया है। बीवर ने शस्य संयोजन प्रदेश निश्चित करने का एक गणितीय मॉडल बनाया जिसका प्रयोग पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य पश्चिमी क्षेत्र का शस्य–संयोजन निर्धारित करने में किया गया। इस विधि में सबसे पहले वास्तविक भूमि उपयोग प्रतिशत ज्ञात कर अवरोही क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। इसके बाद वास्तविक भूमि उपयोग प्रतिशत ज्ञात कर अवरोही क्रम में व्यवस्थित किया जाता है, इसके तत्पश्चात वास्तविक एवं सैद्धान्तिक प्रतिशत के अंतर का वर्ग निकाला जाता है। तत्पश्चात सभी को जोड़कर उतनी ही फसलों की संख्या से विभाजित किया जाता है। इस प्रकार न्यूनतम विचलन विधि द्वारा सर्वोच्च व्यवस्था (Best Fit) को ही शस्य संयोजन में स्थान दिया जाता है। सैद्धांतिक प्रतिशत से तात्पर्य यह है कि सभी फसलों के अंतर्गत भूमि सामान रूप से सलंग्न है। यदि किसी क्षेत्र में एक फसल है तो इसका तात्पर्य है कि वह 100 प्रतिशत क्षेत्र में है। यदि दो फसल है तो प्रत्येक के अन्तर्गत 50 प्रतिशत क्षेत्र, तीन फसल होने पर प्रत्येक में 33.3 प्रतिशत क्षेत्र तथा यदि चार फसल है तो प्रत्येक फसल के अंतर्गत 25 प्रतिशत क्षेत्र होता है। उनका उद्देश्य मानक विचलन विधि द्वारा विचलन की वास्तविक मात्रा का ज्ञान करना न होकर विचलन (d) की सापेक्षिक कोटि (Relative Bank) का ज्ञान प्राप्त करना था। उन्होंने विचलन (d) के स्थान पर प्रसारण ($\sigma 2$) सूत्र का प्रयोग किया है।

$$\sigma 2=?\frac{d^2}{N}$$

यहाँ d^2 से तात्पर्य फसलों के सैद्धांतिक और वास्तविक फसल के अंतर से और N का तात्पर्य शस्य संयोजन में फसलों की संख्या से है। इस विधि द्वारा गणना के चरण निम्नानुसार हैं :–

1. प्रत्येक फसल के क्षेत्रफल का कुल फसलों के क्षेत्रफल से प्रतिशत प्राप्त कर उन्हें घटते क्रम में रखा जाता है।
2. इन फसलों को प्रथम फसल से प्रारंभ करके एक फसल, प्रथम दो फसल, प्रथम तीन फसल आदि का समूह बना लेते हैं। ये समूह संख्या में उतने ही होंगे, जितना की विचारणीय फसलों की संख्या होगी। इन समूहों को संयोजन कहते हैं।
3. प्रत्येक शस्य संयोजन की प्रत्येक फसल में सैद्धांतिक एवं वास्तविक प्रतिशतों का अंतर (d) ज्ञात करते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि संयोजन में फसलों की संख्या बढ़ने के साथ ही सैद्धांतिक प्रतिशत घटते जाते हैं।
4. सैद्धांतिक एवं वास्तविक फसलों का अंतर के वर्ग का योग (d) किया जाता है।
   इस कारण संयोजनों को सभी फसलों के अंतर में वर्ग का योग (zd) किया जाता है।
5. इस अंतर के वर्ग के योग को संयोजन में सम्मिलित फसलों की संख्या से भाग देकर (zd/N) प्रसरण ज्ञात किया जाता है।

तुलनात्मक विश्ले□ण :-

वीवर के न्यूनतम विचलन निर्धारण विधि के आधार पर गुरुग्राम जनपद (हरियाणा) के वर्ष 2005–06 व 2012–13 के मूल्य निकाले गये हैं–

तालिका-1 गुरूग्राम जनपद : वीवर विधि द्वारा □ास्य संयोजन की गणना

सं यो जन मे ं फसल सं ख्या	सैद्धां तिक क्षे त्र % (T)	वास्तविक क्षे त्र % (A)		अं तर (T-A–d)		अं तर का वर्ग (Zd)		वर्ग का यो ग (Zd/n)		प्रसरण	
		2005–06	2012–13	2005–06	2012–13	2005–06	2012–13	2005–06	2012–13	2005–06	2012–13
एक फसल सं यो जन	100	38.78	44.56	61.22	55.44	3748	3074	3748	3074	3748	3074
दो फसल सं यो जन	50 50	38.78 27.32	44.56 29.83	11.22 20.68	5.44 20.17	126 428	29.59 406.83	554	436.42	277	218.21
तीन फसल सं यो जन	33.3 33.3 33.3	38.78 27.32 19.84	44.56 29.83 11.05	5.48 5.98 13.46	11.26 3.47 22.25	30.03 35.76 181.17	126.79 12.04 495.06	246.96	633.89	82.32	211.30
चार फसल सं यो जन	25 25 25 25	38.78 27.32 19.84 1.79	44.56 29.83 11.05 4.56	13.78 2.32 5.16 23.21	19.56 4.83 13.95 20.44	189.88 5.38 26.63 538.70	382.59 23.33 194.60 417.79	760.59	1018.3	190.15	254.58

स्रोत : प्राप्त आंकड़ों से शोधार्थी द्वारा परिकलित

इन चरणों को गुरुग्राम जनपद की फसलों को लेकर समझा गया है। इस जनपद में प्रमुख फसलों का क्षेत्रफल निम्न प्रकार से तालिका 2 से स्पष्ट हैं। गुरुग्राम जनपद का वर्ष 2005–06 में कुल कृषि क्षेत्र 123 हजार हैक्टेयर था जबकि वर्ष 2012–13 में घटकर 114 हजार हैक्टेयर रह गया।

प्रथम चरण का प्रतिशत क्षेत्रफल ज्ञात कर फसलों को घटते क्रम में रखा जाता है। दूसरे चरण में फसलों के समूहन का काम किया जाता है। इस विश्लेषण में प्रथम संयोजन गेहूँ का, दूसरा संयोजन प्रथम दो फसल अर्थात गेहूँ और बाजरा, तीसरा संयोजन प्रथम तीन फसलों अर्थात गेहूँ, बाजरा तथा सरसों का होगा, चतुर्थ संयोजन में प्रथम चार फसलें गेहूँ, बाजरा, सरसों तथा चावल का होगा। इस प्रकार गुरुग्राम जनपद में चार शस्य संयोजन संभव है। इसमें सबसे उपयुक्त कौन–सा होगा, यह जानने के लिए गणना की निम्न प्रकार से की गई है।

वर्ष 2005–06 में न्यूनतम प्रसरण 82.32 तथा 2012–13 में 211.29 है जो गुरुग्राम जनपद की तीन फसल (गेहूँ, बाजरा, सरसों) वाले शस्य संयोजन के लिए है जबकि तहसीलवार शस्य संयोजन 2005–06 में गुरुग्राम मानेसर, फर्रुखनगर, पटौदी, तथा सोहना तहसील में भी शस्य संयोजन प्रदेश प्रथम तीन फसलों (गेहूँ, बाजरा, सरसों) का था, जबकि 2012–13 में गुड़गाँव, मानेसर, पटौदी तहसील का शस्य संयोजन प्रदेश दो फसल गेहूँ, बाजरा का है। फर्रुखनगर तहसील का शस्य संयोजन प्रदेश प्रथम तीन फसलों (गेहूँ, बाजरा, सरसों) का तथा सोहना तहसील में प्रथम चार फसलों (गेहूँ, बाजरा, सरसों, चावल) का शस्य संयोजन है, तालिका 3 से स्पष्ट है कि गुरुग्राम जनपद के फसल संयोजन में भिन्नता देखने को मिलती है।

तालिका – 2 :

गुरूग्राम जनपद : प्रमुख फसलों के अंतर्गत क्षेत्र का विवरण (000 हेक्टेयर में)

	गे हूँ		बाजरा		सरसो		चावल	
	2005–06	2012–13	2005–06	2012–13	2005–06	2012–13	2005–06	2012–13
फरालो का क्रम	1	1	2	2	3	3	4	4
क्षे त्रफल	47.7	50.8	33.6	34.0	23.7	12.2	2.2	5.2
कुल कृषि भू मि का प्रतिशत	38.8	44.6	27.3	29.8	19.3	10.7	1.8	4.6

शस्य संयोजन के निर्धारण में प्रतिशत समूह सीमान्त सांख्यिकी परिणाम बनते हैं। वहाँ व्यक्तिनिष्ठ तत्व प्रवेश कर जाते हैं। इसी तरह कुछ फसलें जो क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं होती पर बहुत उच्च कीमत वाली होने के कारण इस प्रकार की फसलों को भी शस्य संयोजन में स्थान नहीं मिल पाता है।

तालिका 3

गुरूग्राम जनपद : □ास्य संयोजन प्रदेशों की क्षेत्रीय विविधताएँ

शस्य सं यो जन	फसलो के नाम	क्षे त्र	
		2005–06	2012–13
दो शस्य	गे हूँ, बाजरा	––	गुरुग्राम, माने सर, पटौदी
तीन शस्य	गे हूँ, बाजरा, सरसो गे हूँ, सरसो, बाजरा	गुरुग्राम, फरूखगर, माने सर पटौदी, सो हना	फरूखनगर ––
चार शस्य	गे हू , बाजरा, सरसो , चावल	––	सो हना

स्रोत : शोधार्थी द्वारा परिकलित।

जनपद गुरूग्राम

जनपद गुरूग्राम

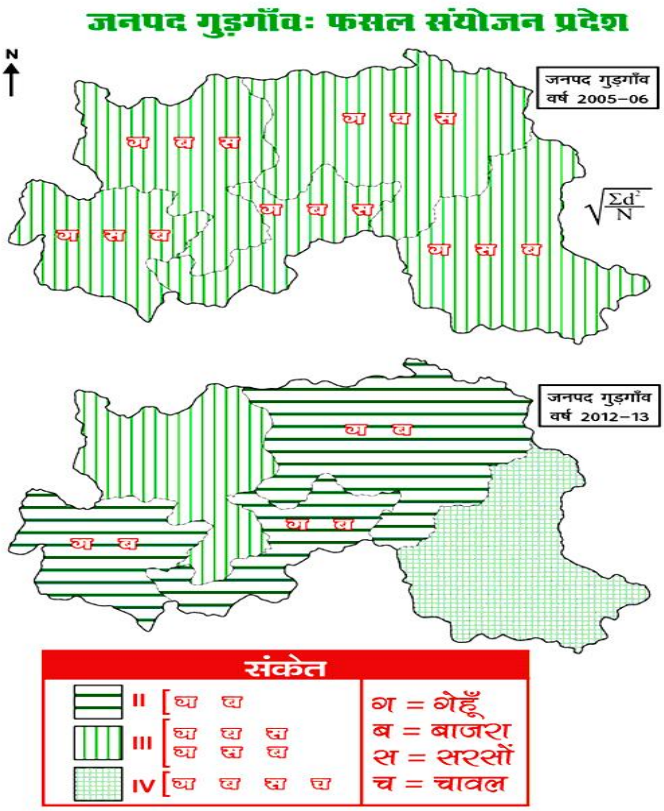

गुरूग्राम जनपद में फसल संयोजन प्रदेश

1. दो □ास्य संयोजन :

जनपद गुरुग्राम की गुरुग्राम, मानेसर तथा पटौदी तहसील में दो फसल संयोजन मिलता है। इन तहसीलों के कृषक अपनी कृषि योग्य भूमि में गेहूँ और बाजरा के उत्पादन पर समान रूप से बल देते हैं। इन प्रदेशों में सिंचाई नलकूपों के द्वारा होती है लेकिन सोहना तहसील में सिंचाई नलकूपों और नहरों द्वारा होती है। वर्ष 2005–06 के आंकड़ों और क्षेत्रीय अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि उस समय गुरुग्राम, मानेसर, फर्रुखनगर, पटौदी और सोहना तहसील में अर्थात सम्पूर्ण जनपद में तीन शस्यों का संयोजन था जिसमे गेहूँ, बाजरा तथा सरसों की फसलों पर समान बल दिया जाता था, लेकिन लगातार भूमिगत जल का प्रयोग नलकूपों से करने से शुष्क क्षेत्रों को भी सिंचित किया जाने लगा जिसके कारण वर्ष 2012–13 में गुरुग्राम, मानेसर तथा पटौदी तहसीलों के अधिकांश क्षेत्रों पर गेहूँ और बाजरा की फसल का संयोजन मिलता है। यह कृषि भू–दृश्य परिवर्तन उच्च तकनीक, उच्च किस्मों के बीज तथा सिंचाई की सुविधाओं के कारण शुष्क क्षेत्रों को भी सिंचित करके वहाँ गेहूँ की फसलों पर ज्यादा बल दिया जाने लगा है जिसे तालिका 3 से स्पष्ट है।

2. तीन □ास्य संयोजन :–

गुरुग्राम जनपद की फर्रुखनगर तहसील का क्षेत्र सबसे अधिक शुष्क वाला क्षेत्र है जहाँ बुलई मिट्टी मिलती है। फलतः गेहूँ, बाजरा तथा सरसों मुख्य फसल है। सिंचित क्षेत्र में गेहूँ उत्पन्न किया जाता है तथा कम सिंचित क्षेत्र में सरसों की कृषि की जाती है। नलकूपों के कारण कहीं–कहीं सरसों की फसल को सिंचित किया जाता है। वर्ष 2005–06 के आंकड़ों के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि सम्पूर्ण जनपद में तीन शस्य संयोजन था जबकि वर्ष 2012–13 में केवल फर्रुखनगर तहसील में तीन शस्य संयोजन है। यह तालिका 3 से स्पष्ट है।

3. चार □ास्य संयोजन :–

गुरुग्राम जनपद में वर्ष 2005–06 तक कोई भी क्षेत्र चार शस्य संयोजन के अधीन नहीं था। 2012–13 के आंकड़ों के अनुसार केवल सोहना तहसील का क्षेत्र चार शस्य संयोजन के अधीन हो गया। जहाँ गुरुग्राम नहर द्वारा सिंचाई के द्वारा चावल की फसल पर बल दिया जाने लगा। अर्थात् सोहना तहसील के कृषक गेहूँ, बाजरा, सरसों तथा चावल पर बल देते हैं जबकि अरावली पहाड़ियों की तलहटी में तथा इसके आस–पास के क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाएं कम होने के कारण सरसों तथा बाजरें की कृषि पर बल दिया जाता है जिसे तालिका 3 से स्पष्ट किया गया है।

□ास्य विधियों में परिवर्तन :–

बढ़ते मौसम के अनुसार हमें बुवाई के समय में भी बदलाव लाने हेांगे ताकि बढ़ते तापमान का प्रभाव कम हों। फसलों के कलेण्डर में कुछ बदलाव लाकर गर्म मौसम के प्रकोप से बचना व नये मौसम का अधिक उपयोग करना होगा। गेहूं की समय पर बुवाई अधिक तापमान सहन करने वाली प्रजातियों कतार से कतार की दूरी, पौध सघनता बढ़ाकर खरपतवारों की समस्या कम की जा सकती है। मिश्रित खेती व सह फसली खेती करके जलवायु परिवर्तन की दुष्परिणामों से निपटा जा सकता है। अंर्तवर्ती फसलों से खरपतवार की वृद्धि रूकेगी। ऐरोविक धान की खेती और खरपतवार नियंत्रण के लिए एकीकृत खरपतवार नियंत्रण की आवश्यकता है।

अतः इससे सम्बन्धित फसलों के समय में संशोधन कर अधिक उन्नत उपज प्राप्त की जा सकती है। निष्कर्ष : अध्ययन से सुस्पष्ट है कि गुरुग्राम जनपद में जलवायु परिवर्तन अधिक सक्रिय है और इसका फसलों

पर गहरा प्रभाव पड़ता है जैसा कि वर्ष 2005–06 में समस्त जनपद तीन फसल प्रधान था जो वर्ष 2012–13 में दो फसल प्रधान 3 तहसीले, तीन फसल प्रधान, 1 तहसील तथा 4 फसल प्रधान 1 तहसील है। कृषि शस्य संयोजन प्रदेशों पर निश्चित रूप से भौतिक दशाओं तथा सांस्कृतिक, सामाजिक कारकों का व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा है। तीव्र गति से कृषि में उत्पादन प्रविधियों की नयी–नयी तकनीके निकल रही हैं। क्षेत्र का कृषि स्वरूप द्रुतगति से परिवर्तित हो रहा है। जनपद में मुख्य रूप से गेहूं, बाजरा, सरसों, चावल की कृषि की जाती है। गेहूं यहां की महत्वपूर्ण फसल है। सरकार नित्य नये–नये तकनीकों का संज्ञान कृषकों को उपलब्ध करा रही है, जिससे अन्य फसलों के उत्पादन में वृद्धि हो सके।

सन्दर्भ सूची :-

1. Wearer J.C. (1954):Crop Combination Region in Middle west, G.R. vol. 44 April pp.175-200
2. Jonasson, D. (1956) : Agricultural regions of europe, economic geography (1925) and 2 pp19-48
3. Hussain M. (1972): Crop. Combination Regions of VPA study in methodology, GRI 34 pp 134-56
4. Harvey D.W. (1966) : Theorical concepts and analysis of agricultural landuse pattern AA AG Vol 56, pp. 361-90
5. Hussain M. (2014), Agricultural Geography, Rawat Publications, New Delhi, PP 194
6. Tiwari, R.C. & Singh, B.N. (2007) Agricultural Geography, Prayag Pustak Bhawan Allahabad, PP 116

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 51-55

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सामा–चकवा में पर्यावरण संरक्षण

मन्जू कठायत

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय द्वाराहाट, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

शोध सार :–

गीताश्री की रचना सामा–चकवा ''इको–फेमिनिस्ट'' उपन्यास है 'सामा–चकवा' में द्वापर युग की अंतिम प्रेम कथा का वर्णन किया गया है। भगवान् 'श्रीकृष्ण' की सबसे छोटी बिटिया, सामा के जीव–प्रेम और प्रकति–प्रेम की कथा में 'चिपको आंदोलन' की त्वरा भरकर उसका अन्तः पाठीय ध्वनि–विस्तार से पर्यावरण संरक्षण को महत्व दिया है। गीताश्री ने इस उपन्यास के माध्यम से पाठकों को प्रकृति प्रेम के साथ जुड़ने और पर्यावरण संरक्षण को समझने के लिए प्रेरित करती है। इस कृति में लेखिका पर्यावरण संरक्षण तथा पर्यावरण के प्रति अथाह लगाव व प्रेम को सरल और रोचक भाषा में प्रस्तुत करती है जिससे समाज प्राकृतिक महत्व को समझने में समक्ष हो सकें तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अमानवीय व्यवहार न करें।

गीताश्री के 'सामा–चकवा' उपन्यास में बिहार और उत्तर भारत की लोक संस्कृति, स्त्री जीवन और पर्यावरणीय मुद्दों को गहराई से उजागर करती है। यह उपन्यास पर्यावरण संरक्षण के पहलुओं को लोकगाथाओं और परम्पराओं से जोड़कर प्रस्तुत करती है। 'सामा–चकवा' उपन्यास लोककथा और प्राकृतिक पर्व से जुड़े हैं जिसमें प J–पक्षियों और वृक्षों की रक्षा करने और सामूहिक सहभागिता की भावना को प्रोत्साहित करती है। उपन्यास में स्त्री पात्रों को पर्यावरण प्रेमी के रूप में दर्शाया गया है। वे जल, वृक्ष और जीव–जंतुओं को अपने परिवार का हिस्सा मानती है। इससे यह संदेश मिलता है कि पर्यावरण और समाज के बीच गहरा संबंध है। शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण 'प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो रहा है इससे पारंपरिक जीवन शैली और पर्यावरण दोनों पर संकट गहराता जा रहा है। प्राकृतिक पर्यावरण पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व और संतुलन के लिए अनिवार्य है। यह हमें वायु, जल, भोजन और प्राकृतिक संसाधन प्रदान करता है, जो हमारे जीवन को आरामदायक और संभव बनाते हैं लेकिन आधुनिक युग में प्राकृतिक संसाधन के अति दोहन से पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, और औद्योगीकरण के कारण पर्यावरण संकट और असंतुलन गहराता जा रहा है इसलिए इसका संरक्षण अत्यंत आवश्यक हो गया है। गीताश्री का 'सामा–चकवा' उपन्यास केवल एक कथा ही नहीं बल्कि पर्यावरण संरक्षण और लोक–संस्कृति के महत्व को दर्शाने वाला सामाजिक दर्पण है। यह पाठकों को प्राकृतिक संसाधनों के महत्व और उनके संरक्षण की आवश्यकता को समझने के लिए प्रेरित करती है।

बीज शब्द :– इच्छाधारी चिड़िया, सुरखाव जाल, बहेलिया, न्यायोचित, संस्कृति, अरण्यक संस्कृति, क्रौंच पक्षी, सामा–चकवा, चारुवक्त्र, रैनबसेरा, राहगीरों।

मूल आलेख :-

'सामा चकवा' उपन्यास में गीताश्री ने सामा के माध्यम से प्रकृति प्रेम व पर्यावरण संरक्षण का संदेश पाठकों को दिया है। यह उपन्यास सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है, जिसमें मिथिला श्रेत्र की परम्पराएं, लोकसंस्कृति, लोकगीत, और स्त्री जीवन की विविध पक्षों को उकेरा गया है। इस उपन्यास में पर्यावरण की महत्ता एक सूक्ष्म लेकिन महत्वपूर्ण रूप में उभरकर सामने आती है। गीताश्री ने उपन्यास में स्त्रियों और प्रकृति के बीच एक आत्मीय और गहरा संबंध दिखाया गया है। स्त्री जीवन की पीड़ा, सहनशीलता और सौंदर्य को अक्सर प्रकृति से जोड़ा गया है यह भी एक प्रकार से प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता को द ार्शाता है। सामा–चकवा में सामा की माँ जाम्बवती सामा का पक्ष लेते हुये श्रीकृष्ण से पर्यावरण संरक्षण की बात सीधे तौर पर न कहकर सांस्कृतिक और भावनात्मक रूप में व्यक्त होती है। यह हमें याद दिलाता है कि प्रकृति और परम्परा का संबंध टूटने से न केवल संस्कृति बल्कि हमारा पर्यावरण और समाज भी संकट में आ जाता है।

द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण अपने राज्य के कु ाल अहेरियों और पुराने सखा भद्रवाह के साथ राजा के कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए अहेरियों का शिकार करने की प्रथा में शामिल होने के लिए तैयार थे। जिस बाण से शिकार करते हैं उसी बाण की पूजा करने के लिए प्रजा जमा हुई है, लेकिन सामा को बिलकुल भी यह प्रथा पसन्द नहीं थी। कृष्ण भली–भांति जानते थे कि भौगोलिक परिस्थितियाँ, खान–पान और आचार–व्यवहार संस्कृति को तय करती हैं, वे किसी समुदाय के खान–पान पर प्रतिबंध लगाए जाने के पक्ष में नहीं थे, इसी कारण अपने कर्तयों का पालन कर रहे थे। बेटी, सामा और पत्नी जाम्बवती को यह बिलकुल ठीक नहीं लगता है। जाम्बवती श्रीकृष्ण से कहती है– ''आप जंगल उजाड़ने पर क्यों तुले हैं। आपने नया राज्य बसाया, जंगल काटे, वनवासी उजड़ गए। आपने राहगीरों के लिए सराय बनाये, मार्ग चौड़े किए, धर्मशालाएँ बनवाई, रैनबसेरा बनवाया इन सब का मूल्य हमारे जंगल को चुकाना होता है, जंगल आसमान से नही टपकते प्रभु! आपने हस्तिनापुर बसाने के लिए जो किया क्या वो उचित था। आपको स्मरण है न, आपने रातों रात जंगल जलाने के लिए एक राक्षस का आवाहन किया था। जंगल जलाने के लिए राक्षस पैदा किए जा सकते हैं, जंगल उगाने के लिए ताकतें नहीं खोजी जा सकती''।[1]

जिस बाण से हिरणों का आखेट किया जाता है उस बाण को सामा अग्निकुण्ड में झोंक देती है ताकि काई शिकार न कर पाये! परन्तु इस कारण सामा को श्राप दिया जाता है। सामा की माँ जाम्बवती, सामा का पक्ष लेते हुए कहती है–''आपके आखेट से जंगल खतरे में हैं। वन्य पशु खतरे में पड़ जाएँगे। अहेरियों की हिम्मत बढ़ जाएगी। मुझे इससे गहरी पीड़ा होती है। जंगल मेरा प्रथम घर है। वन्य पशु मेरे संबंधी। उन्हें बचाने की जिम्मेदारी हमारी है। आप उनके घर में घुस रहे हैं। उनके लिए जंगल बचाना जरुरी है। जंगल बचाने जी श्रेष्ठ शक्ति किसी के पास है तो वह है वनवासियों और पशु–पक्षियों में। उन्हें ही घेर कर मारा जा रहा है''।[2]

जाम्बवती के माध्यम से प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता तथा पर्यावरण प्रेमी का वर्णन किया गया है। वे जल, वृक्ष और जीव–जंतुओं को अपने परिवार का हिस्सा मानती है। इसमें यह संदेश मिलता है पर्यावरण और समाज के बीच गहरे सम्बन्ध होते हैं। जाम्बवती पेड–पौधों को सजीव प्राणी मानते हुए कहती है ''जो मनुष्य पेड़ काट सकता है, वह मनुष्य को भी काट सकता है। पेड़ काटना, मानव हत्या के समान है''।[3]

शास्त्रों में भी कहा गया है कि एक वृक्ष दस पुत्रों के समान होता है।

दशकूप समानवापी, दशवापी समोहद।

दशहदः समः पुत्रों, दशपुत्र समोद्रूमः।।

पर्यावरण हमारे अस्तित्व का मूल आधार है। यह न केवल प्राकृतिक से साधनों का भंडार है बल्कि संपूर्ण जीव जगत का पोषण भी करता है। परन्तु बढ़ती अमानवीय गतिविधियों के कारण पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है। गीताश्री की सामा–चकवा की नायिका सामा ने पर्यावरण नष्ट करने वाले लोगों को लालची कहते हुए कहती है– ''मनुष्य अपने लिए प्रकृति का कितना दोहन करता है। उपभोग की कोई सीमा रेखा नहीं होती..... .. जो क्रय से परे है, उसका जम कर उपभोग करने वाली हमारी मनुष्यता कितनी लालची है''।[4]

जिस प्रकार उत्तराखण्ड के चमोली जिले के रैंणी गाँव के जंगलों को गौरा देवी और उनकी साथी महिलाओं ने पेड़ों को घेरकर चिपको (गले लगाने) की रणनीति अपनाकर मजदूरों को पेड़ों को काटने से रोका तथा सरकार और ठेकेदारों को चेतावनी दी कि वे अपने जंगलों को नष्ट नहीं होने देंगी। उसी प्रकार से सामा और उसके पाँचों सखियाँ ने चूड़क सामंत के भाई को पेड़ काटने से रोक लिया। उसका एक उदाहरण इस प्रकार है– ''स्वामी के आदेश पर कुछ लोगों ने वृक्ष पर प्रहार करना चाहा कि पाँचों सखियों समेत सामा उस वृक्ष से लिपट गई। वृक्ष काटने वालों के हथियार उठे के उठे रह गए। उसमें से एक दौड़ पड़ा दूसरे सागवन वृक्ष की ओर..... जगधात्री दौड़ कर उस वृक्ष से लिपट गई। वे लोग जिस वृक्ष की तरफ हथियार उठाते सामा समेत सारी सखियाँ दौड़–दौड़ कर वृक्ष से चिपक जाती''।[5] स्वामी समेत सारे अहेरियों को वनवासियों ने घेर लिया और उनके आगे चारुवक्त्र खड़ा था, तीर–धनुश लिए। इस प्रकार सामा, चारुवक्त्र और सखियों ने अपने जंगल की रक्षा की।

बढ़ती जनसंख्या और शहरीकरण के कारण बड़े पैमाने पर जंगल काटे जा रहे हैं जिनसे जलवायु परिवर्तन और प्रदूशण आदि समस्या गहराती जा रही है। वर्तमान में देखने को मिलता है कि कुछ व्यवसायी वर्ग वनों की कटाई, खड़िया खन्न के लिए सरकार से अनुमति मांगते हैं। वह अपनी आजीविका हेतु पर्यावरण का दोहन करते हैं। सरकार को ऐसे कार्यों पर प्रतिबंध लगाना चाहिए क्योंकि आजीविका कुछ ही लोगों के लिए होती है पर्यावरण संसार के सभी लोगों के लिए। सामा–चकवा में भी चूड़क राजा के पास अपनी और व्यापारियों की आजीविका का हवला देकर राजा से कहता है ''राजन राजकुमारी सामा ने हम सबका जीना दूभर कर दिया है। उनकी वजह से आपके कुल का नाम भी खराब हो रहा है। वृंदावन–मथुरा का समूचा वणिक वर्ग उनसे नाराज है। लकड़ियों के व्यापारी, लकड़हारे, राज्य के अहेरी, भ्रमण को जंगल की तरफ जाने वाले सैलानी सब मुश्किल में हैं। लकड़ी का कारोबार ठप्प हो गया है। वे जंगल में घुसने नहीं देते हैं। हमारे बडे भ्राता के भूखों मरने की नौबत आ गई है वे जब भी जंगल की तरफ जाते हैं, सामा वनवासियों को लेकर सामने खड़ी हो जाती है। सब तीर लेकर तन जाते हैं वनवासी स्त्रियाँ वृक्षों से चिपक जाती हैं''।[6]

सामा–चकवा की नायिका सामा को पिता द्वारा श्राप मिला उसे चकवी पक्षी बना दिया जाता है। सामा पक्षी रूप में वनों को बचाने का पूरा प्रयास करती है। सामा चकवी सभी पक्षियों को अपने साथ उस जगह पर ले जाती जहाँ श्रमिक अपने स्वामी के आदे ानुसार वनों को काटने वाले थे। जिन हाथों से वृक्षों को काट रहे थे उन हाथों पर परिंदों ने चोंच मारा। कुल्हाडी सबके हाथों से छूट कर नीचे गिर गए। सारे वनवासी श्रमिक उल्टे गाँव भाग खड़े हुए। वे भागते हुए चिल्लाने लगे भागो वन देवता क्रोधित हो गए हैं.....और वन देवता से

कहते हैं ''हमें क्षमा कर दो.... हम विवश थे.... हम भार्मिदा हैं देवता..... हम अपने ही जीवन आधार को काटने चले थे'' ।[7]

उपन्यास के अन्त में चूड़क पूरे जगल में आग लगा देता है। सामा, चकवी रूप में थी चकवी को रात में दिखाई नहीं देता है। सामा ने स्त्री रूप और पक्षी रूप में भी वनों की रक्षा की थी आज आग लगने पर पेड़ पौंधे सामा चकवी की रक्षा करते हैं। सामा रोते–रोते भी दंग हो उठी है। वह जिन वृक्षों की रक्षा करती है, विपत्ति आने पर वही वृक्ष उनके बचाव में अपनी आहुति दे रहे हैं सामा, कृतज्ञता में रो पड़ी....। ''हे देव... आप हमारे पूर्वज हैं। आप हैं। मानव जाति के अग्रज सभ्यताओं ने स्त्री और प्रकृति पर बहुत अत्याचार किए आपने हमें बचाया... आप युगों तक हम स्त्रियों द्वारा पूजे जाएँगे, आपने हमें बचाया हम स्त्रियां आपको बचाएँगी'' ।[8] सामा को बचाने के लिए बरगद ने आसमान को बादल दिए और बादलों ने घनघोर बारि ा कर दी जंगल के ऊपर। कुछ पेडों ने अपनी जड़ों में पानी बचा रखा था, उन्होने नदियाँ बहा दी। सरोवर का पानी ऊपर आया और जंगल में फैलने लगा दखते–ही देखते इतनी बारि ा हुई कि सारी आग बुझ गई। गीताश्री द्वारा रचित सामा चकवा पर्व स्वयं एक प्रकृति आधारित लोकपर्व है जिसमें चिडियों, वृक्षों और मौसम से संबंधित प्रतीकात्मकताएं हैं। ये परम्पराएं प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व का भाव प्रकट करती हैं।

उपन्यास में नायिका और अन्य पात्रों की प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता दिखाई देती है। यह संदेश देता है कि प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान और संरक्षण कितना जरुरी है। सामा–चकवा लोककथा और पर्व प्रकृति से जुड़े हैं जिसमें पशु–पक्षियों और वृक्षों के प्रति प्रेम दर्शाया गया है। यह लोकपरम्पराएँ लोगों को प्रकृति की रक्षा करने और सामूहिक सहभागिता की भावना को प्रोत्साहित करती हैं। पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं का साहित्य सामा–चकवा का योगदान पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वे न केवल प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करती है, बल्कि सत्त विकास, जलवायु परिवर्तन से निपटने और जागरुकता बढ़ाने में भी योगदान देती है।

निष्कर्ष :-

पर्यावरण हमारे जीवन का आधार है। यह हमें शुद्ध वायु, जल, भोजन, ऊर्जा और जीवन जीने के लिए आवश्यक सभी संसाधन प्रदान करता है। वर्तमान समय में जब औद्योगीकरण, शहरीकरण और तकनीकी विकास तेजी से हो रहा है तब पर्यावरण का संरक्षण और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। वर्तमान समाज में पर्यावरण का संरक्षण न केवल हमारी जरूरत है, बल्कि यह आने वाली पीढ़ियों के लिए हमारी जिम्मेदारी भी है कि हमें पौंधारोपण, जल संरक्षण, स्वच्छता और नवीनीकरणीय ऊर्जा के उपयोग जैसे उपायों को अपनाकर पर्यावरण की रक्षा करनी चाहिए। पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को समझाना तथा पर्यावरणीय संकटों की पहचान करना तथा समाधान के उपाय जन जागरुकता द्वारा ही संभव है।

पर्यावरण संरक्षण केवल सरकारों की जिम्मेदारी नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। यदि हम आज सचेत नहीं हुए तो आने वाली पीढ़ियों इसने गंभीर दुष्परिणाम भुगतेंगी। छोटे–छोटे प्रयास प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए जैसे वृक्ष लगाना, प्लास्टिक का कम उपयोग करना, अपनी आव यकताओं को कम करना आदि पर्यावरण को बचा सकते हैं तथा हमें मिलकर एक हरित और स्वच्छ भविष्य की ओर कदम बढ़ाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. गीताश्री, सामा–चकवा, पृ० सं०–19
2. गीताश्री, सामा–चकवा, पृ० सं०–21
3. गीताश्री, सामा–चकवा, पृ० सं०–21
4. गीताश्री, सामा–चकवा, पृ० सं०–34
5. गीताश्री, सामा–चकवा, पृ० सं०–47
6. गीताश्री, सामा–चकवा, पृ० सं०–102
7. गीताश्री, सामा–चकवा, पृ० सं०–153
8. गीताश्री, सामा–चकवा, पृ० सं०–192

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 56-64

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Economic Aspect of Sustainability

Amit Singh

Research Scholar, Department of Geography, K.R. (PG) College, Mathura, Uttar Pradesh
Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra, Uttar Pradesh, India.

1. Introduction :

Sustainability is a broad concept that integrates economic, environmental, and social elements to foster long-term prosperity. The economic dimension is particularly vital as it influences the feasibility of sustainable practices, resource distribution, and the effectiveness of environmental policies. Achieving economic sustainability involves stimulating financial growth while mitigating environmental harm and social disparities.

In recent years, global economies have faced rising concerns over resource depletion, climate change, and ecological instability caused by unsustainable industrialization and consumption patterns. This paper explores the economic dynamics of sustainability, focusing on financial instruments, policy structures, corporate accountability, and consumer participation in sustainable development.

2. Theoretical Foundations of Economic Sustainability :

The concept of economic sustainability is rooted in the principle of ensuring long-term economic growth without compromising the capacity of future generations to meet their needs. This principle is supported by several theoretical frameworks that provide a conceptual foundation for understanding and implementing sustainable economic practices.

2.1 The Triple Bottom Line Model (TBL) :

John Elkington's Triple Bottom Line (TBL) model emphasizes the interconnectedness of economic, environmental, and social dimensions.[4] It challenges the conventional focus on profit maximization by advocating for a holistic approach that considers "People, Planet, and Profit." This framework encourages businesses to measure their performance not only in financial terms but also in terms of their social and environmental impact.[5] The TBL model underscores the importance of stakeholder engagement, transparency, and accountability in fostering sustainable business practices. For instance, companies that adopt TBL principles often invest in employee well-being programs,

reduce their carbon footprint, and engage in community development initiatives, demonstrating a commitment beyond mere financial returns.[6]

2.2 The Circular Economy Framework :

The circular economy framework presents a paradigm shift from a linear "take-make-dispose" model to a regenerative system that minimizes waste and maximizes resource efficiency.[7] It promotes closed-loop processes, where products and materials are recycled, reused, and remanufactured.[8] This approach aims to decouple economic growth from resource consumption and environmental degradation.[9] By emphasizing resource recovery and waste reduction, the circular economy can create new economic opportunities while reducing the environmental footprint of production and consumption.[10] For example, companies are increasingly adopting product-as-a-service models, where customers lease products instead of owning them, facilitating easier recycling and remanufacturing, and extending product lifecycles.[11]

2.3 Green Growth Theory :

Green growth theory posits that economic growth and environmental sustainability are not mutually exclusive.[12] Instead, it argues that investments in eco-friendly technologies, renewable energy, and sustainable infrastructure can drive economic development while reducing environmental impact. This theory emphasizes the role of innovation, technological advancements, and policy interventions in fostering a low-carbon, resource-efficient economy. Green growth strategies aim to create a win-win scenario where economic prosperity is achieved alongside environmental protection.[13] The rapid expansion of the renewable energy sector, driven by policy incentives and technological advancements, demonstrates the potential of green growth, creating jobs and reducing reliance on fossil fuels.[14]

3. Economic Instruments for Sustainability :

The transition to a sustainable economy necessitates the implementation of effective economic instruments that incentivize eco-friendly practices and discourage environmentally harmful activities.[17]

3.1 Green Investments and Sustainable Finance :

Green investments and sustainable finance play a crucial role in channeling capital towards eco-friendly projects and industries.[18] Green bonds, ESG (Environmental, Social, and Governance) investments, and sustainability-linked funds are increasingly popular financial instruments.[19] These instruments enable investors to support projects that contribute to environmental sustainability and social responsibility.[20] Sharma, A. (2019) has highlighted the important role of sustainable finance in India's green growth. The Reserve Bank of India (2022) also published documents related to green finance, indicating the growing importance of this sector.[21]

3.2 Carbon Pricing and Environmental Taxation :

Carbon pricing mechanisms, such as carbon taxes and cap-and-trade systems, are designed to internalize the external costs of greenhouse gas emissions.[22] These policies incentivize businesses to reduce their carbon footprint by making pollution more expensive.[23] Environmental taxes on pollutants, such as sulphur dioxide and nitrogen oxides, can also encourage the adoption of cleaner technologies and production processes.[24] Stern, N. (2007) in the Stern Review explored the economics of climate change and emphasized the importance of carbon pricing as a crucial tool.[25]

3.3 Incentives and Subsidies for Sustainability :

Governments can provide financial incentives, such as subsidies, tax breaks, and grants, to promote the adoption of sustainable practices.[26] Subsidies for renewable energy projects, tax credits for energy-efficient buildings, and grants for sustainable agriculture can accelerate the transition to a green economy.[27] These incentives can help overcome the initial cost barriers associated with adopting sustainable technologies and practices, making them more accessible.[28]

3.4 Risk Management and Resilience :

Economic sustainability also involves managing risks associated with environmental and social factors.[32] Financial institutions and businesses should incorporate climate change risks, resource scarcity, and social vulnerabilities into their risk assessment and management frameworks.[33] This proactive approach can enhance resilience to shocks and disruptions, ensuring long-term financial stability and business continuity.[34] The insurance sector, for example, plays a critical role in mitigating climate-related risks and promoting investments in resilient infrastructure.[35]

4. Sustainable Agriculture and Economic Resilience :

Agriculture is a critical sector for economic sustainability, as it directly impacts food security, rural livelihoods, and environmental health.

4.1 Organic Farming and Agroecological Practices :

Organic farming and agroecological practices minimize the use of synthetic fertilizers and pesticides, promoting soil health, biodiversity, and ecosystem resilience.[36] These practices can enhance long-term productivity and reduce environmental pollution, contributing to a healthier environment and food supply.

4.2 Agroforestry and Crop Rotation :

Agroforestry, the integration of trees and shrubs into agricultural systems, can enhance soil fertility, sequester carbon, and provide additional income sources for farmers.[37] Crop rotation, the practice of alternating different crops in a planned sequence, can improve soil health, reduce pest and disease pressure, and enhance nutrient cycling, leading to more sustainable farming practices.[38]

4.3 Water Conservation and Efficient Irrigation :

Water conservation is crucial for sustainable agriculture, particularly in water-scarce regions.[39] Efficient irrigation techniques, such as drip irrigation and rainwater harvesting, can optimize water use and reduce water waste, ensuring the availability of this vital resource.[40]

4.4 Precision Agriculture and Technology :

Precision agriculture leverages technology, such as GPS, remote sensing, and data analytics, to optimize input use, improve crop yields, and reduce environmental impact.[41] This approach can enhance resource efficiency and improve the economic viability of farming, making it more sustainable and productive.[42]

4.5 The Role of Smallholder Farmers :

Smallholder farmers play a vital role in global food security and rural economies.[47] Supporting smallholder farmers with access to finance, technology, and markets is essential for promoting sustainable agriculture and reducing poverty.[48] This includes promoting fair trade practices, providing training on sustainable farming techniques, and facilitating access to microfinance, empowering these essential actors.

5. Corporate Sustainability and Business Ethics :

Corporate sustainability involves integrating environmental and social considerations into business strategies and operations.[49]

5.1 Corporate Social Responsibility (CSR) and Sustainability Reporting :

CSR initiatives focus on addressing the social and environmental impacts of business operations.[50] Sustainability reporting enables companies to disclose their environmental and social performance, promoting transparency and accountability.[51] Elkington, J. (1997) discussed the importance of the triple bottom line for 21st-century business, emphasizing that companies should consider their impact on people and the planet, not just profits. This has led to a significant increase in CSR initiatives and sustainability reporting.

In conclusion, CSR initiatives and sustainability reporting are essential components of corporate sustainability. They enable companies to demonstrate their commitment to environmental and social responsibility, build trust with stakeholders, and create long-term value. As sustainability becomes increasingly important to investors, customers, and other stakeholders, companies that embrace CSR and sustainability reporting will be better positioned to succeed in the 21st century.

5.2 Sustainable Business Models and Innovation :

Sustainable business models focus on creating value while minimizing environmental and social impacts. This involves developing innovative products and services that address sustainability

challenges. Companies like Tesla, Unilever, and Patagonia have demonstrated the viability of sustainable business models.

Tesla, for example, has revolutionized the automotive industry by focusing on electric vehicles and renewable energy solutions. Their business model is built on the premise that sustainable transportation is not only possible but also economically viable. They have invested heavily in research and development to improve battery technology, expand their charging infrastructure, and produce high-performance electric vehicles.

Unilever has implemented a sustainable living plan, aiming to decouple their growth from their environmental impact while increasing their positive social impact. They have focused on sustainable sourcing of raw materials, reducing waste and water consumption, and improving the health and well-being of their consumers.

Patagonia has built its brand around environmental activism and ethical manufacturing. They encourage customers to repair their products rather than buying new ones, and they donate a portion of their sales to environmental causes. Their commitment to sustainability has resonated with consumers, demonstrating that businesses can be both profitable and environmentally responsible.

The benefits of sustainable business models are numerous. They can enhance a company's reputation, attract and retain talent, improve access to capital, and create new market opportunities. By addressing sustainability challenges, companies can create long-term value for themselves and society.

5.3 Measuring and Reporting Impact :

Beyond basic sustainability reporting, companies should focus on robust impact measurement. This involves quantifying the environmental and social impacts of their operations and products. Life cycle assessments, social return on investment analyses, and other methodologies can provide valuable insights into the true impact of business activities. Standardized frameworks such as the Global Reporting Initiative (GRI) and the Sustainability Accounting Standards Board (SASB)[1] help companies report their impacts consistently and transparently.

6. Barriers to Economic Sustainability :

Despite the growing recognition of the importance of economic sustainability, several barriers hinder its implementation.

6.1 Market Failures and Externalities :

Market failures, such as the underpricing of environmental resources and the existence of negative externalities, can lead to unsustainable economic practices. Dasgupta, P. (2021) explored the economics of biodiversity and highlighted the problem of market failures. For example, the cost

of air pollution is often not reflected in the price of goods and services that contribute to it, leading to overconsumption and environmental degradation.

6.2 Policy and Regulatory Deficiencies :

Inconsistent enforcement of environmental policies, lack of uniform global regulations, and inadequate policy coordination can hinder the transition to a sustainable economy. For instance, inconsistent carbon pricing policies across countries can lead to carbon leakage, where polluting industries relocate to regions with weaker regulations.

6.3 Financial Constraints in Emerging Economies :

Limited access to green financing, high upfront costs for sustainable technologies, and lack of institutional capacity can pose significant challenges for emerging economies. Many small and medium-sized enterprises (SMEs) in developing countries struggle to access the capital needed to invest in sustainable technologies and practices.

6.4 Political and Institutional Barriers :

Political instability, corruption, and weak governance can hinder the implementation of sustainable policies and practices. Strengthening institutions, promoting transparency, and ensuring accountability are essential for overcoming these barriers. The influence of lobbying against green policies can also create significant obstacles.

6.5 Social Inequality and Access to Resources :

Social inequality and unequal access to resources can exacerbate environmental problems and hinder sustainable development. Addressing social inequality and promoting inclusive growth are crucial for achieving economic sustainability.

7. Strengthening Economic Sustainability :

Strengthening economic sustainability requires a multi-faceted approach involving policy interventions, technological innovation, and behavioural changes.

7.1 Incorporating Sustainability into Economic Policies :

Governments should integrate sustainability considerations into fiscal policies, trade agreements, and industrial strategies. NITI Aayog (2021) published the SDG India Index. This includes implementing carbon pricing mechanisms, providing incentives for sustainable technologies, and strengthening environmental regulations. For example, governments can introduce carbon taxes to discourage the use of fossil fuels and provide subsidies to promote the adoption of renewable energy technologies. Trade agreements can also include provisions for environmental protection and labour rights, ensuring that trade promotes sustainable development.

7.2 Promoting Sustainable Consumer Choices :

Eco-labelling, awareness campaigns, and incentives for sustainable consumption can influence consumer behaviour and promote the demand for eco-friendly products. For instance, governments can provide tax breaks for purchasing electric vehicles or energy-efficient appliances. Public awareness campaigns can educate consumers about the environmental impact of their consumption choices and promote sustainable lifestyles. The use of behavioural nudges, such as default options for sustainable products, can also encourage sustainable consumption.

7.3 Enhancing International Collaboration :

Global cooperation through frameworks like the UN Sustainable Development Goals (SDGs), the Paris Agreement, and WTO environmental policies is crucial for addressing global sustainability challenges. The United Nations (2015) published the 2030 agenda. The IPCC (2021) also published a report on climate change. This involves facilitating technology transfer, knowledge sharing, and capacity building. For example, international partnerships can support developing countries in adopting clean technologies and building capacity for sustainable development.

7.4 Technological Innovation and Knowledge Sharing :

Investments in research and development, technology transfer, and knowledge sharing can accelerate the development and adoption of sustainable technologies. Rockström, J., et al. (2009) discussed the planetary boundaries. This includes promoting open-source technologies and fostering collaboration between research institutions and industry. For example, public-private partnerships can fund research on renewable energy and energy storage technologies. Knowledge sharing platforms can facilitate the dissemination of best practices and innovative solutions.

7.5 Education and Capacity Building :

Education and capacity building are essential for fostering a culture of sustainability. This includes integrating sustainability into educational curricula, providing training on sustainable practices, and raising public awareness. Empowering individuals and communities with the knowledge and skills to make sustainable choices is crucial for long-term change. For example, vocational training programs can equip individuals with the skills needed for jobs in the green economy. Public awareness campaigns can educate citizens about the importance of sustainable lifestyles and promote behavioural changes.

7.6 Data and Information Sharing :

The availability of reliable data and information is crucial for informed decision-making and effective policy implementation. Promoting data sharing, transparency, and access to information can enhance sustainability efforts. This includes developing open data platforms and promoting citizen science initiatives. For example, open data platforms can provide access to environmental data, such

as air quality and water quality, to inform policy decisions and public awareness. Citizen science initiatives can engage communities in collecting and analysing environmental data.

7.7 The Role of Local and Regional Governments :

Local and regional governments play a critical role in promoting sustainable development. They are often responsible for implementing policies related to land use, transportation, and waste management. Local governments can also engage with communities and businesses to develop and implement sustainable initiatives. For example, local governments can implement zoning regulations that promote compact, walkable communities and invest in public transportation. They can also develop waste management programs that promote recycling and composting.

7.8 Resilient Supply Chains :

Building resilient supply chains is essential for economic sustainability. This involves diversifying suppliers, reducing reliance on single sources, and promoting local production. Companies should also assess and mitigate risks related to climate change, resource scarcity, and social disruptions. For example, companies can invest in local sourcing to reduce transportation distances and support local economies. They can also implement risk management strategies to address potential disruptions caused by climate change.

7.9 The Role of the Service Industry in a Green Economy :

The service industry plays a crucial role in a green economy. This includes sectors such as renewable energy, sustainable transportation, and eco-tourism. The service industry can also contribute to sustainability by promoting resource efficiency and reducing waste. For example, the sharing economy can promote the efficient use of resources by facilitating the sharing of goods and services. Eco-tourism can promote sustainable tourism practices and support local communities.

8. Conclusion :

The economic dimension of sustainability plays a vital role in building a resilient and balanced global economy. By integrating green investments, sustainable agricultural practices, corporate responsibility, and effective regulatory policies, societies can transition toward an environmentally sustainable and financially stable future. However, achieving true sustainability requires a collective effort from policymakers, businesses, and consumers. Governments must enforce stricter regulations, corporations must embed sustainability into their core strategies, and individuals must embrace eco-conscious lifestyles.

Looking ahead, the alignment of economic development with environmental preservation will be crucial for sustainable progress in the 21st century. A well-structured economic framework prioritizing sustainability will not only drive long-term financial stability but also safeguard natural

ecosystems for future generations.

References :

Books

1. Daly, H. E. (1996). *Beyond Growth: The Economics of Sustainable Development.* Beacon Press.
2. Elkington, J. (1997). *Cannibals with Forks: The Triple Bottom Line of 21st Century Business.* Capstone Publishing.
3. Pearce, D., & Barbier, E. (2000). *Blueprint for a Sustainable Economy.* Earthscan.
4. Jackson, T. (2009). *Prosperity Without Growth: Economics for a Finite Planet.* Routledge.
5. Sachs, J. D. (2015). *The Age of Sustainable Development.* Columbia University Press.

Kumar, P. (2020). *Sustainable Development and Indian Economy.* Oxford University Press India.

Journal Articles :

1. Stern, N. (2007). *The Economics of Climate Change: The Stern Review.* Cambridge University Press.
2. Rockström, J., et al. (2009). *Planetary Boundaries: Exploring the Safe Operating Space for Humanity.* Ecology and Society, 14(2), 32-45.
3. Dasgupta, P. (2021). *The Economics of Biodiversity: The Dasgupta Review.* HM Treasury, UK.
4. Sharma, A. (2019). *Sustainable Finance and Green Growth in India.* Economic and Political Weekly, 54(12), 67-75.

Reports and Institutional Publications :

1. United Nations (2015). *Transforming Our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development.* United Nations SDGs.
2. NITI Aayog (2021). *SDG India Index & Dashboard 2021-22.* Government of India.
3. Reserve Bank of India (2022). *Green Finance and Sustainable Economic Growth in India.* RBI Publications.
4. IPCC (2021). *Climate Change 2021: The Physical Science Basis.* Intergovernmental Panel on Climate Change.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 65-68

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान समय में भूमण्डलीय तापमान

भूपेन्द्र सिंह

सहायक आचार्य, भूगोल, श्री अग्रसेन महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर।

प्रस्तावना :–

21वीं भाताब्दी में बदलते परिपेक्ष्य में जलवायु परिवर्तन की समस्या हमारे समक्ष प्रस्तुत है। प्राचीन काल में पर्यावरणीय समस्याओं का प्रभाव नगन्य था परन्तु औद्यौगिक क्रान्ति के बाद लगातार पर्यावरणीय समस्याओं का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। वर्तमान समय में अनेक पर्यावरणीय समस्याऐं व्याप्त है जिनमें वायु प्रदूशण, जल प्रदूशण, अम्लीय वर्शा, हरितग्रह प्रभाव, ग्लोबल वार्मिग, जलवायु परिवर्तन आदि है। ये सभी समस्याऐं सामान्य स्तर से अधिक बढ़ चुकी है। इनमें से ग्लोबल वार्मिग भी एक वि वव्यापी समस्या है। अगर इसको कम नहीं किया गया तो मानव को एवं सम्पूर्ण जीव जगत को हानि उठानी पडेगी। इसका प्रभाव अब भी स्पश्ट दिखाई दे रहा है। अतः मानव को पर्यावरण की क्षति को रोकना आव यक है यदि पर्यावरण सन्तुलित होगा तो जैव सम्पदा एवं मानव का अच्छा विकास होगा।

शोध के उद्देश्य :–

- पर्यावरण असन्तुलन के कारणों को पता लगाना।
- ग्लोबल वार्मिग के कारण क्या है।
- ग्लोबल वार्मिग के प्रभावों का पता लगाना।
- औद्योगिकीकरण व अन्य साधनों से उत्पन्न पर्यावरण प्रदूशणों का मूल्यांकन करना।

शोध परिकल्पना :–

- यदि असंतुलित तरीके से औद्योगिकीकरण होगा तो पर्यावरण प्रदूशण होगा।
- अगर जनसंख्या वृद्धि होगी तो पर्यावरणीय संसाधनों का दोहन होगा जिससे पर्यावरणीय समस्याओं के स्तर में वृद्धि होगी।
- वायुप्रदूशण से ओजोन क्षरण होगा तो ग्लोबल वार्मिग होगी और जलवायु परिवर्तित होगी।
- यदि मानव उपभोगतावादि होगा तो पर्यावरण प्रदूशदित ज्यादा होगा।
- वैि वक ताप बढ़ेगा तो हिम क्षेत्र से हिम पिघलेगी जिससे समुद्री जलस्तर बढ़ेगा।

ग्लोबल वार्मिग का अर्थ :–

सम्पूर्ण पृथ्वी के तापमान में सामान्य स्तर से तापमान अधिक होना ग्लोबल वार्मिग कहलाता है। यह पर्यावरण की एक प्रमुख समस्या है जिससे जलवायु में परिवर्तन हो रहा है। जलवायु की द ाओं में परिवर्तन

प्राकृतिक और मानवीय क्रियाओं का परिणाम है।

1989 में मौसम विज्ञान अनुसंधान संस्थान ने ग्लोबल वार्मिंग पर भोध भुरू किया। ग्लोबल वार्मिंग जिसे हरित ग्रह प्रभाव भी बोला जाता है। इसकी खोज वाले ा स्मिथ ब्रोकर ने की थी।

एक अन्य परिभाशा के अनुसार– ''वि व के तापमान में क्रमिक मंद वृद्धि जो हरित ग्रह गैसों के प्रभाव से होती है।''

तापमान का बढ़ता सिलसिला :–

पृथ्वी के तापमान को दर्ज करने की भुरूआत 1860 से प्रारम्भ हुई। पृथ्वी पर ऊर्जा/गर्मी तो उत्पन्न हो रही है परन्तु वह अव ोशित नही हो पा रही। जिससे पृथ्वी के तापमान में लगातार वृद्धि होती जा रही है। वर्श 2006 को इतिहास में छठें सबसे गर्म वर्श के रूप में दर्ज किया गया था।

पृथ्वी के औसत तापमान में 2005 तक सौ वर्शो के दौरान 0.74±0.180C की वृद्धि हुई। 2050 तक वि व के तापमान में 1.50C - 4.50C तक वृद्धि हो सकती है।

ग्लोबल वार्मिंग के कारण :–

- ग्लोबल वार्मिंग का प्रमुख कारण वायुप्रदूशण को माना जाता है।
- ग्रीन हाऊस गैसे कार्बनडाई ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड, क्लोरोफिलोरो कार्बन आदि ग्लोबल वार्मिंग के लिए उत्तरदायी है।
- जनसंख्या वृद्धि सभी पर्यावरणीय समस्याओं का प्रमुख कारण है।
- औद्योगीकरण एवं नगरीकरण से प्रदूशण बढ़ रहे है। जिस कारण सभी पर्यावरणीय समस्याऐं लगातार बढ़ती जा रही है।

ग्लोबल वार्मिंग में वृद्धि के लिए निम्न कारक उत्तरदायी है :–

- **बढ़ती जनसंख्या** – जनसंख्या बृद्धि अधिक होने से अनेक पर्यावरणीय समस्याऐं बढ़ती जा रही है। औद्योगीयकरण एवं नगरीयकरण व जनसंख्या वृद्धि से वन, कृशि क्षेत्र लगातार घट रहे है। वातावरणीय एवं सामाजिक समस्याऐं बढ़ रही है।
- मनुश्य अपनी आव यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रहा है। जिससे सभी प्रकार के प्रदूशण हो रहे है। वायु प्रदूशण एवं हरित ग्रह गैसों के बढ़ने से ग्लोबल वार्मिंग बढ़ रहा है।
- हरित ग्रह गैसों की मात्रा वातावरण में बढ़ने से अनेक प्रभाव पड़ते है। जो निम्न है–
  - तापमान में वृद्धि
  - कृशि पर प्रभाव
  - ओजोन परत पर प्रभाव
  - पारिस्थितिक तंत्र को हानि
  - जलवायु में परिवर्तन

ग्रीन हाऊस गैसों की वृद्धि के मुख्य कारण :–

- **जीवाष्म ईधन का जलना** – कोयले के अधिक उपयोग से कार्बनडाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। वि व की 39 प्रति ात कार्बनडाई ऑक्साइड कोयले से प्राप्त होती है। वाहनों एवं औद्योगिक क्रियाओं से भी

कार्बनडाइ ऑक्साइड का उत्सर्जन हो रहा है।

- **पशुपालन** – प ुपालन और चावल उत्पादन से मीथेन गैस उत्पन्न होती है। प ुधन मीथेन 12 प्रति ात का जिम्मेदार है।
- **कृषि** – कृशि क्षेत्रों के द्वारा हवा में लगभग 20 प्रति ात ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन किया जाता है।
- अनेक प्रकार के गैसीय उपकरण जैसे अग्नि, भामनयंत्र, रबड़ एवं फोम उद्योग का बढ़ना, प्रसाधन सामग्री रेफ्रीजेटर आदि के उपयोग से निरन्तर क्लोरोफ्लोरो कार्बन वायुमण्डल में इकठ्ठी होती रहती है। CFC11 व CFC12 सबसे अधिक खतरनाक ग्रीन हाऊस गैसे है।
- गन्दगी के ढेर व जीव जन्तुओं की मृत्यु के बाद सड़ना।
- **मानवीय गतिविधियां** – मानव अपनी सुख सुविधाओं के लिए ए.सी., फ्रिज, हीटर, प्रसाधन सामग्री आदि का उपयोग निरन्तर बढ़ाता जा रहा है। जिससे वै िवक ताप में वृद्धि हो रही है।

वैश्विक ताप के प्रभाव :–

बढ़ते तापमान से मानव जीवन एवं कृशि जीव जन्तु, वनस्पति पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। जो निम्न प्रकार है :–

- **मानव जीवन पर प्रभाव** – ग्लोबल वार्मिग से अनेक प्रकार की बीमारियां बढ़ रही है। त्वचा कैंसर, उच्च रक्तचाप, येलो फीवर व संक्रामक रोग का अधिक फैलाव से मानव मृत्यु में वृद्धि हो रही है।
- **कृषि पर प्रभाव** – ग्लोबल वार्मिग से चावल, गेहूं के कृशि क्षेत्र में कमी हो रही है। इससे उत्पादन में भी कमी हुई है। बढ़ते तापमान से भविश्य में गेंहू, चावल के कृशि क्षेत्र भी स्थानान्तरित हो जायेगे। उत्पादन के साथ–साथ गुणवत्ता में भी कमी आ रही है। इससे दे ा की जी.डी.पी. में गिरावट हो सकती है।
- **जलवायु परिवर्तन** – ताप वृद्धि से पर्यावरण पर विपरित प्रभाव पड़ रहा है। ताप लगातार बढ़ने से भविश्य में कृशि क्षेत्रों में कमी होगी। हिम पिंघलना बढ़ेगा जिससे सागर तटीयभाग जलमग्न हो जायेंगे। जैव विविधता में कमी आयेगी। अतिवृश्टि व अनावृश्टि का प्रभाव बढ़ेगा।
- **जीव जन्तुओं का खतरा** – बढ़ता ताप पृथ्वी के सभी जीव जन्तुओं के लिए खतरनाक है हिम क्षेत्र के पैग्विन व ध्रुवीय भालू समेत अनेक प्रजातियों पर खतरा मंडरा रहा है। अनेक जीव जन्तु विलुप्त हो चुके है और कुछ में अत्यधिक कमी आ रही है। पक्षियों का प्रवसन बढ़ रहा है।
- **मरूस्थलीकरण** – भुश्क द ाओं के अधिक बढ़ने के कारण मरूस्थलीकरण हो रहा है। जो वनस्पति विद्यमान है वो भी खत्म हो सकती है और उपजाऊ मैदान भी मरूस्थल बन सकते है।
- **ओजोन परत को खतरा** – ग्लोबल वार्मिग एवं हरित ग्रह गैसों के प्रभाव से ओजोन परत का क्षरण हो रहा है। जिससे अनेक प्रकार की बीमारियां बढ़ रहीं है।
- ताप बढ़ने से सागरीय जीव जन्तु एवं वनस्पति को क्षति हो रही है।

ग्लोबल वार्मिग से बचाव के सुझाव :–

पर्यावरण पर ग्लोबल वार्मि के बढ़ते प्रभावों को नियन्त्रित करने के लिए निम्न उपाय करने चाहिए :–

- औद्योगिक ईकाइयों से निकलने वाली विशाक्त गैस व अप िश्ट को पर्यावरण में फैलाने से रोकने की पहल करनी चाहिए या विशाक्त गैसों को भुद्ध करके वातावरण में विसर्जन करना चाहिए।

- अत्यधिक वृक्ष लगाना और वनों को नश्ट होने से बचाना चाहिए।
- जनसंख्या दर में कमी करके कुछ समस्याओं को कम कर सकते है।
- उपभोगतावादी संस्कृति को रोकना तथा सत्त पोशणीय विकास को अपनाना चाहिए। प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग को कम करना चाहिए।
- ऊर्जा के परम्परागत स्त्रोतों के स्थान पर गैरपरम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का उपयोग करना चाहिए। हर दे ा को कोयला व पेट्रोल की खपत में कमी करके सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा को बढ़ाना चाहिए।
- मानव की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वह वन सम्पदा का संरक्षण करे और सतत् पौशणीय विकास की ओर बढ़े।
- सरकार व निजी समुदायों द्वारा पुनः वृक्ष क्रान्ति लाने की जरूरत है।
- सभी दे ाों को पर्यावरण बचाने के लिए ग्रीन बजट लागू करना चाहिए।
- भूगोलवेत्ता व ि ाक्षाविदों को पर्यावरण सम्बन्धी विशय पर विचार गोश्ठी आयोजित करवानी चाहिए तथा पर्यावरण को बचाने की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए।
- पर्यावरणीय नीतियों को सरकार द्वारा स ाक्त करना और उन्हें कानूनी रूप देना आव यक है। जिससे पर्यावरण को बचाया जा सके।

निष्कर्ष :-

उपरोक्त विवेचन से स्पश्ट होता है कि सम्पूर्ण दे ा प्रदूशण एवं अन्य पर्यावरणीय समस्याओं से जूझ रहे है। ''बढ़ता तापमान'' भी एक चिन्ता का विशय है। इस मुद्दे पर सभी दे ाों को एकमत होकर विचार विम र्ा करके इसे कम करने का प्रयास करना चाहिए। यह समस्या औद्योगिक विकास, नगरीयकरण एवं परिवहन के साधनों तथा वनों की कटाई से बढ़ रही है।

ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को कम करके ग्लोबल वार्मिंग की समस्या को रोका जा सकता है। ग्लोबल वार्मिंग को कम करने के लिए सरकारी व गैर सरकारी तथा सभी मनुश्यों को मिलकर प्रयास करना होगा। ''सतत् पोशणीय विकास'' की अवधारणा को अपनाना होगा तभी ग्लोबल वार्मिंग के दुश्परिणाम से बचा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. फडिया, बी.एल, अन्तर्राश्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिके ान, आगरा, 2021, पेज संख्या 582–585
2. सक्सेना डॉ० हरिमोहन पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2009 पेज संख्या 326
3. गुर्जर रामकुमार, पर्यावरण भूगोल, पंच ाील प्रका ान, जयपुर 2013, जाट बीसी, पेज संख्या 407
4. सिंह डॉ० सविन्द्र, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2013, पेज संख्या 236

Email ID : bhoopendrabhoo@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 69-79

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रूपवास तहसील में पर्यावरण प्रदूषण के कारण मलेरिया का प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन

रामनिवास

सहायकाचार्य (भूगोल), श्री गुरू माधवानन्द प्रतिभा महाविद्यालय रूपवास, भरतपुर (राज0)

मलेरिया इतालवी शब्द से लिया गया है जहां मेले से तात्पर्य है गंदी और आरिया का मतलब हवा से होता है। शुरू में यह माना जाता था कि मलेरिया नमी और गंदी हवाओं के कारण होता हे। वर्ष 1877 में डॉ. रोनाल्ड रास ने कबूतरो पर प्रयोग करके यह साबित कर दिया कि मलेरिया मच्छरों के काटने पर होता हे। भारत में मलेरिया एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या बनी हुई है। देश के अधिकांश राज्यों में इस रोग की स्थिति अभी भी खतरनाक बनी हुई है। सच तो यह है कि आज भी यह रोग आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के लिए एक चुनौती बना हुआ है। कुछ राज्यों में तो यह रोग महामारी का रूप धारण कर लेता है। जिससे सैकड़ों हजारो की तादाद में लोग मर जाते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश में मलेरिया से पीड़ितों की संख्या 75 मिलीयन थी सन् 1953 में मलेरिया नियंत्रण करने के लिए संगठित जनस्वास्थ्य कार्यक्रम शुरू किया गया। सरकार की चिकित्सा योजनाओं के प्रभाव से भारत में मलेरिया पीड़ितों की संख्या 2007 में 1.79 मिलीयन रह गयी जबकि 2014 में घटकर 1.07 मिलियन रह गयी जिसका विवरण तालिका सं0 01 में दर्शाया गया है।

तालिका सं. –01

भारत में विभिन्न वर्षो के अन्तर्गत मलेरिया से पीड़ितों की संख्या (मिलियन में)

वर्ष	2006	2007	2008	2009	2010	2011	2012	2013	2014
मलेरिया पीड़ित	1.79	1.51	1.′53	1.56	1.60	1.31	1.07	0.88	1.07

स्त्रोत : www.malariya.in

राजस्थान में मलेरिया के रोगियों की संख्या वर्ष 2006 में 99.5 हजार थी वर्ष 2014 में घटकर 30.5 हजार रह गयी। इसका विस्तृत विवरण तालिका सन् 02 में दिया गया है।

तालिका सं..-02

राजस्थान में मलेरिया पीड़ितों की संख्या (वर्षवार)

वर्ष	2006	2007	2008	2009	2010	2011	2012	2013	2014
मलेरिया पीड़ित (हजार में)	99.5	55.0	57.4	32.7	47.0	45.5	44.3	46.3	30.5

स्त्रोत : Directors of national victor prome discase control Programme Nov.2014

तालिका सं. 03 से स्पष्ट है कि भरतपुर जनपद में सन् 2013 में सर्वाधिक 2015 मलेरिया के रोगी थे जबकि वर्ष 2014 में सबसे कम मात्र 891 व्यक्ति ही मलेरिया से पीड़ित रहे।

तालिका सं. 03

भरतपुर में मलेरिया के रोगियों की संख्या (वर्षवार)

वर्ष	2006	2007	2008	2009	2010	2011	2012	2013	2014
मलेरिया रोगी	1968	1768	1472	1366	1926	1368	1817	2015	891

स्त्रोत : कार्यालय : उपमुख्य चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी (मलेरिया) भरतपुर

1. शोध अध्ययन क्षेत्र :-

प्रस्तुत शोध पत्र 'मलेरिया रोगियों का विश्लेषण : एक भौगोलिक अध्ययन (संदर्भ : रूपवास तहसील भरतपुर)' में उपयुक्त दशाओं को आंकने का प्रयास किया गया है। रूपवास तहसील ग्रामीण क्षेत्र है। इसलिए यहां चिकित्सा की समुचित व्यवस्थाओं का अभाव है। तहसील में जनसंख्या की अधिकता एवं सामुदायक स्वास्थ्य केन्द्रों एवं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की कमी के कारण इस तहसील के लोगों को उचित चिकित्सा सुविधा नहीं मिल पाती है। इन चिकित्सा केन्द्रों पर जनसंख्या के भार को कम करने के लिए वैकल्पिक व्यवस्था की जाये इससे रूपवास तहसील को उचित चिकित्सा सुविधा मिल सके तथा अध्ययन क्षेत्र में मानव स्वास्थ्य एवं ग्रामीण लोगों का जीवन सुरक्षित रह सकें।

2. शोध पत्र का उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध पत्र का क्षेत्र सम्पूर्ण रूपवास तहसील जिला भरतपुर राजस्थान है। शोध कार्य की अवधि 2007 से 2014 तक रखी गई है। चिकित्सा विकास हेतु उपयुक्त दशाओं को ध्यान में रखते हुए चयन किया गया है। अध्ययन क्षेत्र में मलेरिया जैसी बीमारी की समस्या से अवगत कराना, मलेरिया के लक्षण, मलेरिया फैलने के कारण, मलेरिया की रोकथाम तथा नियंत्रण के उपायों तथा इसके निवारण हेतु केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों से अवगत कराना है। तहसील में इस ज्वलंत समस्या के समाज पर पड़े कुप्रभाव से अवगत कराना तथा समाज में जाग्रति उत्पन्न करना।

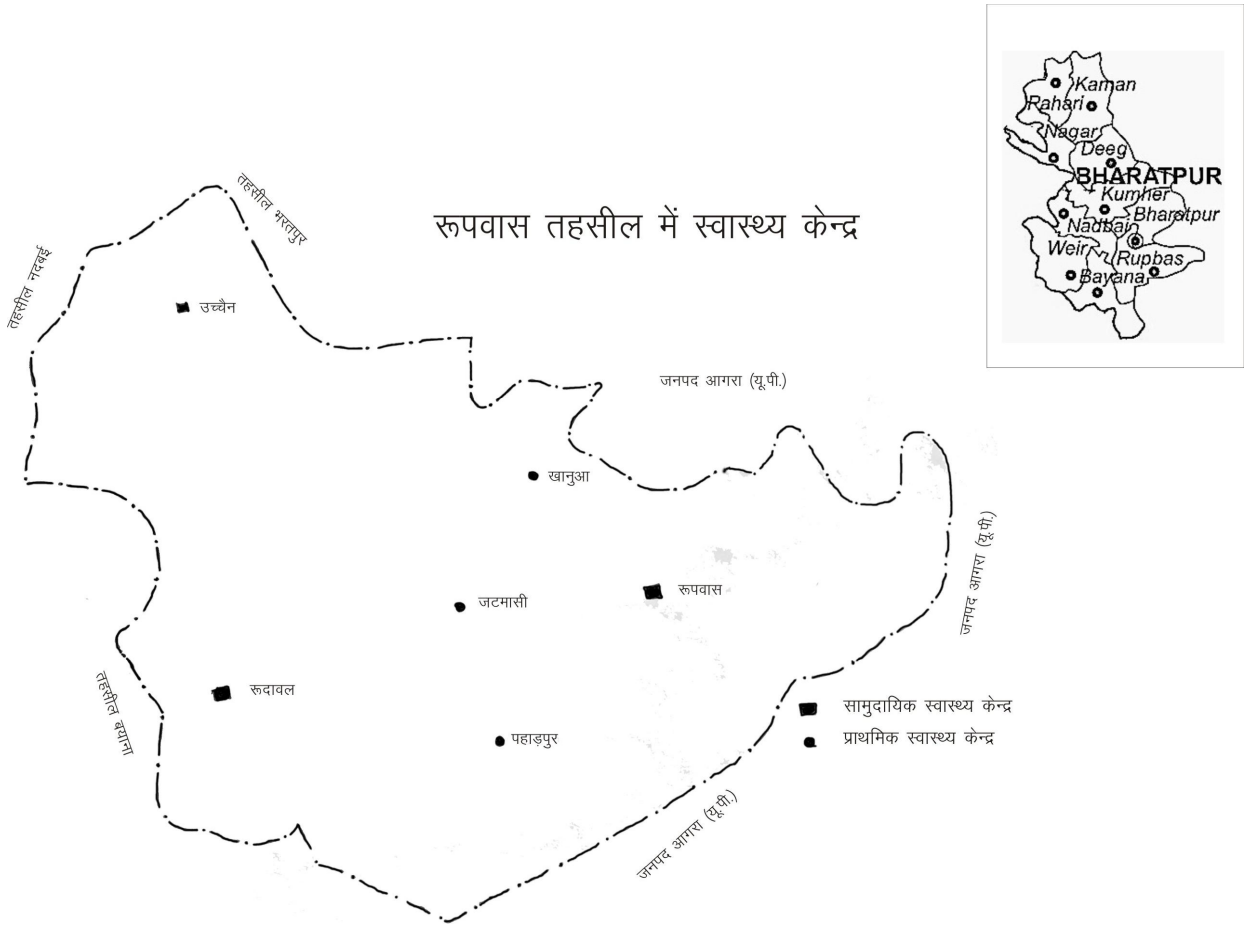

रूपवास तहसील की भौगोलिक स्थिति :–

रूपवास तहसील भरतपुर जनपद की दक्षिण–पूर्वी में स्थिति है यह तहसील 26026′ से 26095′ उत्तरी अक्षांश तक तथा 77028′ से 78017′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इसकी उत्तरी सीमा तहसील भरतपुर, पूर्वी सीमा जनपद आगरा (उ.प्र.) दक्षिणी सीमा जनपद आगरा (उ.प्र.) तथा पश्चिमी सीमा तहसील बयाना एवं तहसील नदबई से लगी हुई है।

तहसील रूपवास का क्षेत्रफल 539.01 वर्ग किमी है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार तहसील की कुल जनसंत्रया 257952 है इसमें पुरूषों की संख्या 138343 तथा महिलाओं की संख्या 119609 है साक्षरता दर 7134 प्रतिशत है इसमें पुरूषों की साक्षरता 86.48 प्रतिशत तथा महिलाओं की साक्षरता 55.16 प्रतिशत है। लिंगानुपात 865 महिलायें प्रति हजार पुरूषों पर तथा जनघनत्व 479 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी0 है। तहसील में कुल 173 गांव हैं इसमें 164 आबाद एवं 09 गैर आबाद गांव है। तहसील मुख्यालय रूपवास गांव है जो कि रेलमार्ग एवं सड़क मार्गो से देश के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। इसका धरातल विषम है तथा यहां उटंगन नदी वर्षा के मौसम प्रवाहित होती है।

शोध पत्र का विधि तन्त्र एवं आंकड़ों के स्रोत :–

वर्तमान अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। शोध पत्र के अध्ययन में मलेरिया के बीमार की संख्या को लक्ष्य किया गया है। मलेरिया का मूल्यांकन व विश्लेषण सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों व प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्तर पर किया गया है। आवश्यक विविध आंकड़ों का संकलन सामुदायिक

स्वास्थ्य केन्द्र रूपवास व कार्यालय मुख्य चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी मलेरिया भरतपुर सांख्यिकीय रूपरेखा 2012 भरतपुर जिला एक दृष्टि में 2015, कुलक्षेत्र पत्रिका फरवरी 2003 एवं तत्सम्बन्धित कार्यालयी अभिलेखों से लिये गये हैं।

रूपवास तहसील की वर्तमान चिकित्सा संरचना एवं भौतिक स्थिति :-

रूपवास तहसील एक ग्रामीण तहसील है इसका धरातलीय संरचना उबड़ खाबड़ है इसमें 3 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र रूपवास रूदावल एवं उच्चैन है तथा 3 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र–खानुआ, जदमासी, पहाड़पुर है फिर भी तहसील चिकित्सा दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। तहसील में तत्कालीन शासकीय नीतियों को ध्यान में रखकर अधिक चिकित्सा विकास नहीं हो पाया है।

मातृ शिशु कल्याण केन्द्र 1, उपकेन्द्र 48, प्रा0 स्वा0 केन्द्र एवं सामु0 स्वा0 केन्द्रों में बेडों की संख्या 86, औषधालय 19, होम्योपैथिक 1, यूनानी औषधालय 1 आदि चिकित्सा सुविधाएं रूपवास तहसील में हैं।

तहसील में क्षेत्रफल तथा जनसंख्या को देखते हुए ये बहुत कम मात्रा में है अतः इस क्षेत्र में चिकित्सा सुविधायें बढ़ाई जानी चाहिए। इससे सभी समय पर उपचार प्राप्त हो सकें।

अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2007 में 222 मलेरिया के मरीज थे जो वर्ष 2008 में जलवायु प्रभाव एवं मच्छरों के कारण इनकी संख्या में वृद्धि होकर 768 हो गये लेकिन वर्ष 2009 में ये घटकर 666 रह गये, 2010 में रोगियों की संख्या में वृद्धि होकर 926 हो गयी तथा 2011 में 530 तथा 2012 में 921 रही, जबकि वर्ष 2013 में 992 का रिकार्ड रहा 2014 में इनकी संख्या 311 ही रही आज दिनांक 31.08.2015 को इसका बहुत अधिक प्रभाव सामने आया है गांवों में जगह–जगह चिकित्सको की टीमें काम कर रही है। रूपवास तहसील में विभिन्न वर्षो में मलेरिया के रोगियों को तालिका सं0 4 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका सं0 04

रूपवास तहसील में मलेरिया रोगियों की स्थिति वर्षवार

वर्ष	रोगियों की संख्या
2007	222
2008	768
2009	666
2010	926
2011	530
2012	921
2013	994
2014	311

स्रोत– सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र रूपवास (भरतपुर)

रूपवास तहसील में मलेरिया के रोगियों की स्थिति (वर्षवार)

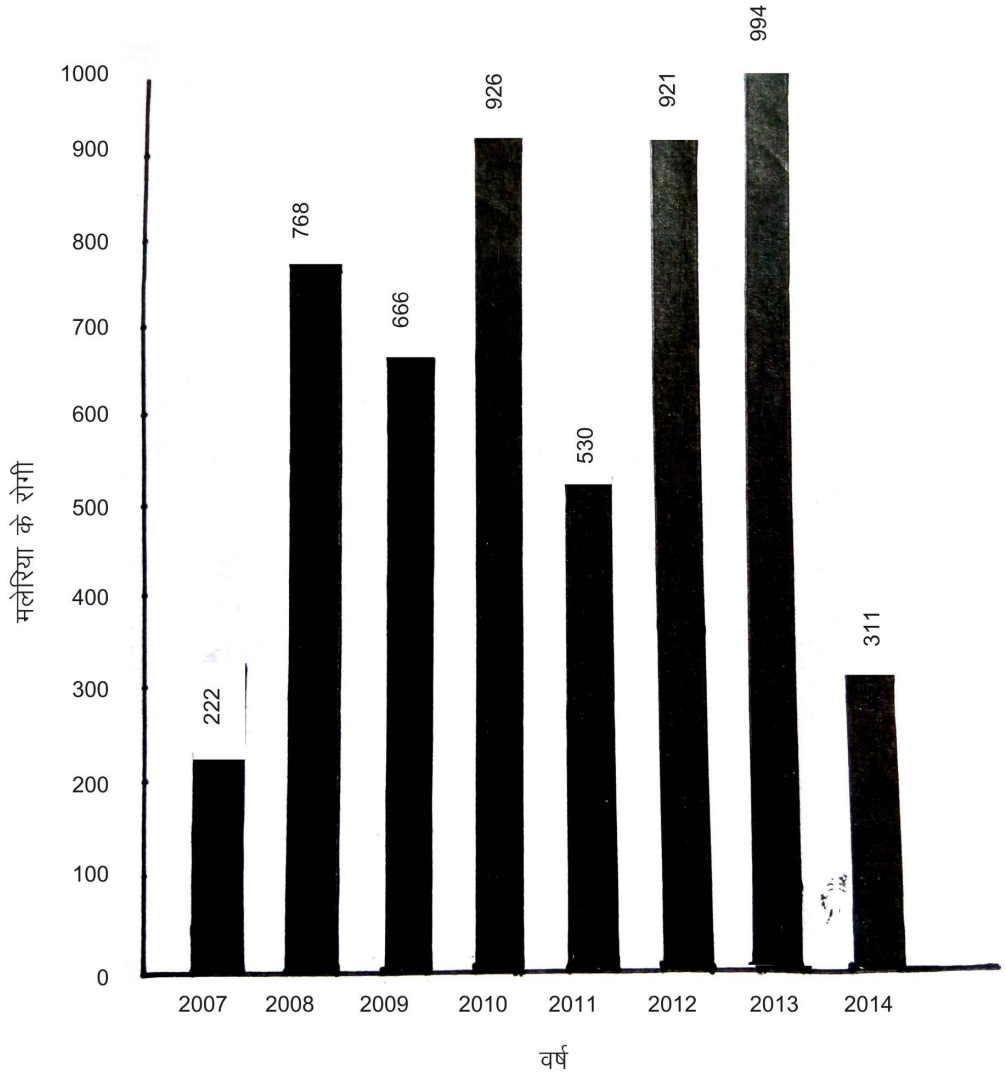

रूपवास तहसील में सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों द्वारा मलेरिया का परीक्षण :-

रूपवास तहसील में 3 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र हैं– 1– रूपवास 2– रूदावल 3– उच्चैन।

सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र रूपवास द्वारा परीक्षण :-

वर्ष 2014 में रूपवास सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र द्वारा कुल 8338 व्यक्तियों का मलेरिया परीक्षण किया गया इनमें से 145 मलेरिया के मरीज निकले थे इस क्षेत्र में रूपवास, रूध, चैकोरा, श्री नगर, धाना खेड़ली, दौरदा आदि गांव है। इसमें जल भराव के कारण मच्छर अधिक उत्पन्न होते हैं। रूपवास तहसील के सर्वाधिक 46.62 प्रतिशत मलेरिया के रोगी मिले हैं। जो तालिका सं0 5 से स्पष्ट है।

सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र रूदावल द्वारा परीक्षण :-

रूदावल सामुदायिक केन्द्र के द्वारा वर्ष 2014 में कुल 3705 व्यक्तियों का परिक्षण किया गया इसमें से

16 व्यक्ति ही मलेरिया के रोगी थे। इस क्षेत्र में मच्छरों का भी प्रभाव कम रहता है। रूपवास तहसील में सबसे कम 5.14 प्रतिशत मलेरिया के रोगी थे जो तालिका सं0 5 से स्पष्ट है।

सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र उच्चैन द्वारा परीक्षण :-

उच्चैन सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र पर 7306 व्यक्तियों का परीक्षण किया गया इनमें से 18 व्यक्ति ही मलेरिया के मरीज थे उनमें से 16 महिलाओं मलेरिया की बीमारी से पीड़ित थी। यह क्षेत्र समतल है यह जल का भराव कम होता है।

तालिका सं0 05

रूपवास तहसील में मलेरिया (2014 के अनुसार)

सामु0 स्व0 केन्द्र एवं प्रा0स्वा0 केन्द्र	रोगियों की संख्या	ifr'kr
रूपवास	145	46.62
पहाड़पुर	62	19.93
जटमासी	38	12.21
खानुआ	32	10.28
रूदावल	16	5.14
उच्चैन	18	5.78
Total	311	100.00

स्रोत : सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र रूपवास।

रूपवास तहसील में मलेरिया के रोगी (2014)

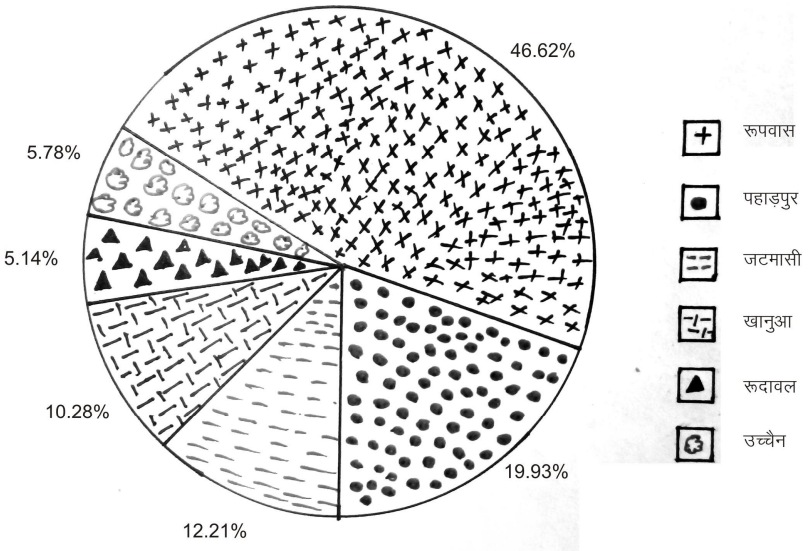

रूपवास तहसील में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों द्वारा मलेरिया का परीक्षण :–

रूपवास तहसील में 3 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र हैं– 1 पहाड़पुर 2– जटमासी 3– खानुआ

1. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पहाड़पुर द्वारा मलेरिया का परीक्षण :–

प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पहाड़पुर में 2415 व्यक्तियों का परीक्षण किया गया इनमें से 62 व्यक्ति मलेरिया से ग्रसित थे। इस क्षेत्र में पत्थर की खानें है तथा खानेां में वर्षा का जल भर जाता है और कहीं–कहीं वर्षो तक नहीं सूख पाता है इससे आस–पास पहाड़पुर, डुमरिया, नगला तुला, महलपुर काछी, सिरोंद आदि गांव में जल का भराव अधिक है इसमें मच्छर अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं।

2. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र जटमासी द्वारा मलेरिया का परीक्षण :–

वर्ष 2014 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र जटमासी पर 3357 का परीक्षण किया गया। इसमें से 38 व्यक्ति मलेरिया से पीड़ित थे। जटमासी के आसपास गांवों में गंदगी एवं जल का भराव अधिक रहता है। इसमें मलेरिया के कीटाणु अधिक उत्पन्न होते हैं।

3. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र खानुआ द्वारा मलेरिया का परीक्षण :–

खानुआ प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में कुल 3404 व्यक्तियों का परीक्षण किया गया। इनमें से 32 लोग मलेरिया से पीड़ित थे। यहां मुसलमान लोग अधिक निवास करते है तथा इनमें सफाई का अभाव पाया जाता है। इसलिए मच्छर अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाते हैं।

मलेरिया निवारण हेतु चलायी गयी प्रमुख योजनायें :–

मलेरिया रोग कम करने के लिए सन् 1953 में संगठित जनस्वास्थ्य कार्यक्रम शुरू किया गया। इसमें अपार असफलता मिलने पर सन् 1950 में भारत सरकार ने रोग नियंत्रण से रोग निवारण नीति बनाई। जिसके तहत सन् 1965 में राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। सन् 1977 में संशोधित कार्य योजना आरंभ की गई। इसके अलावा मलेरिया में सहायक कुछ योजनाएं प्रारम्भ की गई जैसे स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रम स्वास्थ्य, मेला का आयोजन, शुद्ध पेयजल की व्यवस्था, ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम, राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002 संशोधित मलेरिया उन्मूलन काग्रक्रम 1996 तथा प्रत्येक जिले स्तर पर अलग मलेरिया विभाग बनाया गया है। इसके अलावा सभी चिकित्सा केन्द्रों पर मलेरिया जांच विभाग बनाये गये हैं।

मलेरिया के लक्षण :–

अध्ययन क्षेत्र में प्रश्नावली द्वारा मरीजों से साक्षात्कार करने के बाद यह ज्ञात हुआ कि इस रोग के दौरान मरीज को अचानक ठण्ड लगने लगती है और तेज बुखार आता है। बुखार उतरने पर उसे बहुत तेज पसीना आता है और उसे ऐसा लगता है कि वह ठीक हो गया।

डॉक्टरों एवं विशेषज्ञों ने बताया कि पिछले कुछ वर्षो में हमारे तहसील में सब अर्मियम या पर्नियिन मलेरिया से लोगों की मौत तक हो चुकी है। इसमें रोगी तेज बुखार के साथ लकवा के शिकार हुए है तथा उन्हें पेचिश की तरह शौच के साथ रक्त की गति धीमी हो जाती है तथा शरीर का तापमान ठंडा होने लगता है।

मलेरिया फैलने के कारण :–

रूपवास तहसील में गर्मी के बढ़ने पर मच्छरों का प्रकोप बढ़ जाता है। ठीक उसी प्रकार बरसात में मच्छरों की संख्या में वृद्धि होने लगती है। मादा मच्छर एनीफीलिज एक रोगी व्यक्ति से दूसरे स्वस्थ्य व्यक्ति तक

खून के जरिये इस रोग को आसानी से पहुंचा देते हैं और इस प्रकार मलेरिया होने और फैलने का खतरा बढ़ जाता है।

मलेरिया फैलने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :-

1. रोगी का समुचित तथा समय पर उपचार न होना।
2 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर तैनात स्वास्थ्य कर्मियों का अप्रशिक्षित होना।
3. स्वास्थ्य केन्द्रों पर मलेरिया परीक्षण के लिए स्लाइडो का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होना।
4. अधिकांश केन्द्रों के पास माइक्रोस्कोप का न होना।
5. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर चिकित्सकों की तैनाती न होना।
6. प्रभावित क्षेत्रों में त्वरित गति से चिकित्सा सुविधायें मुहैया न हो पाना।
7. एहतियात के तौर पर नाले/नालियों/गड्डो/तालाबों एवं बाधों में कीटनाशकों के छिड़काव में विलम्ब होना या छिड़काव न होना।
8. सफाई की कमी रहने पर भी इस रोग के फैलने की आशंका बढ़ जाती है जैसे गांवों कस्बों में जगह–जगह पानी का जमाव तथा कीचड़ होना आदि।
9. उचित परिवहन व्यवस्था का अभाव होना।
10. उचित संसार व्यवस्था का अभाव भी एक कारण माना जा सकता है।
11. अध्ययन क्षेत्र में जगह–जगह ऐनीकट बांध बनाये गये हैं तथा पत्थर की पुरानी खानों में जल भर जाता है इससे मच्छरों की उत्पत्ति होती है। और मलेरिया का कारण बनते हैं।
12. तहसील में चाराहगहा भूमि का अधिक मात्रा में होना है क्योंकि घास के सड़ने से अनेक विषाणु जन्म लेते हैं।

रूपवास तहसील में मलेरिया के उपचार में समस्याऐं :-

तहसील का भ्रमण करने एवं लोगों से बात करने के बाद मलेरिया के उपचार में निम्नलिखित समस्याऐं सामने आयी हैं :–

1. रूपवास तहसील अधिक विस्तृत तथा ग्रामीण है इसमें स्वास्थ्य केन्द्रों का अभाव है। इसके कारण यहां सभी मरीजों का समय पर उपचार नहीं हो पाता है।
2. अध्ययन क्षेत्र में परिवहन साधनों का अभाव है इसके कारण न तो मरीज समय पर स्वास्थ्य केन्द्रों तक पहुंच पाता है और न ही चिकित्सक समय से गांवों तक पहुंच पाता है।
3. मलेरिया के उपचार में पूंजी सबसे बड़ी समस्या है।
4. स्वास्थ्य शिक्षा का मंहगा होना भी एक समस्या बनी हुई है क्योंकि डॉक्टर सीमित संख्या में है।
5. प्रत्येक स्वास्थ्य केन्द्र पर चिकित्सा कर्मियों का अभाव है इस समस्या से मरीजों का समय पर उपचार नहीं हो पाता है।
6. आज कल नयी नयी तकनीकि का प्रयोग चिकित्सा में किया जा रहा है परन्तु अध्ययन क्षेत्र में यह सबसे बड़ी समस्या है।
7. प्रसाशनिक कारण से भी मलेरिया एक समस्या बन जाता है।

8. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर जब ग्रामीण पहुंचते हैं तो केन्द्र पर ताला लगा पाता है या वहां चिकित्सक नहीं पाता। यह समस्या तहसील में सर्वाधिक है।
9. कई प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर सहायकों से ही काम चल रहा है।

रूपवास तहसील में मलेरिया की रोकथाम तथा नियंत्रण के उपाय :-

मलेरिया उभरते हुए रोगों में से एक प्रमुख रोग माना जा रहा है। अतः इसके फैलने की आशंका को समझते हुए इस पर नियंत्रण पाना आवश्यक हो गया है। व्यक्ति अपना बचाव करके भी इस रोग से दूर रह सकता है। बचाव इलाज से बेहतर होता है। कुछ प्रमुख सुझाव सुनिश्चितता से अमल किए जाये तो मलेरिया पर काफी काबू पाया जा सकता है :-

1. मलेरिया होने पर रेागी की तुरन्त जांच-पड़ताल होनी चाहिए तथा उसका समुचित इलाज होना चाहिए।
2. मलेरिया में प्राइमाक्वीन नामक दवा कारगर साबित हुई अतः प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर इसकी आपूर्ति और उपलब्धता बराबर रहनी चाहिए।
3. कस्बों तथा गांवों के स्वास्थ्य केन्द्रों पर रोग परीक्षण की अच्छी सुविधा होनी चाहिए। इसके लिए प्रत्येक स्वास्थ्य केन्द्र पर आवश्यक सख्या में माइक्रोस्कोप उपलब्ध कराए जाने चाहिए।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में कीटाणुनाशकों का छिड़काव निश्चित समय अन्तराल पर किया जाना चाहिए।
5. मरीज को दूरदराज के इलाकों से स्वास्थ्य केन्द्रों तक पहुंचाने के लिए उचित परिवहन साधनों की व्यवस्था होनी चाहिए।
6. ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या में वृद्धि करनी चाहिए तथा इन केन्द्रों पर तैनात स्वास्थ्यकर्मियों के रिक्त पदों को तत्काल भरा जाना चाहिए। यहां यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि इन प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर तैनात चिकित्साकर्मी वहां उपलब्ध रहें और उनका आवास भी वहीं हो।
7. स्प्रेयिंग आपरेशन के लिए आवश्यकतानुसार पंपों की आपूर्ति की जानी चाहिए।
8. जगह-जगह एकत्र गंदे पानी को हटाने, नालें-नालियों की सफाई तथा कूड़े मलवे के निपटाने का प्रबन्ध होना चाहिए।
9. तालाबों पोखरों में से जलकुंभी एवं बनस्पति की सफाई की जानी चाहिए।
10. गांवों व कस्बों में स्वास्थ्य शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए।
11. पानी के जमाव वाले कुछ ऐसे स्थान भी है जिन्हें पूरी तरह सुखाना संभव नहीं होता है ऐसे में पानी की सतह पर केरासिन तेल, मोबिल, पैराफिन तेल आदि डालकर मच्छरों को नष्ट करना चाहिए।
12. तालाब पोखरों में कीट भक्षी मछलियों, जैसे मिनी, गैम्बुलियां आदि को छोड़ा जाना चाहिए। इनसे मच्छरों के लार्वा और प्यूपा को नष्ट किया जा सकता है।
13. घरों में डी.डी.टी. फ्लिट, मैलाथियान, पाइरीथ्रम आदि दवाओं के प्रयोग से भी मच्छरों को मारा जा सकता है।
14. घर के सभी दरवाजों तथा खिड़कियों को बारीक जाली से बंद रखकर मच्छरों से बचाव किया जा सकता है।
15. शरीर मच्छरों से पूरी तरह सुरक्षित रहें इस के लिए मच्छरदानी का उपयोग आवश्यक है।

16. मच्छरों से बचने के लिए घर में नीम की सूखी पत्तियां जलाई जा सकती है।

सुझाव :-

1. बुखार होने की स्थिति में निकट के डॉक्टर स्वास्थ्य केन्द्र अथवा स्वास्थ्यकर्मी से संपर्क करें।
2. रक्त में मलेरिया पैशसाइट का परीक्षण करवाएं।
3. डॉक्टर की सलाह पर मलेरिया से संबंधित उपचार के बाद मलेरिया रोग समाप्त होने में दो या तीन दिन लग जाते हैं।
4. कीटनाशकों का छिड़काव करने वाले कर्मियों के साथ सहयोग करें तथा अपने घर के अंदर तथा बाहर औरा उसके आस पास छिड़काव करवायें।
5. अपने घर में सफाई सफाई सूखे तथा अपने आस पा सके वातावरण को भी साफ सुथरा रखें।
6. खाली पेट मलेरिया बुखार की दवाई नहीं लेनी चाहिए।
7. घरों के आसपास पानी का जमाव न होने दें।
8. घर में दवा छिड़कने के बाद दो महीने तक पोताई न करें।
9. मलेरिया की बीमारी के बचावों का केन्द्र/राज्य सरकारों को विज्ञापनों एवं मनोरंजन साधनों द्वारा प्रचार किया जाना चाहिए।
10. केन्द्र एवं राज्य सरकारों को मलेरिया रोधक योजनायें संचालित करनी चाहिए।
11. चिकित्सक एवं चिकित्साकर्मी द्वारा गांवों में जा कर नियमित रूप से सेवायें देनी चाहिए।
12. मच्छर विरेाधी वस्तुओं जैसे ओडोमॉस, गुडनाइट, मार्टीन कछुआ छाप आदि का प्रयोग करना चाहिए।

निष्कर्ष :-

तहसील रूपवास में चिकित्सा विभाग ने नियन्त्रण में मलेरिया को अपनी महत्वपूर्ण भमिका निभायी है। संकलित विश्लेषण से यह पाया गया है कि तहसील में वर्ष 2014 में मलेरिया के मात्र 311 रोगी है। अध्ययन क्षेत्र में शुरू में मलेरिया नियंत्रण को थोड़ी सफलता अवश्य मिली, पर बाद में स्थिति बिगड़ती चली गई और यह कहने में संकोच नहीं हो रहा कि मलेरिया की रोकथाम के लिए पिछले 28 वर्षो में किये गए प्रयासों के वांछित परिणमा सामने नहीं आए है। जिला मलेरिया विभाग ग्रामीण क्षेत्रों में मलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम के लिए पूरी तरह उत्तरदायी होता हे। तहसील में सरपंचों और स्वास्थ्य विभाग के लोग आपसी समन्वय न होने के कारण तनाव की स्थिति बनी रहती हे। अगर राज्य स्तर का कार्यक्रम असफल होता है। तो उसे केन्द्र पर मदद दिया जाता है। किसी भी तरह की जिम्मेदारी से बचने की प्रतिस्पर्धा के चलते यह कार्यक्रम एक दिखावा बनकर रह गया है। कई बार केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा मुहैया कराए गए संसाधनों का वैज्ञानिक ढंग से उपयोग ही नहीं हो पाता है और व संसाधन बर्बाद हो जाते हैं। नियंत्रण कार्यक्रमों की असफलता का एक कारण दृढ़ इच्छाशक्ति की कमी होना भी है अतः इस दिशा में सफलता अर्जित करने के लिए सरकार तथा जनता दोनो को दृढ़ता से अपना फर्ज निभाना चाहिए। मलेरिया पर काबू पाना सिर्फ सरकार की जिम्मेदारी है, यह तर्कसंगत नहीं है। इसमें स्वयंसेवी संस्थाओं की भागीदारी भी सुनिश्चित की जानी चाहिए। इसके अलावा सरकार को जनस्वास्थ्य सेवाओं के दायित्व का कुछ हिस्सा इन संस्थाओं को सौंपना चाहिए और इसके लिए सरकार द्वारा उन्हें प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

सन्दर्भ सूची :-

1. Mishra, RpP. 1981 "The Medical Geography of Common Diseases in Rajasthan," Unublished Ph.d. Thesis Jaipur u niversity of Rajasthan.
2. Prothero, B.N. 1965 Migrants and Malaria, London longmans
3. सांख्यिकीय रूप रेखा, 2012
4. कुरूक्षेत्र पत्रिका, फरवरी, 2003
5. भरतपुर जिला, एक दृष्टि में, 2015
6. Census of India. 2011

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 80-85

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Environmental Depiction and Environmental Vision in Saint Tukaram's Abhangas

Gautam Kedar Brahme

M.A. (Marathi) SET & NET (Marathi)

Sangeet Visharad (Tabla), Department of Marathi, D. B. J. College, Chiplun-415605, Dist.- Ratnagiri.

Sant Tukaram was blessed with the fortune of becoming the pinnacle of the temple of Bhagavata Dharma, whose foundation was laid by Saint Dnyaneshwar. His Abhangas (devotional verses) continue to resonate fresh and vibrant in the hearts of thousands of Warkaris and common people. Living an ordinary worldly life, experiencing joys, sorrows, hardships, and sufferings, yet composing extraordinary Abhangas, Tukaram attained sainthood. His compilation of Abhangas (Tukaram Gatha) is an invaluable treasure of Marathi literature. These Abhangas impart spiritual wisdom and provide deep insight. In simple, colloquial language, Tukaram conveyed the essence of devotion and the message of equality with remarkable force.

His philosophy of devotion is deeply rooted in experience. Through metaphors, allegories, and illustrations, his compositions feel intimate and relatable to common readers and devotees alike. Tukaram expounded the philosophy of Bhakti (devotion) through his Abhangas, emphasizing purity of heart and morality while vehemently criticizing hypocrisy, deceit, and corrupt religious leaders. He had a keen understanding of social life, and his own life is reflected vividly in his Abhangas. His compositions, based on personal experiences, serve as a profound commentary on life. His verses encompass numerous aspects of human existence, making them deeply meaningful and resonant.

Since his Abhangas were born from a pure heart, they carry an innate charm and sweetness. His verses are filled with intense emotions. Over the years, many scholars, critics, and eminent writers have written extensively about Sant Tukaram and his works. His life was deeply intertwined with nature, and his Abhangas provide ample evidence of this connection. After marriage, he initially led a happy life, but fate soon took a turn. He faced multiple hardships—losing his parents, sister-in-law, cattle due to drought, and eventually his wife and son. These adversities left him deeply anguished. The immense suffering led him towards detachment and contemplation.

Burdened with personal tragedies, Tukaram retreated to Bhandara Hill near his village, seeking solitude. He spent time in deep meditation and reflection, where he began to perceive the divine grandeur and sublimity of nature. He experienced divine revelations—seeing the sky as a vast canopy and the earth as a seat for spiritual contemplation. The Bhandara Hill became his close companion, where he conversed with himself, engaged in debates, and expressed nature's countless forms through his Abhangas. This hill offered him the serene solitude necessary for deep concentration.

At Bhandara Hill, Tukaram communed with trees and listened to the melodious chirping of birds. He observed the vast blue sky, rain-bearing clouds, and the gentle whispers of the wind. He found divinity in everything around him. Through his Abhangas, he shared his emotions with nature, making his poetry a sublime reflection of the environment.

The Concept of Environment and Tukaram's Vision :

Environment encompasses all living beings, natural elements, and societal systems within a particular geographical space. It includes flora, fauna, mountains, rivers, and their interdependent relationships. Human life is intricately linked to the environment. In the name of progress, humans have destroyed forests, exploited natural resources, and encroached upon rivers,8 mountains, and trees, leading to severe ecological imbalance. This has resulted in declining rainfall, pollution, and the endangerment of various species.

The term environment is used to describe all the elements of the environment in which various types of life, as well as human groups or societies live. Environment generally includes the natural elements that are possible as external conditions. In any area, various elements such as plants, animals, mountains, rivers have different places. The geographical environment considers the location-specific relationship between these various elements within the limits of that area.

There is a close relationship between human life and the environment. In the name of improvement, man destroyed forests, plundered natural resources. He encroached on rivers, streams, mountains, and treetops without limit. As a result, the balance of nature and the environment was disrupted. The very existence of animals, birds, wildlife, etc. was threatened. There were worrying changes in temperature and rainfall. The amount of rainfall decreased. Pollution in rivers increased. This was due to man-made reasons. Many species of animals and birds on earth became extinct.

Environmental degradation has become a major issue for all countries, big and small. In religious texts like Rigveda, Puranas, Rudra, Saptashati, etc., mentions of trees, forms of nature, etc. are constantly found.

In fact there is so close relationship between man and his environment that a part from it man is an abstraction in reality no such being could exist. Dr. T.N. Khoshoo defines it as the "Sum total of

all conditions and influences that affect the development and life of all organs."

The Encyclopedia Britannica defines the environment as follows :

The entire range of external influence acting on an organism both the physical and biological i.e. other organism, forces of nature surrounding an individual.

Recognizing these environmental issues, the world awakened to its crisis. In June 1972, the United Nations convened the Stockholm Conference on the environment, where India's then-Prime Minister Indira Gandhi played a crucial role. Since then, June 5th has been observed as "World Environment Day." This awareness led to the incorporation of environmental protection laws in the Indian Constitution under Article 48A and Article 51A, making it a fundamental duty of every citizen to conserve forests, rivers, and wildlife. Several environmental laws, such as the Forest Conservation Act (1980) and the Environmental Protection Act (1986), were enacted to curb environmental degradation.

Historical and Social Context :

The birth of Sant Tukaram and his influence are highly significant in the socio-cultural backdrop of 17th-century Maharashtra. The rural lifestyle, agrarian society, traditional beliefs, and deep connection with nature are vividly reflected in his Abhangs.

Reflection of Rural Life : Tukaram's Abhangs express the simplicity of rural life, the close-knit relationship between society and nature, and the agricultural economy.

Cultural Essence : The Bhakti tradition of Maharashtra, in which Tukaram played a crucial role, carried a message of unity among different social classes.

Nature and Spirituality : Natural elements were not just viewed in their physical form but were also seen as mediums of divine messages and spiritual enlightenment.

Tukaram's Perspective on Nature and Conservation :

Sant Tukaram's Abhangas highlight the profound relationship between nature and human life. His verses often use natural elements to convey deep spiritual truths :

"A tree is like the Kalpavriksha (wish-fulfilling tree); it does not turn away anyone who seeks shelter."

"When a seed is planted in the earth, it gives vision and enlightenment."

"Watering the roots nourishes the entire tree."

Through such verses, he emphasized environmental conservation, advising against deforestation and promoting tree preservation. Tukaram keenly observed animals, birds, and insects, incorporating them into his philosophy :

"A snake and a scorpion appear as if they possess wealth, but they are mere illusions."

"A monkey wearing a necklace does not understand its value."

"A bird does not store food, yet the divine always provides for it."

These reflections indicate his deep ecological consciousness, long before modern environmental concerns arose. He viewed forests as divine sanctuaries, essential for sustaining all life forms.

Tukaram's Deep Connection with Nature :

For Tukaram, trees and animals were more than mere natural elements; they were companions, teachers, and sources of inspiration. His famous verse expresses this beautifully :

"The trees and vines are my friends, the birds sing melodiously around me."

"Here, I find peace; here, virtues and vices do not touch me."

For him, the natural world was not separate from spirituality. He saw in it the divine presence of Vitthal. His poetry captures the beauty of forests, rivers, and mountains, urging people to live harmoniously with nature. His life and work remain a timeless reminder of the need for environmental consciousness, devotion, and moral responsibility.

Tukaram and the Environment :

Sant Tukaram's Abhangas clearly reflect his deep love for nature. He frequently mentioned trees, rivers, birds, and animals in his compositions, conveying an important message of environmental conservation. In his famous Abhanga, "Vrukshavalli Amha Soyare Vanachare" ("The trees and vines are our kin, and the forest dwellers are our companions"), he beautifully expresses his close bond with nature.

While considering environmental balance, he emphasized the need to preserve forests, water sources, and wildlife. For example, he stated :

"Sinchan Karta Mool, Vruksha Olave Sakal"

("When you water the roots, the entire tree remains green")

This metaphor highlights the importance of nurturing the fundamental aspects of nature to maintain ecological harmony.

From the perspective of Tukaram's devotional sensitivity, nature itself is a manifestation of the divine, and respecting and preserving it is a fundamental human duty.

Imagery and Environment in Tukaram's Abhangs :

Tukaram frequently uses imagery from nature and the environment in his Abhangs. He employs symbols of trees, vines, sky, soil, sandalwood, Kalpavriksha (the wish-fulfilling tree), bees, the ocean, and animals.

For example :

"Mahapure jhade jaati, tethe lavhali vaachati."

("In a great flood, trees are washed away, but the small reeds survive.")

"Hariname veli pavali vistar... saadhayla kaaj triptiche ya."

("The vine of God's name has grown vast... it fulfills the purpose of ultimate satisfaction.")

These metaphors reflect the delicate balance between human existence and nature, showing how spiritual resilience, like the reed, can withstand life's adversities.

Characteristics of Nature Imagery in Abhangs :

The description of nature in Abhangs includes various symbols, metaphors, and literary embellishments. For example :

Water : The words "Jal" or "Neer" in his Abhangs do not merely signify a life-sustaining element but are used metaphorically to represent the flow of the soul.

Trees and Vegetation : The depiction of trees is not just for aesthetic appreciation but is connected to different aspects of life—growth, struggle, and regeneration.

Sky and Air : The vastness of the sky symbolizes liberation, the experience of infinity, and divine presence.

Critical Appreciation of Tukaram's Philosophy :

Several scholars and critics have extensively studied Sant Tukaram's works :

Dr. Malati Patil : "Tukaram was deeply fascinated by nature. His poetry is rich with imagery inspired by the natural world."

D.N. Shikhare : "Tukaram's Abhangas are mirrors of the heart."

Sant Tukaram and Today's Environmental Issues :

Today, nature is facing immense destruction. Deforestation, water pollution, and climate change have put the entire ecosystem in crisis. The message of environmental conservation that Sant Tukaram conveyed centuries ago remains just as relevant today.

He emphasized the selfless generosity of nature, as reflected in his verse :

"Zhad Kalpataru, Na Kari Yachaka Avheru"

("A tree is like the wish-fulfilling Kalpavriksha; it does not turn away anyone who seeks its shelter")

This implies that trees provide benefits to all without discrimination, and thus, we must use them wisely and responsibly.

Sant Tukaram's philosophy remains relevant even today. His poetry continues to inspire individuals to cultivate spiritual awareness, social responsibility, and environmental consciousness, making him an eternal guide for generations to come.

(Note-All these reference books are originally written in Marathi.)

Reference Bibliography :

1. "Shri Tukaram Maharajanchi Sampradayik Gatha" – Edited by Baburao Hari Devdikar.
2. "History of Ancient Marathi Literature" – Author: Prof. L. R. Nasirabadkar.
3. "Santkavi Tukaram: A Contemplation" – Author: Prof. Nirmalkumar Phadkule.
4. "Modern Literary Trends and Themes" – Author: Prof. R. G. Jadhav.
5. "Marathi Poetry: Form and Interpretation" – Author: Prof. Nishikant Thakar.
6. "Ancient Marathi Women Poets" – Author: Prof. Dr. Suhasini Irlekar.
7. "Five Saint Poets" – Author: Prof. Dr. Shankar Govind Tulpule.
8. "Tukaram" – Author: Dr. Bhalchandra Nemade; Translated by : Chandrakant Patil.
9. "The Social Impact of Saint Literature" – Author: G. B. Sardar.
10. "Tukaram Darshan" – Author: Prof. Dr. Sadanand More.
11. "Selected Abhangas of Tukaram" – Author: Prof. Dr. P. N. Joshi.
12. "Santshreshtha Tukaram" (The Great Saint Tukaram).
13. "Tukaram" – Authors: J. R. Ajgaonkar & R. G. Harshe.
14. "Marathi Encyclopedia" – Edited by Tarkateerth Lakshman Shastri Joshi, Volume 7 and 10.
15. "Indian Cultural Encyclopedia," Volumes 4 and 5 – Edited by Pandit Mahadevshastri Joshi.
16. "Innovative Marathi-English Thesaurus" – Author: V. Shankar Thakar.

Mobile- 9422358308.

E -Mail- gautambrahme@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 86-89

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण प्रदूषण – एक विकट समस्या का अध्ययन

श्याम कुमार

सहायक आचार्य (समाज ाास्त्र), श्री गुरू माधवानंद प्रतिभा माहाविद्यालय, रूपवास, भरतपुर।

प्रस्तावना :–

पृथ्वी पर मानव के विकास में पर्यावरण सदैव से ही सहायक रहा है। वर्तमान समय में प्रत्येक दे ा अपने विकास के लिए प्रयत्न ील है। औद्योगिक विकास ने मानव को उन्नत जीवन प्रदान करने के साथ ही समाज के सामने पर्यावरण प्रदूशण की समस्या को लाकर खड़ा कर दिया है। औद्योगिक विकास का परिणाम प्रदूशण के रूप में हमारे सामने उपस्थित हुआ है। विभिन्न प्रकार की औद्योगिक इकाइयों के परिणम स्वरूप नए–नए हानिकारक तत्व पर्यावरण में मिलकर पर्यावरण को प्रदूशित करते हैं। औद्योगिककरण के कारण प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र गति से दोहन तथा औद्योगिक उत्पादन पर्यावरण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है। नगरीय विकास एवं यातायात के साधनों के विकास ने पर्यावरण को सबसे अधिक नुकसान पहुंचा है। पर्यावरण प्रदूशण आधुनिकता की देन है औद्योगिक इकाइयों द्धारा उत्पादित अवांछित पदार्थ तथा ठोस अपि ाश्ट प्रदूशित जल, विशैली गैस आदि जल, थल तथा वायु प्रदूशण के प्रमुख कारण है। औद्योगीकरण के कारण प्रकृति प्रदत्त साधनों का तीव्र गति से विदोहन तथा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि पर्यावरण प्रदूशण को तीव्र गति से बढाते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ :–

इस दुनिया में भूमि, जल, वायु तथा ध्वनि जैसे तत्वों का संतुलन आव यक है यदि यह संतुलन बिगड़ता है तो पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और यही असंतुलन पर्यावरण प्रदूशण का कारण बनता है। पर्यावरण प्रदूशण एक ऐसा अवांछित परिवर्तन है जिसका मानव तथा जीव–जंतुओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण प्रदूशण हमारे जीवन के उन विशयों में से एक है जो इस समय हमारी पृथ्वी को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है। यह एक ऐसा विशय है जो लम्बे समय से चिंता का विशय बना हुआ है। तथा 21वीं सदी में इसे हानिकारक प्रभाव बडे पैमाने पर देखे जा रहे हैं। पर्यावरण प्रदूशण के कारण प्राकृतिक प्रक्रिया में गड़बड़ी आती है इतना ही नहीं आज कई वनस्पतियां तथा जीव जंतु विलुप्त हो चुके हैं। या विलुप्त होने की कगार पर है। प्रदूशण की मात्रा में तेजी से वृद्धि होने के कारण जीव जंतु न केवल अपना घर खो रहे है, बल्कि जीवित रहने लायक प्रकृति को भी खो रहे हैं। प्रदूशण ने दुनिया भर के भाहरों को प्रभावित किया है अब समय आ गया है कि प्रदूशण के स्थर को कम करने के लिए ठोस रणनीति तैयार करके उस पर अमल किया जाए।

बढते पर्यावरण प्रदूषण के लिए निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया जा सकता है :-

- वनों का तेजी से काटना।
- कम वृक्षारोपण।
- बढती जनसंख्या।
- बढता औद्योगीकरण।
- प्रकृति के साथ छेड़छाड़।
- कीटना ाकों का बढता प्रयोग
- प्राकुतिक संसाधनों की बढ़ती खपत।
- तेजी से बढता भाहरीकरण।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार :-

1. **वायु प्रदूषण** – वायु प्रदूशण मुख्य रूप से वाहनों से निकलने वाले धुएं के कारण होता है इसके साथ ही बेहद हानिकारक गैसें उद्योगों में उत्पादन के समय उत्सर्जित होती है। जिनसे पर्यावरण प्रदूशण होता है। रेफ्रिजरेटर उद्योग में उपयोग किए जाने वाली सी एफ सी गैस से वायु प्रदूशण में वृद्धि होती है। हाल ही के द ाकों में सडकों पर वाहनों की सख्या दिन प्रतिदिन बढती जा रही हैं। यह सल्फर डाइऑक्साइड तथा कार्बन मोनोऑक्साइड जैसी हानिकारक गैसों के फैलाव के लिए जिम्मेदार है। यह गैसें पृथ्वी के वायु मण्डल में ऑक्सीजन की मात्रा को कम करने के लिए जिम्मेदार हैं। इनकी वजह से सांस संबंधी अनेक समस्याएं तेजी से पनप रही हैं। इस पग्रकार मानव जनित स्रोतों से पर्यावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि तथा दूसरी विशैली गैसों की मात्रा दिन प्रतिदिन बढती जा रही है।

2. **मृदा प्रदूषण** – मृदा के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में ऐसा कोई अवांछनीय परिवर्तन जिसका प्रभाव मानव पोशण तथा फसल उत्पादन दोंनों पर पड़े जिससे मृदा की गुणवत्ता एवं उपयोगिता नश्ट हो, मृदा प्रदूशण कहलाता है। भारतीय आबादी का एक बड़ा भाग कृशि पर निर्भर करता है। किसान अपनी उपज बढाने के लिए खेती में विभिन्न प्रकार के कीटना ाकों एवं उर्वरकों का उपयोग करते हैं। इससे मिट्टी दूशित हो जाती है। इसके अलावा नगर तथा औद्योगिक इकाइयों का प्रदूशित जल, अप ाश्ट पदार्थ तथा कूड़ा खाली पड़ी भूमि पर डाल दिया जाता है जिससे हानिकारक तत्व मिट्टी में मिलकर उसकी गुणवत्ता को कम करते हैं और प्रदूशण को बढ़ाते हैं कैडमियम, क्रोमियम कीटना ाक पदार्थ, रासायनिक उर्वरक तथ खरपतवार ना ाक पदार्थ आदि मृदा के प्रदूशक हैं।

3. **जल प्रदूशण** – मनुश्य के सामने उपस्थित प्रदूशणों में जल प्रदूशण सबसे बड़ी समस्या है। जल का सबसे अधिक प्रदूशण औद्योगिक अप ाश्ट के कारण होता है। जिन क्षेत्रों में औद्योगिक अप ाश्ट नदियों में बहा दिया जाता है। निरंतर बढ़ते औद्योगिक प्रसार के कारण अनेक प्रकार के हानिकारक पदार्थ की उत्पत्ति होती है जैसे क्लोरीन, सोडियम, मैग्नी ियम आदि के आयन। इनको नदियों तथा तालाबों में डाल दिया जाता है। जिससे जल प्रदूशित हो जाता है। मानवीय गतविधियों के कारण जब जल के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों में कमी हो जाती है। तो उसे जल प्रदूशण कहते हैं जल प्रदूशण से जल स्रोतों की हानि होती है जिससे पीने योग्य जल की कमी हो जाती है तथा प्रदूशित जल का प्रयोग करने से विभिन्न प्रकार के जल जनित रोगों का जन्म होता

है।

पर्यावरण प्रदूषण के परिणाम :–

पर्यावरण प्रदूशण हमारे स्वास्थ्य पर कई प्रकार के हानिकारक प्रभाव डालता है। जल, वायु तथा मृदा प्रदूशण मनुश्यों, जंगली एवं घरेलू जानवरों एवं इसके साथ ही पेड़–पौधौं को भी प्रभावित करता है। पर्यावरण प्रदूशण के परिणामों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है।

1. हवा, पानी तथा मृदा का प्रदूशित हो जाना।
2. पर्यावरण प्रदूशण से कई प्रकार की बीमारियां हो जाती हैं जैसे–टाइफाइड, जल जलित बीमारियां आदि
3. मिट्टी की उर्वरक भाक्ति नश्ट हो जाती है।
4. पर्यावरण प्रदूशण से पौधौं को हानि होती है।
5. पीने योग्य पानी की कमी हो जाती है।
6. पर्यावरण प्रदूशण का प्रभाव ग्लोबल वार्मिगं के रूप में देखा जा सकता है।
7. सांस तथा त्वचा संबंधी बीमारियों का खतरा बना रहता है।
8. विभिन्न प्रकार के जीव जन्तुओं तथा प ा पक्षियों के विलुप्त होने का खतरा रहता है।

पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के उपाय :–

पर्यावरण का संरक्षण करके प्रदूशण को कम किया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं।

1. अधिक से अधिक वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।
2. वाहनों का उपयोग कम से कम किया जाना चाहिए।
3. कृशि में रासायनिक पदार्थों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।
4. प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर नियंत्रण लगा दिया जाना चाहिए।
5. औद्योगिक इकाइयों की स्थापना भाहर से दूर की जानी चाहिए।
6. तेज आवाज के लाउडस्पीकर का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।
7. समय–समय पर विभिन्न प्रकार के जागरूकता अभियान चलाकर लोगों को प्रदूशण के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए।
8. नदी, नहर तथा दूसरे जला ायों में कारखाने के गंदे पानी तथा अन्य रासायनिक पदार्थों को नहीं डालना चाहिए।
9. विभिन्न प्रकार के औद्योगिक कारखानों की चिमनियों को उंचा बनाकर लोगों को वायु प्रदूशण से बचाया जा सकता है।
10. सरकार द्वारा प्रदूशण नियंत्रण के कड़े नियम बनाए एवं लागू किए जाने चाहिए।

उपसंहार :–

मानव तथा पर्यावरण का प्राचीनकाल से ही अटूट संबन्ध रहा है। प्रारम्भ का मानव पर्यावरण का सृजनकर्ता था, जो वर्तमान समय में औद्योगिकीय मानव में बदलकर पर्यावरण का विना ाक बन गया है। आदि काल में मानव प्रकृति पर निर्भर था और प्रकृति को देवतुल्य समझता था, परन्तु वर्तमान समय में प्रकृति प्रदत्त

उपहार का दोहन अधिक मात्रा में किया जाने लगा जिससे हमारा पर्यावरण असंतुलित तथा प्रदूशित हो गया।

आज आर्थिक प्रतिस्पर्धा की दौड़ में मनुश्य ने पर्यावरण को अपने स्वार्थ के लिए प्रदूशित करने का कार्य किया है जो वि व के सामने एक विकराल समस्या के रूप में आ रहा है। जिसके चलते मानव जीवन के साथ –साथ जीव जन्तुओं के लिए भी जीवन का खतरा बनता जा रहा है। पर्यावरण प्रदूशण को समाप्त करने के लिए जागरूकता तथा पारस्परिक सहयोग की बड़ी आव यकता है। वर्तवान समय में पर्यावरण प्रदूशण के दुश्परिणाम इतने बढ़ चुके हैं कि मानव जीवन ही खतरे में पड़ गया है। हमें विकास के साथ–साथ पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को कम करना होगा। तभी हम पृथ्वी पर एक स्वस्थ तथा लम्बे जीवन की कल्पना कर सकते हैं।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. आभा सिंह, डॉ. कोमल सिंह
   –भूगोल (पर्यावरण प्रबन्धन जलवायु परिवर्तन एवं आपदा प्रबंन्धन)
2. डॉ. चतुर्वेदी मामोरिया, डॉ. कोमल सिंह
   –पर्यावरण प्रबंधन एवं संसाधन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 90-93

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैश्विक ताप में वृद्धि : एक बड़ी चुनौती

(Increase in Global Temperature : A Big Challenge)

अनीषा

शोध छात्रा, ओ. पी. जे. एस. विश्वविद्यालय, राजगढ़, चुरू।

वायुमण्डल में सतत् रूप से कार्बनडाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ती जा रही है जिससे विश्वस्तरीय ताप या ऊष्मा में वृद्धि हो रही है। यही वायुमण्डल की बढ़ती हुयी ऊष्मा को हम ग्लोवल वार्मिंग कहते है। अर्न्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैश्विक तापमानों को नियन्त्रण में रखने के अनेक स्तरों से अथक प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन वैश्विक तापमानें में हो रही वृद्धि वर्तमान में मानव के समक्ष एक बड़ी चुनौती के रूप में हैं।

औद्योगिक क्रान्ति (1860 ई0) के पूर्व वायुमण्डल में कार्बनडाई ऑक्साइड का सान्द्रण 280 से 290 च्व्डंजज 1960 से 1988 के मध्य वायुमण्डल में Co2 का सान्द्रण बढ़कर 350–360 PPM हो गया। चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ, भारत, रूस, जापान, जर्मनी, दक्षिण कोरिया आदि देशों द्वारा Co2 का सर्वाधिक उत्सर्जन हो रहा है। 1950 में अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका ने Co2 के सकल विश्व उत्सर्जन का 42 प्रतिशत उत्सर्जन किया था परन्तु एक्टिव सस्टेनेबिलिटी डॉट काम/यू एन एच आर के अनुसार आज चीन विश्व में Co2 उत्सर्जन का 30 प्रतिशत उत्सर्जित करता है। जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका 15 प्रतिशत भारत 7 प्रतिशत रूस 5 प्रतिशत जापान 4 प्रतिशत जर्मनी 3 प्रतिशत दक्षिण कोरिया 2 प्रतिशत तथा अन्य देश 34 प्रतिशत Co2 का उत्सर्जन करते हैं।

तालिका नं. 1

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जित देश

क्रमांक	देश	कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन (लाख टन में)	प्रति व्यक्ति कार्बनडाई ऑक्साइड उत्सर्जन (लाख टन में)
1	संयुक्त राज्य अमेरिका	6046	20.6
2	चीन	5007	3.8
3	रूस	1524	12.6
4	जापान	1257	9.9
5	जर्मनी	808	9.8
6	कनाडा	639	60.0
7	ब्रिटेन (यू.के.)	587	9.7
8	भारत	1342	1.2
9	कोरिया	465	9.7
	कुल योग	28953	4.5

स्रोत : वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक 2010

ग्रीन हाउस गैसों के उर्त्सित देश

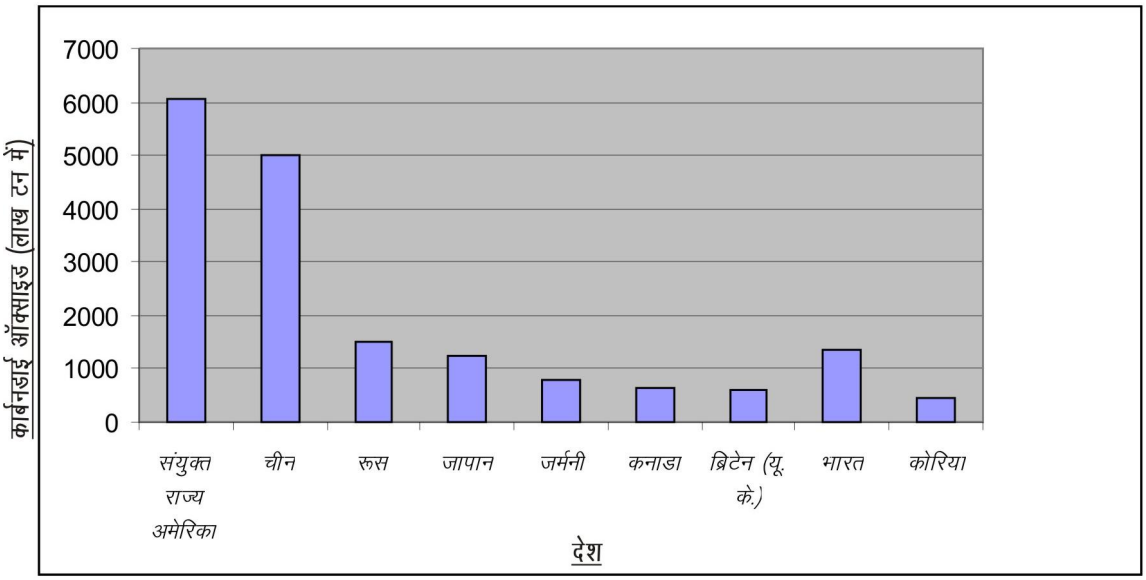

तालिका : 02

ग्रीन हाउस गैसे : स्रोत एवं प्रभाव

क्रमांक	गैस	स्रोत	प्रभाव
1	कार्बन डाई ऑक्साइड	ऊर्जा उत्पादन के लिए ईधन का दहन (पेट्रोल, कोयला, लकड़ी)	पृथ्वी पर ताप में वृद्धि
2	कार्बन मोनो ऑक्साइड	ऊर्जा उत्पादन में ईधन का अधूरा दहन	सांस और फेफड़ों की समस्या
3	नाइट्रोजन ऑक्साइड	भट्ठियों में ईधन का जलना	ताप वृद्धि और श्वास रोग
4	सल्फर डाई–ऑक्साइड	गंधयुक्त ईधन का दहन	अम्लीय वर्षा
5	ओजोन	हाइड्रोकार्बन और नाइट्रोजन के ऑक्साइड	ताप वृद्धि और फेफड़ों में क्षति
6	मीथेन	प्राकृतिक गैस एवं अवशिष्ट पदार्थ	पृथ्वी के तापमान में वृद्धि
7	क्लोरोफ्लोरो कार्बन	औद्योगिक उत्सर्जन	ओजोन क्षरण, ताप वृद्धि
8	अन्य हाइड्रो कार्बन	औद्योगिक क्रियाओं के दौरान	ताप वृद्धि, आंखों में जलन

कार्बनडाई ऑक्साइड के सान्द्रण में 1.5 PPMV (Part pe million by volume) प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई (0.4 प्रतिशत या 3.2 विलियन टन कार्बन)। यह वृद्धि मानव क्रिया कलापों द्वारा हुयी।

S. Manabe. तथा R.T. Wetherald (1975) के जनरल सर्कुलेशन मॉडल के अनुसार वायुमण्डलीय Co2 का वर्तमान स्तर 2 गुना हो जाता है तो धरातलीय सतह के तापमान में 2.9 प्रतिशत की वृद्धि हो जायेगी। यह अनुमान किया गया है कि विगत सौ वर्षो में पृथ्वी के तापमान में 0.5 प्रतिशत से 0.7 प्रतिशत तक वृद्धि हुई है। एक अन्य विचार के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध में 1880 में 1940 के के मध्य जीवाश्म ईधनों के उपयोग में त्वरित

गतित से वृद्धि के कारण तापमान 0.40 से0 की बढ़ौत्तरी हुई है परन्तु 1940 के बाद औद्योगिकरण में वृद्धि तथा जीवाश्म ईंधनों के उपयोग में और अधिक वृद्धि के बावजूद तापमान में ह्रास हुआ है। इसके विपरीत द0 गोलार्द्ध में 1940–1960 के मध्य तापमान में 0.60 से0 की वृद्धि हुई है।

A.B. Pittock (1972) के अनुसार हरित ग्रह प्रभाव के कारण विश्व स्तरीय औसत तापमान में कुछ अंश सेन्टीग्रेट की वृद्धि होने से मानव समुदाय तथा कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। तापमान में वृद्धि के कारण वर्षण तथा मृदा में नमी की मात्रा में कमी होगी जिसे कारण विश्व के अधिकतम विकसित कृषि प्रदेशों में कृषि पर भारी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। पारिस्थितिक तन्त्रों को भारी क्षति होगी।

यदि मानवजनित Co2 का वायुमण्डल में सान्द्रण बढ़ता जाता है तो महासागरीय भागों में Co2 का अधिकाधिक अवशोषण करना पड़ेगा। यदि महासागरीय जल में सामान्य या वांछित स्तर से अधिक अवशोषण (Absorption) तथा विघटन (Qecomposition) होता है तो महासागरीय जल की अम्लता बढ़ जायेगी जिस कारण पारिस्थितिक तन्त्र की उत्पादकता में भारी कमी होगी। सागरीय भागों में पादप प्लैंकटन (फाइटोप्लैकन) की मात्रा एवं आवरण में कमी के कारण सागरीय सतह के अलविंदों में परिवर्तन हो जायेगा। तापमान में वृद्धि के कारण महाद्वीपीय तथा पर्वतीय हिमनदों आर्कटिक एवं अण्टार्कटिक हिम टोपियां पिंघल जायेगी जिस कारण सागर तट ऊपर उठेगा। सागर तल में वृद्धि के कारण तटवर्ती निचले क्षेत्र सागरीय जल में डूब जायेगे। एक अनुमान के अनुसार हरित ग्रह प्रभाव के कारण तापमान में वृद्धि होने से सागर तल में 2050 ई0 तक एक मीटर तक वृद्धि हो जायेगी। सागर तल में वृद्धि के कारण तटवर्ती देश जलप्लावित हो जायेंगे जिससे काफी जन धन की हानि होगी।

हरित गृह गैसों आसकर Co2 के कारण समताप मण्डलीय ओजोन में अल्पता तथा क्षय की प्रक्रिया और तीव्र हो जायेगी जिस कारण तापमान में वृद्धि होगी।

सन् 2030 से पूर्व भूण्डलीय तापन से होने वाले तापमान वृद्धि को 1.50 सेण्टीग्रेड तथा सीमित रखने के लिए विश्व को 2050 से पूर्व कार्बन मुक्त को जाना होगा। साथ सन् 2035 तक कोयला व पेट्रोलियम जैसे जीवाश्म ईधन के उपयोग को समस्त विश्व में बन्द करना होगां पेरिस समझौता वास्तव में यह सुनिश्चित करता है कि सन् 2030 से पूर्व 1.50 सेण्टीग्रेड का लक्ष्य पाने के लिए हमें कार्बन बजट का पूरा उपयोग कर लेना है। लेकिन विशेष रूप से चीन, संयुक्त राज्य अमेरिकन रूस, ब्रिटेन, भारत के वर्तमान ऊर्जा उपयोग तथा कार्बन उत्सर्जन की मात्रा को दृष्टिगत रखते हुए 1.50 सेण्टीग्रेट के लक्ष्य को पाना काफी चुनौतीपूर्ण होगा।

आई.पी.सी.सी. की रिपोर्ट के अनुसार, विश्व के वायुमण्डल का तापमान 2 डिग्री सेल्सियस से नीचे बनाएं रखने हेतु कुल कार्बन स्पेस करीब 2900 मिलियन टन कार्बन डाईऑक्साइड होना चाहिए। इसमें से करीब 1900 बिलियन टन कार्बनडाई ऑक्साइड का पहले ही ज्यादातर विकसित राष्ट्रों ने उपयोग कर लिया है। अब वर्ष 2100 तक विश्व के पास उपयोग करने हेतु लगभग 1000 विलियन टन कार्बन डाईऑक्साइड बच रहा है। सेंटर फॉर सांइस एण्ड एन्वायरमेण्ट (CSE) के एक अध्ययन के अनुसार, अगर संसार में उत्सर्जन की वही दर बनी रही जैसी कि अब तक रही है तो हम वाली बचे कार्बन बजट का 707–2030 तक खत्म कर चुके होंगे।

भारत का मानना है कि यदि वह अपने कार्बन उत्सर्जन में कमी करता है तो भारत में आर्थिक विकास की गति धीमी हो जाएगी। इस सन्दर्भ में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा है कि जिन देशों ने गत

वर्षो में जीवाश्म ईंधन के बल पर विकास किया है उन्हें जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए बड़े कदम उठाने होंगे जलवायु परिवर्तन हमारे कारण नहीं हुआ है, इसका कारण भूमण्डलीय तापन है जो कि औद्योगिक क्रान्ति के दौरान जीवाश्म ईंधन के कारण हुआ है।

पर्यावरण संकट आज किसी राष्ट्र या क्षेत्र की समस्या न होकर भूमण्डलीय या विश्वस्तरीय समस्या हो गयी है। यही कारण है कि वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में पर्यावरण की सुरक्षा की दृष्टि से अनेक सम्मेलन सम्पन्न हुए जिनमें कई महत्वपूर्ण सन्धियों, घोषणाओं तथा कानूनों पर आम सहमति बनी है।

सन्दर्भ सूची :-

1. Chandnu , R.C. (2003) : Environmental Geography, Kalyani Publishers, New Delhi.
2. Grossm John and Marsh W (1996) : Environmental geography: science, land use and earth systems, john wiley new yark.
3. Garg. H.S. (2016) : Environmental geography, SBPD publications Agra.
4. Nebel, B.J. (1981) : Environmental science, the way the world works, prentice hall, New Jersey.
5. Saxena, H.M. (2007) : Environmental geography, Rawat Publictions Jaipur.
6. Singh, Savindra (2016) : Environmental geography, Prayag Pustak Bhawan Allahabad.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 94-99

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण और प्रशासन

डॉ. यादव सिंह

सहायक आचार्य, लोक प्रशासन, राजकीय महाविद्यालय रूपवास।

पर्यावरण और प्रशासन का संबंध, पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण के लिए किए जाने वाले कानूनी, नीतिगत, और प्रशासनिक उपायों से है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सरकार कई तरह के कार्यक्रम और नीतियां लागू करती है। पर्यावरण और वन मंत्रालय, भारत सरकार के पर्यावरण और वानिकी नीतियों और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करता है। पर्यावरण शासन में नीति, नियम, और मानदंड शामिल हैं। पर्यावरण शासन का मकसद, पर्यावरण की रक्षा और संरक्षण करना होता है। पर्यावरण शासन, आर्थिक विकास और पर्यावरणीय स्थिरता के बीच संतुलन बनाने में मदद करता है। पर्यावरण सुरक्षा और संरक्षण के लिए, स्वच्छ और सतत ऊर्जा उत्पादन, प्रदूषण नियंत्रण, और संसाधनों के अपव्यय को कम करना जैसी पहलें की जाती हैं। पर्यावरण से जुड़े कानूनों और नियमों का पालन करना, प्रशासन का दायित्व है। पर्यावरण से जुड़े मुद्दों को राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, या वैश्विक स्तर पर विनियमित किया जाता है। पर्यावरण प्रशासन उन प्रक्रियाओं, तंत्रों और संस्थानों को संदर्भित करता है जिनके माध्यम से समाज पर्यावरण का प्रबंधन और निर्णय लेते हैं। इसमें पर्यावरणीय मुद्दों को संबोधित करने और स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए नीतियों, विनियमों और प्रथाओं का निर्माण और कार्यान्वयन शामिल है। भारत के संदर्भ में, पर्यावरण प्रशासन अवधारणाओं और सिद्धांतों के एक समूह द्वारा निर्देशित होता है जिसका उद्देश्य पारिस्थितिक संरक्षण के साथ आर्थिक विकास को संतुलित करना है। सतत विकास, एहतियाती सिद्धांत, सार्वजनिक भागीदारी, प्रदूषणकर्ता भुगतान सिद्धांत, अंतर पीढ़ीगत समानता, अनुकूली प्रबंधन, पारिस्थितिकी तंत्र दृष्टिकोण, कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, हरित न्यायाधिकरण आदि अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों के माध्यम से प्रशासन, पर्यावरण का प्रबंधन करता है।

कुंजी शब्द :- पर्यावरण, प्रशासन, प्रदुषण, अपव्यय, नीतियां, मानदंड, सरंक्षण, कार्यक्रम।

पर्यावरण और प्रशासन का गहरा संबंध है, जहाँ प्रशासन पर्यावरण की रक्षा और प्रबंधन के लिए नीतियों और कानूनों को बनाता और लागू करता है, जिससे मानव और प्राकृतिक दुनिया के बीच संतुलन स्थापित करने में मदद मिलती है। पर्यावरण शासन, पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के नियंत्रण और प्रबंधन में शामिल निर्णय लेने की प्रक्रियाएँ हैं।

पर्यावरण और प्रशासन के बीच संबंध के कुछ मुख्य पहलू इस प्रकार हैं :-

1. **पर्यावरण संरक्षण :** प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य पर्यावरण की रक्षा करना है, जिसमें प्रदूषण नियंत्रण, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, और जैव विविधता की सुरक्षा शामिल हैप् पर्यावरण संरक्षण में प्रशासन का योगदान

बहुत महत्वपूर्ण है। प्रशासन, नीतियों और कानूनों को लागू करके, प्रदूषण को नियंत्रित करके, और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए कदम उठाकर, पर्यावरण की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रशासन पर्यावरण संरक्षण के लिए धन मुहैया कराता है ताकि पर्यावरण संबंधी परियोजनाओं को लागू किया जा सके।

2. **कानून और नीति निर्माण :** पर्यावरण संरक्षण के लिए नीतियां और कानून बनाने में प्रशासन का महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्रशासक नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में अपनी विशेषज्ञता और ज्ञान का उपयोग करते हैं। प्रशासक नीतिगत विकल्पों का विश्लेषण करते हैं और प्रभावी समाधानों का सुझाव देते हैं। प्रशासन नीतियों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए जिम्मेदार होता है। प्रशासकों को प्रशासनिक और कानूनी प्रक्रियाओं का ज्ञान होता है, जो उन्हें नीतियों को लागू करने में मदद करता है। प्रशासन पर्यावरण की स्थिति की निगरानी करता है और यह सुनिश्चित करता है कि नीतियां और कानून प्रभावी ढंग से लागू हो रहे हैं।

प्रशासन उन लोगों के खिलाफ कार्रवाई करता है जो पर्यावरण संबंधी नियमों का उल्लंघन करते हैं। प्रशासन, कानून और नियमों को लागू करने, संसाधनों का प्रबंधन करने और सरकारी एजेंसियों के कामकाज को सुचारू रूप से चलाने में मदद करता है। पर्यावरण की रक्षा और सतत विकास को बढ़ावा देने में मदद करता है। ये नीतियां और कानून, प्रदूषण को रोकने, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार करने में मदद करते हैं तथा पर्यावरण के मुद्दों को संबोधित करते हैं और स्थिरता को बढ़ावा देते हैं। भारत ने विभिन्न पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के लिए पर्यावरण प्रशासन के लिए एक व्यापक कानूनी और नीतिगत ढांचा स्थापित किया है। ये प्रावधान पर्यावरणीय प्रशासन और नीति निर्माण की नींव रखते हैं। इन रूप रेखाओं के कार्यान्वयन और कार्यान्वयन में केंद्र और राज्य स्तर पर कई संस्थान शामिल हैं। भारत में पर्यावरण प्रशासन के लिए प्रमुख कानूनी और नीतिगत ढाँचे का परिचय निम्न प्रकार है :–

(i) **संवैधानिक प्रावधान :** भारत का संविधान, अनुच्छेद 48–ए और अनुच्छेद 51–ए (जी) के तहत, पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार को एक मौलिक कर्तव्य के रूप में बताता है।

(ii) पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 (ईपीए)

(iii) वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1981

(iv) जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1974

(v) वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980

(vi) वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972

(vii) पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (ईआईए) अधिसूचना, 1994

(viii) जैविक विविधता अधिनियम, 2002

(ix) राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2006

(x) राष्ट्रीय जल नीति, 2012

(xi) राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी) 2019

3. **कार्यान्वयन और प्रवर्तन :** केंद्रीय स्तर पर पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय पर्यावरण नीतियों और विनियमों की देखरेख करता है। केन्द्रीय स्तर पर प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड नियमों को लागू करता है, परमिट जारी करता है और अनुपालन की निगरानी करता है।

4. **निगरानी और रिपोर्टिंग :** केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड हवा और पानी की गुणवत्ता की निगरानी करता है, औद्योगिक उत्सर्जन को नियंत्रित करता है और उल्लंघनकर्ताओं के खिलाफ प्रवर्तन कार्रवाई करता है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय और तकनीकी सहायता प्रदान करता है।

5. **कानूनी कार्रवाइयां और दंड :** पर्यावरण कानूनों के उल्लंघन के परिणामस्वरूप जुर्माना, बंद करने के आदेश या अभियोजन सहित कानूनी कार्रवाई हो सकती है। कानूनी ढांचा नियामक अधिकारियों को गैर–अनुपालन के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई करने का अधिकार देता है।

6. **न्यायिक हस्तक्षेप :** राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण समेत अदालतें पर्यावरण प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे पर्यावरणीय विवादों को संबोधित करते हैं, नियामक निर्णयों की समीक्षा करते हैं और पर्यावरण कानूनों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए निर्देश जारी करते हैं।

7. **प्रदूषण नियंत्रण :** प्रशासन, प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए कई उपाय करता है।

(i) वायु प्रदुषण को कम करने के लिए केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड वायु गुणवत्ता को विनियमित और मॉनिटर करते हैं। वायु प्रदुषण को कम करने की मुख्य पहलों में राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम, इलेक्ट्रिक वाहनों को बढ़ावा देना और उद्योगों के लिए सख्त उत्सर्जन मानक शामिल हैं।

(ii) जल प्रदूषण को कम करने के लिए जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम लागू किया है। राष्ट्रीय जल मिशन के माध्यम से जल की गुणवत्ता को विनियमित और प्रबंधित किया जाता है। अन्य प्रयासों में स्वच्छ गंगा मिशन, प्रदूषण निगरानी और अपशिष्ट जल उपचार प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देना शामिल है। प्रशासन, उद्योगों और अन्य स्रोतों से प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए कदम उठाता है, जैसे कि प्रदूषण नियंत्रण उपकरण स्थापित करना, प्रदूषण मानकों को लागू करना और उल्लंघन करने वालों पर कार्रवाई करना। प्रशासन प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों का गठन करता है ताकि वे पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित कर सकें।

(iii) वनों की कटाई और जैव विविधता से होने वाली हानि को रोकने के लिए वन संरक्षण अधिनियम, राष्ट्रीय वनीकरण कार्यक्रम और वन्यजीव संरक्षण अधिनियम संरक्षण जैसे कानून प्रचलन में हैं। प्रोजेक्ट टाइगर और प्रोजेक्ट एलिफेंट जैसी मुहिमों का उद्देश्य विशिष्ट प्रजातियों और उनके आवासों की रक्षा करना है। राष्ट्रीय जैव विविधता कार्य योजना के माध्यम से जैव विविधता संरक्षण पर भी ध्यान दिया जाता है।

(iv) मृदा अपरदन एवं भूमि क्षरण को रोकने तथा सतत कृषि के लिए कई राष्ट्रीय मिशन और विभिन्न मृदा संरक्षण कार्यक्रम लागू किये गए हैं जिनका उद्देश्य स्थायी कृषि पद्धतियों, वनीकरण और वाटरशेड प्रबंधन को बढ़ावा देना है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड द्वारा किसानों को मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार के लिए जानकारी प्रदान की जाती है।

(v) अपशिष्ट निपटान और अपशिष्ट प्रबंधन के लिए ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियम, स्वच्छ भारत अभियान और अपशिष्ट–से–ऊर्जा परियोजनाओं जैसे अभियान क्रियान्वित हो रहे हैं।

(vi) जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, चरम मौसम की घटनाएं, बढ़ता तापमान और वर्षा के बदलते पैटर्न के अध्ययन पर जोर दिया जा रहा है। भारत पेरिस समझौते का हस्ताक्षरकर्ता है। प्रशासन, जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना, अनुकूलन और शमन के लिए रणनीतियों की रूपरेखा तैयार करता है। अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा देता है और ग्रीन इंडिया मिशन जैसी पहल स्थायी वानिकी और वनीकरण

पर ध्यान केंद्रित करती है।

(vii) भूजल के अत्यधिक उपयोग से जल स्तर प्रभावित होता है। भूजल (प्रबंधन और विनियमन) अधिनियम, वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम और वर्षा जल संचयन आदि कार्यक्रमों का उद्देश्य भूजल के उपयोग को विनियमित करना और टिकाऊ जल प्रबंधन प्रथाओं को बढ़ावा देना है।

(viii) अनियोजित शहरीकरण से प्राकृतिक आवासों का अतिक्रमण होता है जिससे जैव विविधता प्रभावित होती है और आपदाओं का खतरा बढ़ जाता है। शहरी नियोजन अभियान, स्मार्ट सिटी मिशन, और हरित और टिकाऊ शहरी विकास को प्रोत्साहित करने वाली नीतियों का उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण के साथ शहरी विकास को संतुलित करना है।

(ix) अन्य उद्देश्यों के लिए कृषि भूमि के रूपांतरण सहित भूमि उपयोग में परिवर्तन, और अस्थिर कृषि पद्धतियां पर्यावरण क्षरण में योगदान करती हैं।

(x) प्रशासन की विभिन्न कृषि नीतियां टिकाऊ कृषि पद्धतियों, जैविक खेती और मिट्टी संरक्षण को बढ़ावा देती हैं। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना जैसी पहल कृषि में पानी के कुशल उपयोग पर ध्यान केंद्रित करती है।

औद्योगिक गतिविधियाँ अपशिष्टों के निर्वहन, उत्सर्जन और अनुचित अपशिष्ट निपटान के माध्यम से प्रदूषण बढाने का कार्य करती हैं। जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, और खतरनाक और अन्य अपशिष्ट (प्रबंधन और सीमा पार आंदोलन) नियम औद्योगिक प्रदूषण को नियंत्रित करते हैं। प्रशासन के अन्य प्रयासों में स्वच्छ प्रौद्योगिकियों को अपनाना, पर्यावरणीय प्रभाव आकलन और कड़े प्रदूषण नियंत्रण उपाय शामिल हैं।

8. **पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर जागरूकता :** प्रशासन पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर पर्यावरण संरक्षण के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए अभियान चलाता है। जैसे कि स्कूलों में पर्यावरण शिक्षा, सार्वजनिक जागरूकता अभियान और पर्यावरण संरक्षण के महत्व को उजागर करना।

9. **पर्यावरण संबंधी अनुसंधान को बढ़ावा देना :** प्रशासन पर्यावरण संबंधी अनुसंधान को बढ़ावा देता है ताकि पर्यावरण की रक्षा के लिए बेहतर तरीके खोजे जा सकें। जैसे कि पर्यावरण प्रभाव आकलन (प्रशासन प्रस्तावित परियोजनाओं के पर्यावरण प्रभाव का मूल्यांकन करता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे पर्यावरण के लिए हानिकारक न हों), प्रदूषण नियंत्रण, और प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन।

10. **स्थानीय समुदायों को शामिल करना :** प्रशासन पर्यावरण संबंधी नीतियों को बनाने में स्थानीय समुदायों को शामिल करता है ताकि वे अपनी समस्याओं को बता सकें। प्रशासन नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित करता है। प्रशासन पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर जनता को जागरूक करता है और उन्हें पर्यावरण संरक्षण में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करता है।

11. **अंतरराष्ट्रीय सहयोग :** प्रशासन पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर अंतरराष्ट्रीय सहयोग प्रदान करता है एवं प्राप्त भी करता है। अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को संबोधित करने और सर्वोत्तम प्रथाओं को अपनाने के लिए वैश्विक पर्यावरण समझौतों में भाग लेता है। ताकि वैश्विक स्तर पर पर्यावरण की रक्षा की जा सके।

12. **सतत विकास को बढ़ावा देना :** प्रशासन सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए नीतियां बनाता है, जो

पर्यावरण और समाज के लिए फायदेमंद हो। प्रशासन पर्यावरण और विकास के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए काम करता है, ताकि आर्थिक विकास पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना हो सके। प्रशासन को पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए सतत विकास की अवधारणा को बढ़ावा देता है।

13. **प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण/प्रबंधन :** प्रशासक सरकारी संसाधनों का प्रभावी ढंग से प्रबंधन करते हैं। प्रशासन प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग और संरक्षण के लिए योजनाएं बनाता है और उन्हें लागू करता है। प्रशासन प्राकृतिक संसाधनों, जैसे कि वन, जल और वन्यजीवों के संरक्षण के लिए कदम उठाता है, जैसे कि संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना, अवैध शिकार और संसाधनों के दोहन को रोकना और सतत उपयोग को बढ़ावा देना।

14. **पर्यावरण प्रबंधन :** पर्यावरण प्रबंधन में ऐसी प्रक्रियाएं शामिल हैं जो अपने आस–पास के वातावरण पर मानवता के प्रभाव को कम करती हैं। इसका मुख्य उद्देश्य ऐसी परिस्थितियाँ बनाना और बनाए रखना है जिसमें समाज और प्रकृति एक साथ रह सकें। पर्यावरण प्रबंधन का तात्पर्य पर्यावरण के प्रबंधन से नहीं है, बल्कि आधुनिक मानव समाज के पर्यावरण के साथ संपर्क तथा उस पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रबंधन से है। पर्यावरण प्रबंधन और संरक्षण पर्यावरण की सुरक्षा की प्रक्रिया है। अपने पर्यावरण और उसमें मौजूद विभिन्न घटकों के साथ मनुष्यों की अंतःक्रिया की निगरानी करके हम पर्यावरण प्रबंधन के माध्यम से पर्यावरण पर मानवीय गतिविधियों के प्रभाव का मूल्यांकन कर सकते हैं। पर्यावरण प्रबंधन के निर्णय लेने में समावेशिता, पारदर्शिता और जवाबदेही पर जोर देकर प्रशासन यह सुनिश्चित करता है कि पर्यावरणीय लाभ विविध समुदायों के बीच समान रूप से साझा किए जा सकें, जिससे एक अधिक न्यायपूर्ण और टिकाऊ समाज को बढ़ावा मिलता रहे।

15. **पर्यावरण संबंधी विवादों / मुद्दों का समाधान :** प्रशासन पर्यावरण संबंधी मुद्दों, जैसे कि जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का समाधान करने के लिए कदम उठाता है। नवीकरणीय ऊर्जा पहल, वर्षा जल संचयन, समुदाय आधारित संरक्षण परियोजनाएँ, शहरी हरियाली और जैव विविधता संरक्षण, अपशिष्ट प्रबंधन पहल, पर्यावरण–अनुकूल कृषि पद्धतियाँ, ऑनलाइन पर्यावरण मंजूरी, हरित भवन मानक, ई–मोबिलिटी पहल, पर्यावरण शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रम, स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार, समावेशी नीतियां, जलवायु न्याय आदि विधियों के माध्यम से सतत विकास को बढ़ावा देते हुए पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

निष्कर्षतः संक्षेप में प्रशासन, पर्यावरण संरक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, और इसके लिए नीतियां बनाना, कानून लागू करना, प्रदूषण को नियंत्रित करना, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना, पर्यावरण जागरूकता बढ़ाना और पर्यावरण संबंधी मुद्दों का समाधान करना आवश्यक है। पर्यावरण शासन में नीति, नियम और मानदंड शामिल हैं जो मानव व्यवहार को नियंत्रित करते हैं और यह भी संबोधित करता है कि निर्णय कौन लेता है, निर्णय कैसे लिए जाते हैं और कैसे लागू किए जाते हैं, निर्णय लेने के लिए आवश्यक वैज्ञानिक जानकारी और कैसे जनता और प्रमुख हितधारक निर्णय लेने में भाग ले सकते हैं।

संदर्भ :–

1. ऐची "जैव विविधता लक्ष्य", जैव विविधता पर कन्वेंशन, मई 2018 से 17 सितम्बर 2020

2. अंडरडाल ए., "दीर्घकालिक पर्यावरण शासन की जटिलता और चुनौतियां", वैश्विक पर्यावरण परिवर्तन 2010
3. केबल वी . "वैश्वीकरण और वैश्विक शासन", चौथम हाउस पेपर्स, लंदन, 2009
4. "अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण शासन और संयुक्त राष्ट्र सुधार", लैटिन अमेरिका और कैरेबियन के पर्यावरण मंत्रियों के फॉरम की बैठक, यूएनईपी, 2008
5. "वैश्विक सम्मेलन और पर्यावरण शासन", इनफोरिसोर्सेज फोकस संख्या 2005
6. "अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण शासन पर नागरिक समाज का वक्तव्य", यूएनईपी गवर्निंग काउंसिल/जीएमईएफ का सातवां विशेष सत्र कार्टाजेना, कोलंबिया, फरवरी 2002
7. मेडोक्राफ्ट जेम्स "राजनीति और पैमाना : पर्यावरण शासन के लिए कुछ निहितार्थ" लैंडस्केप और शहरी नियोजन, 2002

मोबाइल न. 7597758504
ई मेल आई डी singhyadav004@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 100-102

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कोविड–19 का प्रभाव

बृजेश कुमार वर्मा, शोधार्थी
डॉ. राखी, सुपरवाईजर
भूगोल विभाग, आर. बी. एस. डिग्री कॉलेज, आगरा (डॉ. भीमराव अंबेडकर यूनिवर्सिटी, आगरा)

आपको ज्ञात है, कोरोना वायरस का जन्म एशिया महादेश **के चीन** का **वुहानः शहर पहली बार दिसंबर 2019 में कोविड-19** का मामला दर्ज किया गया था इसके अलावा, w h o (विश्व स्वास्थ्य संगठन) ने मार्च 2020 **में** इस बीमारी **के प्रकोप को महामारी घोषित** किया/ भारत **के** परिप्रेक्ष्य **में देखा जाये तो उसी दौरान** अमेरिका **के राष्ट्रपति** डॉनल्ड जॉन ट्रम्प का आगमन हुआ, और विजिट पूर्ण होने के उपरांत भारत **के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने लॉकडाउन लगाने** का एलान किया लेकिन इससे पहले इस प्रकोप **के कारन दुनिया भर** के कई देशों ने राष्ट्रव्यापी **लॉकडाउन की घोषणा की / तथा बही पर जनता कर्फ्यू 19** मार्च 2020 से प्रारम्भ किया गया, ताली या थाली 22 मार्च, दीया प्रोग्राम 3 मार्च 2020 रात्रि 9 बजकर 9 मिनट पर तथा प्रथम **लॉकडाउन 25** मार्च से 14 अप्रैल तक द्वितीय **लॉकडाउन 15** अप्रैल से 3 मई (19 दिन का) तृतीय **लॉकडाउन 4** मई (14 दिन तक) लगाया गया प्रक्रिया शनै शनै चलती रही और मील का पत्थर साबित हुआ/

मार्च 2020 से प्रारम्भ किया गया, ताली या थाली 22 मार्च, दीया प्रोग्राम 3 मार्च 2020 रात्रि 9 बजकर 9 मिनट पर तथा प्रथम **लॉकडाउन 25** मार्च से 14 अप्रैल तक द्वितीय **लॉकडाउन 15** अप्रैल से 3 मई (19 दिन का) तृतीय **लॉकडाउन 4** मई (14 दिन तक) लगाया गया प्रक्रिया शनै शनै चलती रही और मील का पत्थर साबित हुआ/

कोविड-19 का एकल विषय अध्ययन किया जाए तो उत्तर प्रदेश सरकार **ने 8** अप्रैल 2021 से जिन जिलों **में 500** से ज्यादा सक्रीय पाये जाए तो बहा पर रात्रि कर्फ्यू लगाया जाए , 17 अप्रैल 2021 से पुरे देश **में रविवार** का **लॉकडाउन** लगाया गया / 20 अप्रैल 2021 **लॉकडाउन** से एक दिन बड़ा फिर 6 मई मई बड़ा तथा बही पर 5 मई 2021 से बड़ा **कर** 10 मई तक कर दीया गया, लगातार 9 मई 2021 से **लॉकडाउन** बड़ाकर 17 मई कर दीया गया, कृत लगातार 15 मई से 31 मई 2021 तक **लॉकडाउन** बड़ाकर दीया गया/

कोरोना वायरस के लक्षण

कोरोना वायरस या **कोविड-19 के लक्षण ऐसी चीज हैं जिसके बारे में हर कोई जानना चाहता था अगर आपको निम्न लक्षण दिख रहे है तो आपको करना वायरस हो सकता है जैसे बुखार खासी ठंड लगना सास लेने में कठिनाई थकान सिरदर्द शरीर में दर्द गंध या स्वाद की नई हानि भीड़ दस्त नाक ब गला खराब होना**

कोविड-19 का प्रभाव

कोविड 19 के प्रभाव निम्न है/

❖ स्वास्थ्य पर प्रभाव

- कोविड 19 के कारण लोगो को सास लेने में तकलीफ बुखार काशी सर्दी जैसे लक्षण हो सकते है कुछ लोगों को बीमारी गम्भीर हो सकती है और उन्हें अस्पताल में भर्ती करना पड़ सकता है
- कोविड 19 से ठीक होने के बाद भी कुछ लोगों में लंबे समय तक थकान हो सकती है
- नए वेरिएंट के कारण बार बार संक्रमण बढ़ता रहा
- टीका करण अभियानों से संक्रमण की रोकथाम में मदद मिलि/
- जहां तक ब्राजील देश ने तो भारत को बजरंगबली की संजीवनी बूटी से उपमा की/
- कोविड 19 की वैक्सीन बनाकर मिल का पत्थर सबित किया /
- लाखों लोगों की जान गई और स्वास्थ्य सेवाओ पर दबाव पड़ा /

❖ अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

- **लॉकडाउन के कारण कई व्यवसाय बंद हो गई जिससे बेरोज़गारी तीव्रता से बढ़ी /**
- आम जनता का पलायन नगरों से ग्रामीण की तरफ तेजी से हुआ/
- अर्थव्यवस्था की बेकबून शीघ्र ही टूटती जा रही थी/
- पर्यटन विभाजन और मनोरंजन उद्योग को भारी नुकसान हुआ /
- ई कम और डिजिटल व्यवसायों को बढ़ावा मिला /
- इस महामारी ने हमारी समाज में असमानता को और बढ़ाया /

❖ शिक्षा पर प्रभाव

- **लॉकडाउन लगाने के उपरांत छात्रों के चाहे वे प्राथमिक माध्यमिक महाविद्यालय की परीक्षा पर लगाम लगा दी/**
- स्कूल और कालेज बंद होने से ऑनलाइन शिक्षा को अपनाना पड़ा/
- सामान्यत छात्रों की शिक्षा बाधित हुई खासकर ग्रामीड छात्रों में जहां इंटरनेट की सुविधा सीमित थी/

• सामाजिक प्रभाव

- **इस महामारी ने हमारे समाज में असमानता को और बढ़ाया है/**
- **डिजिटल संचार माध्यम का अधिक उपयोग हुआ /**
- **पारिवारिक रिश्तों और मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा/**

- **सामाजिक दूरी और ऑनलाइन के कारण लोगो में अलगाव बड़ा/**
- **मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव**
- कोविड 19 से अकेलापन तनाव चिंता
- मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की माँग बढ़ी

• पर्यावरण पर प्रभाव

- **लॉकडाउन के दौरान b वायु प्रदूषण में कमी आई/**
- **लॉकडाउन** लगने से चंडीगढ़ से ग्लेशियर का अनुभव कर सकते थे/
- वन्यजीवों और प्राकृतिक स्थिति को तंत्र को कुछ हद तक राहत मिली

• सावधानिया

- आज भी आम जनता को अपने आप आपको सुरक्षित रखने के लिए कुछ सावधानियां रखनी चाहिए
- आप जब भी घर से बाहर निम्ले तो अपने नाक और मुंह को ढकने वाला मार्क्स पहने।
- आज भी अपने हाथ अच्छी तरह से धोए और साफ करें।
- स्वयं को स्वच्छ रखे।
- कुछ भी ठंडा खाने या पीने से बचे।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए पौष्टिक आहार ले।
- सभी प्रकार के प्रत्यक्ष शारीरिक संकल्प से बचे।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि दुनिया भर की सरकार और स्वास्थ्य संगठन कोरोना वायरस के प्रकोप और कोरोना वायरस के लक्षणों को सीमित करने के लिए काम कर रहे है। इसी तरह हमारे स्वास्थ्य सेवा पेशावर दूसरों के जीवन की रक्षा करने के लिए विभिन्न कठिनाइयों का सामना कर रहे थे तथा हम सभी को मिलाकर एक साथ मिलकर कार्य करना चाहिए। जिससे कोविद-19 जैसी महामारी से बचाव कर सके। और अपनी आम जनता को कठिनाइयों से निकल सके।

संदर्भ - अमर उजाला संपादिया योजना संपादकीय योजना वह कुरुक्षेत्र एवं सोशल मीडिया

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 103-106

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Artificial Intelligence and its Impact on Environment Sustainability

Dr. Rajesh Agarwal

Professor, Department of Sociology, K. R. (PG) College, Mathura.

The environment is the totality of physical and biotic elements that interact with and upon an organism and in doing so they determine its structure and survival. Evidently, as environment has a determining impact on the organisms and ecological communities it becomes essential to develop it in a sustainable way. Due to this the concept of sustainable development has gained prevalence and it has been articulated in the ***Brundtland Report*** (1987) published by the United Nations as "*development that meets the needs of the present without compromising the ability of the future generations to meet their own needs.*"

For achieving the goal sustainable development artificial intelligence (AI) can prove to be a facilitator because of its capability to better optimize resource usages and improving decision-making. Here artificial intelligence can be defined as all those systems of information-processing technologies that integrate models and algorithms in order to produce a capacity to understand and to perform cognitive tasks leading to outcomes such as prediction and more informed decision-making in material and virtual environments. It has two facets- software and hardware. The software facet involves data collection and model development, training, validation, deployment, inference, maintenance and disposal. The hardware facet involves the production of computer chips and the construction of data centre's, essential for the training, operations and, inference.

The big benefit of artificial intelligence is that it better detects anomalies and similarities patterns in data and couples this data with existent/ available knowledge to accurately predict future outcomes. That makes artificial intelligence invaluable in reference to environment- monitoring and helping individuals, communities, governments and, businesses in making more environment friendly choices in terms of AI- based technologies pertaining to weather prediction, water management and waste monitoring. The ***United Nations Environment Program*** actually uses such AI- based technologies to detect the emission of environment polluting/ greenhouse gas- methane- from oil and gas installations.

The positive contribution that artificial intelligence has for environmental sustainability

Artificial intelligence has a substantial potential to positively contribute towards environmental sustainability and it can be summarized in the following terms:

1- ***Optimized energy usage***: Artificial intelligence (AI) can be used to optimize energy consumption in buildings, factories, and transportation systems, leading to reduced energy consumption. Reduction in the consumption of energy produced by fossil fuel

based power generating installations can consequently reduce environment polluting gaseous emissions.

2- *Renewable energy management:* AI can help manage and integrate renewable energy sources like solar and wind power into existent energy systems.
3- *Environment monitoring:* AI-powered systems can monitor environmental conditions like air quality, water quality, and deforestation, providing valuable data for environment conservation efforts.
4- *Development of environment friendly materials*: AI can assist in designing new, environmentally friendly materials with improved environment friendly properties.

The negative impact that artificial intelligence can have on environmental sustainability

However, artificial intelligence can affect environmental sustainability in a negative manner too. The primary reason underlying this is that existing frameworks and legislation often fall short of providing comprehensive guidance to companies for assessing and integrating AI-related environment sustainability measures with AI- powered technologies. This results in artificial intelligence presenting the dilemma of being both –

a) The enabler prompting novel technologies and programs lessening environmental risks
b) The disabler risking a further acceleration in environmental harm

If consideration is focused on the environment disabler aspect of AI, the potential environmental harm that artificial intelligence can cause may be summarized as the following:

1- ***Generation of e- waste***: The use of AI requires specialized hardware like servers, GPU etc. The production and the disposal of these instrumentalities entail extraction of resource materials, manufacturing hardware and, the generation of electronic waste. In this context, in order to obtain an AI resource like micro chips mining of rare earth elements is requisite but such mining can have a detrimental environmental impact if such extractions are conducted in environmentally destructive ways. Likewise, as almost all manufacturing processes still rely heavily upon non- renewable power resources which produce substantial Greenhouse Gas (GHG) emissions, this also becomes a cause for apprehension. Even after exhausting the life cycle of an AI instrumentality, the disposable of such instrumentality, in the form of e- waste, is often environmentally unsustainable as it contains hazardous substances like mercury and lead.
2- ***Excessive energy consumption***: Due to their computational complexity, AI- powered models require substantial power input. This demand too, results in spurring the emission of planet-warming greenhouse gases. As per the International **Energy Agency (UNEP)** a request made through *ChatGPT*, an AI-based virtual assistant consumes ten times the electricity compared to a similar request made on *Google Search*.
3- ***Excessive water usage:*** Increasing use of AI entails the establishment of large Data-Centre's in order to utilize AI models and also for providing hands- on training. These data- centre's often require large cooling systems that utilize water in large quantities to avoid overheating of the AI system for ensuring sustained performance. This is problematic especially when we consider that approximately a quarter of the human population on this planet lack access to clean water and water based sanitation.

Coordinating AI and environmental protection

AI based devices consume energy and natural resources (like water) at a large scale. Data-centers around the world already consume more electricity than whole countries such as Italy, Spain, Taiwan and, Australia etc. These requirements will only increase with the proliferation of data- centers and the development of newer AI models and programs. A recently published ***Bloomberg analysis*** estimated that power consumption by AI Data Centers around the world is expected to reach up to 1580 terawatt-hours by 2034, which is as much electricity as all of India consumes. Such power consumption would entail not just additional burden upon the natural resources (like coal for non- renewable energy) but would also prompt higher emission of green- house gases from coal-fired power plants.
Even after providing for the energy requirements of AI devices, there still remains the question of the need for providing adequate cooling for the Hardware, which is reliant on water, much of it of drinking quality. Quenching this cooling requirement is estimated to need over a billion liters of water per day.
Thus, strategies and methods that make AI supply- chain more environment friendly or efficient have to be devised rapidly. These strategies might prioritize

1- The use of renewable energy sources like water, solar and, wind energy for power input, optimizing the energy efficiency of AI systems and, developing more water efficient cooling technologies for Data- Centers.
2- The installation of larger AI models on more energy efficient edge- devices like smart phones, smart speakers, and smart watches and, other wearables.

Besides these, the UN Environment Programme (UNEP) report in collaboration with the International Science Council ***"Navigating New Horizons- A Global Foresight Report on Planetary Health and Human Wellbeing (20224)"*** recommends some action pathways for achieving coordination between AI and environmental protection. These are:

1- Countries can establish standardized procedures for measuring the environmental impact of AI
2- With the support of UNEP, governments can develop regulations that require companies to disclose the direct environmental consequences of AI-based products and services.
3- Tech based companies can make AI algorithms more efficient for reducing their demand for energy, while simultaneously recycling water and reusing components where feasible.
4- Countries can encourage companies to make their data centers more environment friendly by promoting the use of renewable energy and by offsetting their carbon emissions.
5- Countries can integrate their AI-related policies into their broader environmental regulations for lowering the environmental impact profile of AI.

The impact of Artificial Intelligence projects in India

Today India is one of the fastest growing economies in the world and because of this there is an increasing interplay between economic growth, technological innovation and, the need for environmental sustainability. Realizing this in accordance with the objectives of the ***Jal Jeevan Mission*** to furnish piped water to rural households by 2024, the ***Union Jal Shakti Ministry*** has introduced sensor-based ***Internet of Things (IoT) devices*** to monitor drinking water supply in over six lakh villages. Starting from September 2020, in collaboration with the ***Tata Community Initiatives Trust*** (TCIT), this mission has completed ***pilot projects***

pertaining to the utilization of sensors to measure water quantity, quality, pressure, and sustainability in remote villages of regions with diverse climates and water sources spread across five states, for enhancing operational efficiency and cost-effectiveness. Under these projects real-time monitoring has enabled timely remedial interventions to address distribution issues such as outages and leakages.

Recognizing the efficacy of AI based early warning systems in mitigating fatalities and economic losses, the ***Google's Flood Prediction*** Initiative also employs artificial intelligence to provide precise, real-time flood predictions and notifications to potential areas. By integrating AI and physics-based modeling, Google develops precise and scalable inundation models, enhancing forecasting accuracy for timely interventions. In 2018, in collaboration with the ***Central Water Commission***, Google piloted a project in ***Bihar*** which accessed elevation maps and real-time river measurements to simulate water behavior across flood plains. The inventive morphological flooding model thus created integrated principles based upon physics with AI cognitive techniques and improved accuracy by 3% compared to traditional models. This initiative has since been expanded nationwide and aims at covering 200 million people across 250,000 sq km by 2020.

Conclusion

It is quite difficult to exactly predict how AI-based applications would affect the planetary environment in future. But there are indications towards a rising awareness towards coordinating AI development with environmental sustainability. For example, More than 190 countries have adopted a series of non – binding recommendations on the ethical use of AI, which covers the environment. Along with this, both the European Union and the United States of America have introduced legislation to temper the environmental impact of AI. The answer to AI as an enabler of environmental sustainability truly lies in inculcating sustainable living practices by reducing consumption, recycling, adopting renewable energy sources, and minimizing e- waste generation.

References

1- "Our Common Future" (Brundtland Report), World Commission on Environment and Development, 1987
2- "AI needs so much power, it's making yours worse". Leonardo Nicoletti, Naureen Malik & Andre Tartar, Bloomberg, 2024
3- "Navigating New Horizons- A Global Foresight Report on Planetary Health and Human Wellbeing (20224)" UN Environment Programme, 2024
4- Economic Survey, Government of India, New Delhi, 2005

e-mail: agarwalrajesh475@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 107-113

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कोरोना महामारी दौरान – बाजार और समाज एवं पर्यावरण का नया संकट

डॉ. कृष्ण भगवान दुबे

विभागाध्यक्ष, श्री गुरू माधवानन्द प्रतिभा महाविद्यालय, रूपवास, भरतपुर, राजस्थान।

कोविड-19 (कोरोना) एक वैश्विक महामारी है। इसके संक्रमण ने दुनिया की तस्वीर ही बदल दी है। जैसा कि विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने ''कोरोना'' वायरस को महामारी घोषित कर दिया है। ''कोरोना'' वायरस बहुत सूक्ष्म लेकिन प्रभावी वायरस है। ''कोरोना'' वायरस मानव के बाल की तुलना में 900 गुना छोटा है।'' [1] लेकिन कोरोना का संक्रमण दुनियाभर में तेजी से फैल रहा है। ''कोरोना'' वायरस (सी.ओ.वी.) का संबंध वायरस के ऐसे परिवार से है जिसके संक्रमण से जुखाम से लेकर सांस लेने में तकलीफ जैसी समस्या हो सकती है।

''इस वायरस का संक्रमण दिसम्बर में 'चीन' के वुहान से शुरू हुआ था। डब्लू.एच.ओ. के मुताबिक बुखार, खांसी, सांस लेने में तकलीफ इसके लक्षण हैं। अब तक यह दुनिया में इस कदर फैल गया है। कि इस वायरस को फैलने से रोकने वाली कोई वैक्सीन (टीका) नहीं बना है।'' [2] (WHO) ने मार्च 2020 में इसे वैश्विक महामारी घोषित कर दिया था। इस महामारी के कारण वैश्विकृत दुनिया की एक दूसरे के साथ मजबूती से जुड़ी हुई प्रणालियां पूरी तरह से परिवर्तित हो गयी हैं।

इस नोवल ''कोरोना वायरस'' के प्रकोप पर काबू पाने के प्रयास के लिए प्रत्येक देशों की सरकारों ने आने-जाने तथा सामाजिक मेलजोल पर बंदिशे लगा दी जिसके कारण दुनिया की 7.8 विलियन जनता में से एक तिहाई से अधिक आबादी इस समय इस महामारी के कारण एक तरह से अपने घरों में बंद होने को मजबूर है। यह माना जा रहा है कि डेढ़ से दो साल तक संसार किसी न किसी रूप में कोविड-19 तात्कालिक खतरे से ही जूझती रहेगी।

संसार के कई हिस्सों से सीमायें बंद कर दी गई, हवाई अड्डे, होटल तथा व्यवसाय बंद कर दिये गये और शैक्षणिक संस्थान बंद कर दी गयी। इस महामारी ''कोरोना'' से बचने के लिए।

''कोरोना'' वायरस का असर क्या भारतीय बाजार पर पड़ेगा-

''कोरोना'' जैसी महामारी को देखा जाये तो हमारे विश्व कि अर्थव्यवस्था चरमरा सी गई। सभी जगह पर इस महामारी से बचने के लिए 'लॉकडाउन' जैसे निर्णय सरकार को लेने पड़े। निर्णय लेना वाजिव था क्योंकि उसका एक ही कारण था कि अपने देश की जनता को इस महामारी से बचाया जा सके। इस अभूतपूर्व उपाय कुछ समाज के सामाजिक ताने-बाने को तोड़ रहे हैं और व्यापक पैमाने पर भुखमरी बढ़ रही है।

कोविड-19 सही दिशा में सही कदम 'कोरोना वायरस के संक्रमण को रोकने के लिए पूरे देश में 'लॉकडाउन' के अमल में आने के दो दिन के भीतर (पहला लॉकडाउन 24 मार्च 2020 को लगा) केन्द्र सरकार ने सर्वाधिक वंचितों और गरीबों के लिए 1.7 लाख करोड़ रुपये के गरीब कल्याण राहत कोष का जो एलान किया। वह इस अभूतपूर्व संकट के समय में सही दिशा में उठाया गया कदम है। दरअसल प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी'' ने 24 मार्च 2020 को जब 21 दिनों के लिए लॉकडाउन की घोषणा की थी, उसके बाद अनेक आर्थिक विश्लेषण गैर सरकारी संगठन, मीडिया और विपक्षी दलों की ओर से आशंकाएं जताई जा रही थी कि इससे गरीबों और कामगारों के लिए मुश्किलें पैदा हो जाएगी। इसे गरीबों पर दोहरी मार की तरह देखा जा रहा था, एक तो 'कोरोना' के बढ़ते संक्रमण की आशंका और ''दूसरा रोजी रोटी पर छाया का संकट।''

''कोरोना वायरस'' पर किन सेक्टरों पर सबसे ज्यादा असर पड़ा?

'दवा कंपनियाँ - ये केवल फार्मा कंपनियों की आमदनी का मामला नहीं है किसी भी बुरे प्रभाव की एक मानवीय कीमत भी होती है, मेडिकल स्टोर में दवाओं की कमी हो रही है तमाम बड़े शहरों में केमिस्ट सैनिटाइजर और मास्क के ऑर्डर तो दे रहे हैं लेकिन उन्हें एक हफ्ते से माल की डिलिवरी नहीं मिल पा रही है।

अब जब बहुत से भारतीय अपने यहां दवाएं, सैनिटाइजर और मास्क जमा कर रहे हैं, तो ये सामान अधिकतम खुदरा मूल्य से भी अधिक दाम पर बिक रहे हैं।

पर्यटन उद्योग :- कोरोना वायरस के प्रकोप के चलते जब से आने-जाने में पाबंदियां लगी है, एहतियात के लिए दिशा-निर्देश और एडवाइजरी जारी की गई है, मैंने अपनी जिंदगी में इससे बड़ी मेडिकल

इमरजेंसी अब तक नहीं देखी, इसके आगे सार्स, मार्स और स्वाइन फ्लू का संकट कुछ भी नहीं है, जितना बुरा असर कोरोना वायरस का हुआ है, उतना किसी बीमारी के प्रकोप से नहीं हुआ, बाहर जाने वाले कम से कम 20 प्रतिशत टूर या तो कैंसिल कर दिए गए हैं या फिर आगे के लिए टाल दिए गए हैं, आने वाले तीन महीनों में 30 फीसद कॉरपोरेट यात्राओं पर इसका पड़ना तय है क्योंकि सरकार हर रोज नई नीति की घोषणा कर रही है और हमें पता नहीं है कि आगे न जाने कितने और देशों के नागरिकों के भारत आने पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

ऑटो मोबाइल उद्योग :- भारत में ऑटो उद्योग पहले से ही आर्थिक सुस्ती का शिकार था, अब चीन में मंदी के कारण भारत के ऑटो उद्योग को भी कल-पुर्जा की किल्लत हो रही है। ऑटो उद्योग की कई बड़ी कंपनियों ने कहा है कि उन्हें कल-पुर्जे की आपूर्ति में परेशानी उठानी पड़ रही है। टाटा मोटर्स, टी. वी.एस मोटर्स, हीरो मोटो कॉर्प और बजाज ऑटो ने कहा है कि वो ''कोरोना'' वायरस के प्रभावों पर अपनी नजर बनाए हुए हैं। न जाने कब तक इस वायरस की मार झेलनी पड़ेगी।

जूलरी कारोबार पर प्रभाव :- एक और उद्योग जो ''कोरोना'' वायरस के प्रकोप से प्रभावित है, वो है जवाहरात और जूलरी का कारोबार। ''कोरोना'' वायरस से इस सेक्टर को करीब सवा अरब डॉलर का नुकसान होने की आशंका है।

आर्थिक मंदी से उभरने के लिए सरकार के कदम -

''कोरोना'' वायरस जैसी महामारी से जहां पूरा देश आर्थिक संकटों से गुजर रहा है। वहीं सरकार द्वारा अपने देश की 130 करोड़ जनता की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए भी चिंतन है। क्योंकि इस महामारी के चलते न तो कोई व्यवसाय ही चल सका न ही सरकारी कार्य चल सके। जिनके पास रोटी रोजगार था, वह भी चला गया, चारों ओर जनता त्राहि-त्राहि करने लगी। ऐसी स्थिति को सही आर्थिक स्थिति पर लाना सरकार के लिए एक चुनौती थी। फिर भी सरकार अपने प्रयासों से प्रवासी रोजगार मजदूर को ऐसी महामारी में भुखमरी से कैसे बचाएं, उसके लिए उसने अपने राहत कोष से कुछ इस प्रकार की योजना बनाई कि प्रवासी बेरोजगार मजदूरों को अपने भरण-पोषण कर सकें तथा जनता भी इस महामारी से बच सके। सरकार द्वारा निम्न लाभ जनता को इस सामाजिक महामारी से बचने को दिए गए -

1. भारत देश की 80 करोड़ गरीब जनता को तीन माह तक निशुल्क अनाज की व्यवस्था की गई।

2. मनरेगा की मजदूरी में बढ़ोतरी के साथ ही।

3. दो हजार रुपए की किसान सम्मान निधि किसानों को प्रदान किया गया।

4. महिलाओं के साथ ही बुजुर्गों और दिव्यांगों का अलग से ख्याल रखा गया।

5. इस ''लॉकडाउन'' के चलते तीन महीने तक सरकार ऐसे प्रतिष्ठान के कर्मचारियों और नियोक्ताओं, दोनों की ओर से पी.एफ. में अंशदान करेगी।

संकट का सामना :- ''कोरोना वायरस'' महामारी के इस संकट की घड़ी में सभी देशों को मिलकर सामना करना पड़ेगा जैसा कि हमारे देश के राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद ने कहा, ''प्राकृति के संदेश को समझें-शक्तिशाली मानवजाति आज 'कोरोना वायरस' के सामने लाचार है, लेकिन हम सब वर्तमान संकट से शीघ्रता शीघ्र बाहर आऐंगे और एक राष्ट्र के रूप में अभूतपूर्व शक्ति के साथ आगे बढ़ेंगे।''[3] ऐसी स्थिति को देखते हुए हमारे देश के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने कहा, ''हर भारतवासी का सजग रहना जरूरी है। अभी तक विज्ञान इस महामारी से बचने को कोई निश्चित उपाय नहीं बता पाया है, न ही कोई वैक्सीन (टीका) ही बन पाया है, इसलिए हमारी चिंता बढ़नी स्वाभाविक है।''[4] जैसा कि ''संयुक्त राष्ट्र की ट्रेड रिपोर्ट बताती है कि कोरोना से विकासशील देशों पर पड़ने वाला असर ज्यादा भयावह होगा और उन्हें विकसित देशों की मदद की जरूरत है, लेकिन मौजूदा स्थिति में यह मदद भी आसान नहीं होगी।''[5]

<u>कोरोना महामारी समाज का नया संकट -</u>

''कोरोना वायरस'' महामारी समाज का नया संकट के रूप में उभर के सामने आयी है क्योंकि देखा जा रहा है कि जब भी देश पर किसी भी प्रकार का संकट आता है तो उसका सर्वप्रथम प्रभाव समाज पर दिखाई देता है। समाज जिसमें कि अपनी स्थिति को कायम रखने में सफल भी हो जाता है कहीं-कहीं उसे असफलताओं का भी सामना करना पड़ता है।

अगर हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखते हैं कि 'कोरोना' जैसी महामारी कोई नई नहीं है। हमारे देश में पहले भी कई महामारी आ चुकी है। महामारियों के फैलने के इतिहास पर नजर दौड़ाई जाए तो पता

चलता है कि हर सौ साल बाद नई महामारी का जन्म हुआ है। इन महामारियों के पीछे वैज्ञानिकों के भी कई तरह के तर्क हैं।

वर्ष ''1720'' में 'मार्सिले का प्लेग' नामक वायरस ने पूरे विश्व में लाखों लोगों को मौत की नींद सुला दिया था। फ्रांस के मार्सिले शहर में ही इस महामारी ने करीब एक लाख यानी उस दौरान विश्व की 20 फीसदी जनता को मौत के मुंह में धकेल दिया।

वर्ष ''1820'' में 'द फर्स्ट कॉलरा' (हैजा) जैसी महामारी ने जन्म लिया। यह बीमारी सबसे पहले थाईलैंड, इंडोनेशिया और फिलीपींस में आग की तरह फैल गई। कॉलरा से अकेले ही जावा द्वीप पर 100,000 लोगों की मौत हो गई। 1910 और 1911 के बीच भारत में यह महामारी आ गई। यह बीमारी सबसे पहले बांग्लादेश से शुरू हुई थी।

वर्ष ''1920'' ''स्पेनिश फ्लू'' यह अपनी सदी का सबसे खतरनाक वायरस था जिसने 1919 में दुनिया की करीब एक तिहाई आबादी को सदा के लिए खामोश कर दिया था। यह वायरस सबसे पहले यूरोप, यूनाइटेड स्टेट्स और एशिया के कुछ हिस्सों में फैला जिसने करीब 2 करोड़ से 5 करोड़ लोगों की जिंदगी खत्म कर दी थी। अकेले भारत में ही इस महामारी से करीब दो करोड़ लोगों की जान चली गई थी।

वर्ष ''2020'' कोरोना वायरस (कोविड-19) यह अपनी सदी का सबसे खतरनाक वायरस है जिसने पूरे देशों को हिला दिया है। यह वायरस सर्वप्रथम चीन के 'वुहान' शहर से फैला। उसने यह वायरस पूरे विश्व में फैला दिया। आज हमारे देश के साथ-साथ पूरा विश्व इससे लड़ाई लड़ रहा है। इस महामारी ने कई लाख लोगों को मृत्यु के आघोष में ले लिया। ''कोरोना वायरस'' महामारी समाज के लिए कोई नया संकट नहीं है। पूर्व में भी इस प्रकार की महामारी आती रही है। परन्तु देखा जाए तो वर्तमान महामारी 'कोरोना' के विषय में हमारे देश के विद्वान जनों ने पूर्व में ही इस प्रकार की घोषणा कर दी थी - नीमच पंचांग के अनुसार-

''आतंक द्वन्द हिंसा गति, तृष्णा तत्र अपार। राज तंत्र नूतन गति, चकित होय संसार।।
नीति राज नव चक्र को मुद्रा पंथ प्रभार। जन मानस ले आपदा ऋतु प्रकोप संसार।।''[6]

हमारी संस्कृति को जो लोग ढ़ोंग बताते हैं, पूजा-पाठ में दिखाया करने वाला। ध्यान से पढ़ें जिस महामारी से पूरा विश्व पीड़ित है, हमारे पंचांग ने पहले ही लिख दिया था। ''धार्मिक हिंसा तथा युद्ध जनित परिस्थितियां होंगी। धार्मिक विषयों पर तीव्र मतभेद होगा। विश्व के शेयर बाजारों में अनिश्चितता का वातावरण रहेगा। किसी विषाणु जनित महामारी का प्रकोप होगा। विश्व में बेरोजगारी में वृद्धि होगी।''[7] इसके साथ ही इस 'कोरोना' जैसी सामाजिक महामारी के विषय में भी प्राचीन कालीन ग्रंथ में ''तुलसीदास'' द्वारा 'रामचरितमानस' में लिख दिया गया था-

''सब के निंदा से जड़ कर ही, ते चमगादुर होइ अवतरही।
सुनहु तात अब मानस रोगा, जिन्हें ते दुख पावहि सब लोगा।।[8]
(जो मूर्ख मनुष्य सबकी निंदा करते हैं वे चमगादड़ होकर जन्म लेते हैं।
हे तात अब मानस-रोग सुनिये, जिनसे सब लोग दुख पाया करते हैं।)
''एक व्याधि बस नर मरहीं''।[9] (एक ही रोग के वश होकर मनुष्य मर जाते हैं।)

कोरोना महामारी और पर्यावरण संकट :- कोरोना महामारी के दौरान महामारी एवं पर्यावरण के बीच संबंधों पर वैश्विक ध्यान आकर्षित किया है। मानव गतिविधियाँ जैसे कि वनों की कटाई, भूमि उपयोग परिवर्तन आदि वन्यजीव व्यापार, संक्रमण रोगों के उद्भव और प्रसार के लिए नवीन परिस्थितियों ने जन्म दे दिया।

लॉकडाउन के कारण सफाई कर्मियों का आना-जाना बंद हो गया। गलियों में गंदगी के अंबार लग गए और कूड़ा-कचरा कहीं गलियों में या उनके पास ही सड़ने लगा। इसके कारण अनेक संक्रमण रोग उत्पन्न हो गए। कोरोना के दौरान यातायात, औद्योगिकीकरण की कमी ने जलवायु परिवर्तन जैसी समस्या को जन्म दे दिया। इससे पर्यावरण में विशेष परिवर्तन देखने को मिला। इसका प्रभाव मानव स्वास्थ्य के साथ-साथ वन्य जीवों पर भी देखा गया है क्योंकि देखा गया है कि जंगली जीव अपने आवास क्षेत्रों को छोड़कर भोजन की तलाश में मानव बसाव क्षेत्रों की ओर अपना रूख करने लगे हैं। इसको देखते हुए ऐसा लगता है कि 'कोरोना' महामारी का पर्यावरण पर जहाँ सकारात्मक प्रभाव पड़ा है तो वहीं नकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिला है।

निष्कर्ष - जैसा कि देखने को मिलता है कि प्राचीन समय में भी इस प्रकार की महामारी हुआ करती थी। परन्तु उसके लिए व्यक्ति को ही चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। जब वह ऐसी घातक बीमारियों से बच सका। पर आज के इस वर्तमान काल की महामारी ''कोरोना वायरस'' से हमें कुछ सावधानियों के साथ इस जंग में लंबे समय तक लड़नी पड़ेगी। क्योंकि जैसा कि आज की जो गंभीर परिस्थिति है, उसको देखते हुए हम इससे अपने द्वारा कुछ सावधानियों को अपना कर अपने आप को समाज को बचा सकते हैं। जैसे सोशल डिस्टेंसिंग, मास्क का प्रयोग, सैनिटाइजर का प्रयोग करके इससे बचा जा सकता है और आर्थिक संकट से उभरने के लिए हमें मेहनत के साथ एक-दूसरे को सहयोग पहुंचाकर, उसकी मदद करके इस महामारी कोरोना काल को मात दे सकते हैं।

➢ **ग्रन्थसूची**

1. Google रिपोर्ट - Time 10:47 - webdunia-
2. Google रिपोर्ट - Time 10:47 - webdunia-
3. ''अमर उजाला'' दैनिक समाचार पत्र, पृ0-8, दिनांक 20 मार्च 2020
4. ''हिंदुस्तान'' दैनिक समाचार पत्र, पृ0 -1, दिनांक 20 मार्च 2020
5. ''अमर उजाला'' दैनिक समाचार पत्र, पृद्ध-6, दिनांक - 02 अप्रैल 2020
6. ''नीमच पंचांग'', मध्यप्रदेश, पृ0-7
7. विश्व तथा भारत का फल पंचांग, पृ0-7
8. ''तुलसीदास'' कृत ''रामचरित मानस'' (उत्तरकाण्ड), पृ0-958
9. ''तुलसीदास'' कृत ''रामचरित मानस'' (उत्तरकाण्ड), दोहा सं0 (121क) पृ0-958

प्रस्तुतकर्ता

डॉ0 कृष्ण भगवान दुबे
(विभागाध्यक्ष)
श्री गुरु माधवानन्द प्रतिमा महाविद्यालय,
रूपवास, भरतपुर (राजस्थान)
ई.मेल - krishanraj1234pandit@gmail.com
मो0 न0- 9012736981
पता- 62/222, हरीभवन, नगला काछियान,
आगरा कैन्ट- 282001, आगरा (उ0प्र0)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 114-122

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण के विभिन्न आयामों का अध्ययन

जगत सिंह

सहायक अध्यापक, प्राथमिक विद्यालय, चेतन नगला, उसावाँ, जनपद बदायूँ।

साराँश (ABSTRACT) :–

पर्यावरण का अध्ययन हमारे लिए आवश्यक है; क्योंकि पर्यावरण से ही हमें प्राणवायु अर्थात् ऑक्सीजन की अनवरत आपूर्ति होती है तथा शुद्धीकरण भी होता है। शुद्ध जल व शुद्ध ऊर्जा भी प्राप्त होती है।

, इस आलेख में आपको पर्यावरण की परिभाषा एवं पर्यावरण का संक्षेप में परिचय कराया गया। पर्यावरण के विभिन्न प्रकारों के बारे में भी बताया गया है। तत्पश्चात् पर्यावरण के महत्त्व व विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त हमारे पर्यावरण को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के बारे में विस्तार से समझाया गया है। इसके बाद पृथ्वी के पर्यावरण के विभिन्न भागों अर्थात् स्थल मण्डल, जल मण्डल, वायु मण्डल एवं जैव मण्डल की व्याख्या की गयी है। अन्त में पर्यावरण अध्ययन् की आवश्यकता एवं इसकी बहुआयामी प्रकृति को समझाया गया है। पर्यावरण व कोविड–19 के विषय पर भी सूक्ष्म में चर्चा की गयी है।

परिचय :–

पर्यावरण का अध्ययन् मानव जाति के लिये परम आवश्यक है; क्योंकि इस जगत में मनुष्य ही एक ऐसा समझदार प्राणी है जो इस बात को भलीभांति समझता है कि पर्यावरण के बिना पृथ्वी पर जीवन असम्भव है। मनुष्य का पर्यावरण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। मनुष्य का प्रत्येक क्रिया–कलाप पर्यावरण को प्रभावित करता है तथा

पर्यावरण मनुष्य को प्रभावित करता है। आधुनिक युग में पर्यावरण की खराब स्थिति का मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है। औद्योगीकरण ने पर्यावरण को बुरी तरह प्रभावित किया है। प्रदूषण, वनों का दोहन, राष्ट्रीय सुरक्षा, अपशिष्ट निस्तारण, आर्थिक उत्पादकता, भूमण्डलीय तापीकरण, ओजोन परत ह्रास तथा जैव विविधता की क्षति जैसी लगातार चिन्ताओं ने मनुष्य को पर्यावरण के प्रति सचेत कर दिया है इसलिये आजकल विश्व भर में हो रही संगोष्ठियों में पर्यावरण संरक्षण पर बहस छिड़ी है तथा इसके संरक्षण के लिये सरकारों द्वारा उपयुक्त कानून बनाकर विभिन्न कार्यक्रम व योजनाएं चलाई जा रही हैं। पर्यावरण के जनक **अलैक्जेण्डर बॉन हम्बोल्ट, प्रो0 रैक्स एन ऑलिंगरेस** को माना जाता है तथा भारत में **रामदेव मिश्रा जी** को पर्यावरण का जनक माना जाता है।

पर्यावरण की परिभाषा :–

पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति "परि" व "आवरण" की सन्धि से हुई है। पर्यावरण के अन्तर्गत उन सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दों का अध्ययन् किया जाता है जो जीव को प्रभावित करते हैं अर्थात् उसके चारों ओर उपस्थित हैं। पर्यावरण को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है :–

1. "सृष्टि में जीवों के चारों ओर उपस्थित भौतिक, जैविक, सामाजिक व सांस्कृतिक कारकों का समूह पर्यावरण कहलाता है।"
2. " पर्यावरण पृथ्वी पर उपस्थित सभी जैविक, भौतिक, सामाजिक व रासायनिक अवयवों का सम्मिलित रूप है जो मनुष्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है तथा मनुष्य उन्हें प्रभावित करता हैं।"

पर्यावरण के आयाम :–

पर्यावरण के मुख्यतः तीन आयाम हैं –

1. भौतिक पर्यावरण

2. जैविक पर्यावरण

3. सामाजिक एवं सामाजिक पर्यावरण।

भौतिक पर्यावरण :–

भौतिक पर्यावरण में अजैविक घटकों जैसे– मिट्टी, तापमान, प्रकाश, वायु, वर्षा, जल, नमी आदि कारकों का अध्ययन् किया जाता है।

जैविक पर्यावरण :–

जैविक पर्यावरण के अन्तर्गत पृथ्वी पर उपस्थित समस्त जीवों अर्थात् पौधे, जानवर, मनुष्य व सूक्ष्य जीवों आदि का अध्ययन् किया जाता है। वातावरण में जीव अपनी आवश्यकताओं के लिए एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण :–

इसमें मनुष्यों द्वारा उनके सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिये किये गये क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है।

पर्यावरणीय कारक :–

पर्यावरण के वे भाग जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जीवों को प्रभावित करते हैं, वे पर्यावरणीय कारक कहलाते हैं।

सामान्यतः पर्यावरणीय कारकों को दो भागों में बांटा जाता है :–

1. अजैविक कारक
2. जैविक कारक

अजैविक कारकों में भौतिक कारक जैसे ताप, प्रकाश अथवा विकरण, रासायनिक कारक जैसे– मिट्टी, जल, वायु आदि तथा वायुमण्डलीय कारक जैसे वायुमण्डल आदि हैं। ये सभी कारक एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

➢ प्रकाश व ताप का मुख्य स्रोत सूर्य है जिसकी उपस्थिति में उत्पादक भोजन बनाते हैं। विकरण का भी मुख्य स्रोत सूर्य ही है।

- मृदा सभी जीवों को आधार प्रदान करती है और यह उत्पादकों को आवश्यक खनिज–लवण उपलब्ध कराती है जिससे प्रकाश संश्लेषण द्वारा वे अपना भोजन बनाते हैं। जिस पर सभी मानव व जीव जंतु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर होते हैं।
- जल पृथ्वी के लगभग 70 प्रतिशत भाग पर है। जल जीवन के लिये परम आवश्यक घटक है। *"जल के बिना जीवन असम्भव है।"*
- वायुमण्डल में विभिन्न गैसों का मिश्रण है इसमें 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत ऑक्सीजन और अति अल्प मात्रा में कार्बन डाई–ऑक्साइड, नेऑन, हीलियम, आर्गन आदि गैसें हैं।

पर्यावरणीय अध्ययन् की बहुआयामी प्रकृति :–

पर्यावरण अध्ययन् एक विशुद्ध विज्ञान न होकर ऐसा ज्ञान है जिसमें विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान एवं अन्य विधाओं का ज्ञान शामिल होता है ताकि सभी पर्यावरणीय समस्याओं का समुचित हल निकाला जा सके। इस कारण ही पर्यावरण अध्ययन की प्रकृति बहुआयामी या बहुशास्त्रीय है।

पर्यावरण अध्ययन में लिथोस्फीयर, जलमण्डल, वायुमण्डल, भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, गणित, साँख्यिकी, अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी, जैव रासायन आदि विभिन्न विषयों का अध्ययन् किया जाता है।

लिथोस्फीयर अर्थात् स्थलमण्डल :–

भूमि अर्थात् मिट्टी में पेड़–पौधों के लिए आवश्यक खनिज–लवण उपस्थित होते हैं जिनका उपयोग सभी पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन बनाने में करते हैं। मिट्टी में लगभग 95 प्रतिशत कार्बनिक व 5 प्रतिशत कार्बनिक (जैविक) घटक उपस्थित होते हैं।

जलमण्डल अर्थात् हाइड्रोस्फीयर :–

जलमण्डल में महासागरों, समुद्र, जीव, तालाब, नदियां तथा झरने सम्मिलित हैं। धरती पर लगभग 70 प्रतिशत जलमण्डल है। यह पृथ्वी का वह घटक है जो तरल रूप में पाया जाता है।

वायुमण्डल अर्थात् एट्मॉस्फीयर :–

वायुमण्डल पृथ्वी से लगभग 500 किलोमीटर की ऊँचाई तक फैला हुआ है। इसमें लगभग 99 प्रतिशत ऑक्सीजन व नाइट्रोजन है तथा 01 प्रतिशत में कुछ अन्य ट्रेस गैसें हैं। इनमें कार्बन डाईऑक्साइड और ओजोन की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इसमें तापमान –920 डिग्री सेल्सियस से 12000 डिग्री सेल्सियस तक होता है। इसे वायु की परतों के आधार पर चार भागों गें बांटा जाता है– क्षोग गण्डल,सगताप मण्डल, मध्यमण्डल, आयन मण्डल।

क्षोभमण्डल :–

यह वायुमण्डल का सबसे निचला भाग है जो पृथ्वी सतह से 11 किलोमीटर ऊँचाई तक फैला है। इसमें धूलकण, जलवाष्प व बादल उपस्थित होने के कारण मौरामी घटनाएं होती हैं। क्षोभमण्डल व रामताप मण्डल के बीच का भाग जहां दोनों मिलते हैं क्षोभस्तर कहलाता है। यह लगभग एक से डेढ़ किलोमीटर तक चौड़ा होता है।

समताप मण्डल :–

यह 13 से 50 किलोमीटर तक फैला होता है। यहां बादल व मौसमी घटनाएं नहीं होतीं; क्योंकि वायुदाव कम होता है। इसमें 15 किलोमीटर से 25 किलोमीटर की ऊँचाई के बीच ओजोन गैस की अधिकता होती है, जिसे ओजोनस्तर कहते हैं। यह सूर्य से आने वाले हानिकारक पराबैंगनी विकरणों को पृथ्वी पर नहीं आने देती

हैं जिससे जीव सुरक्षित हैं उनके लिये यह रक्षा कवच का कार्य करती है। वायुयान उड़ाने के लिये सबसे अच्छा भाग है।

मध्यमण्डल :—

50 किलोमीटर से 85 किलोमीटर तक फैला है। इस क्षेत्र में ताप बहुत कम लगभग –800 डिग्री से –900 डिग्री तक होता है। यहां तापमान इतना होने का कारण यहां विकरण अवशोषक गैसें उपलब्ध नहीं हैं।

आयनमण्डल :—

85 किलोमीटर से 500 किलोमीटर तक फैला है। इस क्षेत्र में सूर्य विकिरणों व परबैंगनी किरणों के कारण गैसें आयनिक अवस्था में रहती हैं। इसी कारण इसे आयनिक मण्डल कहते हैं। यहां तापमाप अनिश्चित होता है।

- पर्यावरण में हर जगह पर जीवन नहीं है। अतः जैवमण्डल एक शब्द है जिराका उपयोग रथलमण्डल, जलमण्डली, व वायुमण्डल के उरा क्षेत्र के लिए किया जाता है, जहां जीव उपस्थित हैं।

पर्यावरण के अध्ययन के महत्त्व :—

पर्यावरण का अध्ययन क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसलिये इसके अध्ययन की आवश्यकता है। वर्तमान युग में जीवन की गुणबत्ता बनाये रखने के लिये पर्यावरण के महत्त्व को समझना परमावश्यक है। **"केबिन आर0 कोक्स"** ने अपनी पुस्तक **"पर्यावरणीय गुणवत्ता का भूगोल में स्वस्थ पर्यावरण"** के निम्न आधार हैं :—

1. पर्यावरण में किसी प्रकार प्रदूषण नहीं होना चाहिए।
2. पर्यावरण स्वास्थ्यवर्धक होना चाहिए।
3. पर्यावरण में पर्याप्त नियोजन की सम्भावना हो।
4. पर्यावरण में मनोरंजन की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध होना चाहिए।
5. पर्यावरण में आवास की उत्तम व्यवस्था होना चाहिए।

6. पर्यावरण में शिक्षा की सुविधा होनी चाहिए।

7. स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध होनी चाहिए।

इनके अतिरिक्त पर्यावरण के कुछ अन्य महत्त्व भी हैं जो निम्न हैं :–

1. पर्यावरण एक प्राकृतिक घर की तरह है।

2. पर्यावरण से ऊर्जा मिलती है।

3. ऑक्सीजन की आपूर्ति करता है।

4. शुद्ध पेयजल की आपूर्ति करता है।

5. पर्यावरण विभिन्न बीमारियों के इलाज करने के लिये दवा प्रदान करता है।

पर्यावरण प्रदूषण :–

जब पर्यावरण के जैविक व अजैविक घटकों की संतुलित अवस्था, अवांछनीयय तत्वों के प्रवेश से बदल जाती है तो पर्यावरणीय गुणवत्ता का ह्रास हो जाता है तब इस स्थिति को पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं जो जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, खाद्य प्रदूषण, जनसंख्या प्रदूषण, मानसिक प्रदूषण आदि प्रकार का होता है।

भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रयास :–

सर्वप्रथम सन् 1972 में स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम में भारत व विश्व स्तर पर पर्यावरण संरक्षण व पुर्ननिर्माण के लिए सम्मेलन हुआ, जून 1992 में विश्वत शिखर सम्मेलन ब्राजील के रियो–डी–जैनिरो में हुआ। इस सम्मेलन में 2001 तक पर्यावरण प्रदूषण से संविधान संशोधन कर अनुच्छेद 48(क), 51(क) जोड़ा गया जिसमें प्रत्येक भारतीय जंगल जिसमें प्रत्येक भारतीय जंगलों, झीलों, नदियों व वन्य जीवों की सुरक्षा करने का प्रयास करेगा। कुछ गहत्त्वपूर्ण सुधार निम्न हैं :–

- राष्ट्रीय नीति 1952
- जल अधिनियम 1974

- वायु अधिनियम 1981
- वन्य अधिनियम 1981
- पर्यावरण अधिनियम 1986
- संशोधन वन्य नीति 1988
- सार्वजनिक दायित्व बीमा अधिनियम 1991
- प्रदूषण निवारण अधिनियम 1992
- राष्ट्रीय पर्यावरण अभिकरण अधिनियम 1995
- राष्ट्रीय पर्यावरण सुनवाई अधिकार अधिनियम 1997
- जल नीति 2000

पर्यावरण पर कोविड–19 का प्रभाव :–

कोविड–19 महामारी ने पर्यावरण को प्रभावित किया है। महामारी के कारण मानवीय निष्क्रियता के परिणामस्वरूप पर्यावरण पर कुछ सकारात्मक प्रभाव देखे गये। सन् 2020 में कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन में 6.4 प्रतिशत की गिरावट तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड के उत्सर्जन में 30 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गयी। जबकि इसके विपरीत महामारी के बाद में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में तेजी से वृद्धि दर्ज हुई; क्योंकि प्रतिबन्ध रखने से उद्योग धीरे–धीरे चालू हो गये। महामारी के दौरान मानवीय गतिविधियां बहुत कम हो गयीं थीं जिससे वनों की कटाई में कमी आई। अतः हम कह राकते हैं कि कोविड–19 महामारी का पर्यावरण राकारात्मक प्रभाव पडा है। मानवीय गतिविधियों में बदलाव के कारण वायुप्रदूषण, ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन और जल गुणवत्ता अस्थाई परिवर्तन हुए हैं।

कोविड–19 में ठोस अपशिष्ट पदार्थ अधिकाधिक मात्रा में उत्पन्न हुए जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषण हुआ।

सन्दर्भ–सूची :–

1. पर्यावरण अध्ययन् वीएसी–09, सम्पादन– डॉ0 एच0सी0 जोशी, डॉ0 कृष्ण कुमार टम्टा, डॉ0 बीना तिवारी फुकारा, नेहा तिवारी एवं भावना वानिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, भौमिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड) wab.- http:www.uou.ac.in
2. सहायक अध्यापक भर्ती परीक्षा 2019, वर्मा एवं श्रीवास्तव, प्रभात पेपरवैक्स, नई दिल्ली, संस्करण–2018 http:www.prabhatbooks.com
3. पयावरणीय अध्ययन एवं शिक्षण शास्त्र, ओमप्रकाश एवं विमला प्रकाश, एम0सी0 ग्रोहिल, एजूकेशन प्राइवेट लि0 चेन्नई, प्रकाशन–2018
4. एक्सीलेंट रसायन विज्ञान रिफ्रेशर–2017, डॉ0 भावना वार्ष्णेय, मित्तल पब्लिशिंग हाउस, मथुरा Email- mittal publishinghouse@gmail.com
5. गूगल एण्ड विकीपीडिया।

Email- upasharad24@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 123-136

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण प्रदूषण के कारक : पर्यावरण पर प्रभाव एवं उपचार

शरद उपाध्याय, शोधार्थी

डॉ. अशोक कुमार कौशिक, असिस्टेंट प्रोफेसर एवं शोध निर्देशक

के. आर. (पी. जी.) कॉलेज, मथुरा।

प्रस्तुत शोध पत्र पर्यावरण प्रदूषण के संदर्भ में एवं पर्यावरण में हुए बदलाव से मानव-जीवन को किस तरह प्रभावित किया है और अनेक प्रदूषक किस तरह से मानव जीवन को प्रभावित कर रहे है, इस शोध पत्र में बताया गया है और विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में पर्यावरण के सन्दर्भ में अध्ययन किया गया है, कि पर्यावरण प्रदुषण से वातावरण को किस तरह नुकसान हुआ है। अध्ययन में विभिन्न विधिओ जैसे साक्षात्कार, प्रश्नावली और प्राथमिक व द्वितीयक आंकडे भी इस लघु शोध पत्र में शामिल किए गए हैं, सरकारी कार्यालयों, गैर सरकारी कार्यालयों से एकत्रित कर उनका विश्लेषण किया गया है, इस शोध पत्र में शहरों और गांवो के वातावरण का अध्ययन किया गया है। सभी प्राणी जात अपने विकास और अपने जीवन चक्र को चलाने के लिए संतुलित वातावरण पर निर्भर है। एक संतुलित वातावरण जिसमें प्रत्येक घटक एक निश्चित मात्रा और अनुपात में

विद्यमान होता है। लेकिन कभी मानव जनित या अन्य कारणों से पर्यावरण में अवांछित घटकों की मात्रा या तो आवश्यकता से बहुत अधिक बढ़ जाती है या हानिकारक घटक पर्यावरण में प्रवेश करते हैं। इस स्थिति में पर्यावरण दूषित होने लगता है और पर्यावरण में इस अवांछनीय परिवर्तन को पर्यावरण प्रदूषण कहा जाता है। इस शोध पत्र में पर्यावरण प्रदूषण और उसके संरक्षण का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावना

पर्यावरण को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रदूषित करने वाली प्रक्रिया, जिसके द्वारा पर्यावरण का कोई भी भाग स्थलमंडल, जलमण्डल एवं वायुमंडल इतना अधिक प्रभावित होता है कि यह जीव- जंतुओं या पौधों के लिए अस्वास्थ्यकर, अशुद्ध, असुरक्षित और खतरनाक हो जाता है। पर्यावरण प्रदूषण आमतौर पर मनुष्यों के इच्छित या अप्रत्याशित कार्यों द्वारा पारिस्थितिकी तंत्र में अप्रत्याशित और प्रतिकूल परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है, जिससे पर्यावरण की गुणवत्ता में गिरावट आती है और यह मानव, जीवों और पौधों के लिए असुरक्षित और हानिकारक हो जाता है। पर्यावरण प्रदूषण को दो प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है

- भौतिक प्रदूषण जैसे स्थल प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि।

- मानव प्रदूषण जैसे सामाजिक प्रदूषण, राजनीतिक प्रदूषण, जातीय प्रदूषण, धार्मिक प्रदूषण, आर्थिक प्रदूषण आदि।

सामान्य अर्थ में, पर्यावरण प्रदूषण का उपयोग भौतिक प्रदूषण को संदर्भित करने के लिए किया जाता है।

शोध का उद्देश्य

इस लघु शोध पत्र के उद्देश निम्न रूप से है।

- पर्यावरण प्रदूषण का अध्ययन करना।
- प्रदूषण के कारकों का अध्ययन किया गया।
- पर्यावरण संरक्षण के उपाय सुझाए गए है।
- पर्यावरण प्रदूषण के कारण
- पर्यावरण प्रदूषण के स्रोत

शोध विधि

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक और द्वितीयक आकड़ों का उपयोग किया गया है। आकड़ों का संग्रहण, व्यक्तिगत सर्वेक्षण, साक्षात्कार अनुसूची,पर्यावरण विभाग, पत्रों, समाचार पत्रों और विभिन्न वेबसाइटों और पुस्तकों के माध्यम से किया गया है।

पर्यावरण प्रदूषण

आधुनिक उद्योग जैसे विद्युत तापीय केंद्र, कल कारखाने, नगरीकरण, श्वेत और हरित क्रांति युग की कई उपलब्धियों के साथ साथ, आज का मानव प्रदूषण जैसी भारी समस्या का सामना कर रहा है। जिस हवा में हम सांस लेते हैं पानी, जो जीवन और भोजन का भौतिक आधार है, जो ऊर्जा का स्रोत है सभी प्रदूषित हो गए हैं।

प्रदूषण हवा, पानी या भूमि (यानी पर्यावरण) के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में अवांछित परिवर्तनों को संदर्भित करता है जो मनुष्यों और अन्य जीवों, उनकी रहने की स्थिति,

औद्योगिक प्रक्रियाओं और सांस्कृतिक विरासत के लिए हानिकारक है।'

प्रदूषण शब्द की मूल जड का शाब्दिक अर्थ है अपवित्रता अर्थात भ्रष्ट को भ्रष्ट करना। प्रदूषणकारी वस्तु को प्रदूषक कहा जाता है। कोई भी उपयोगी तत्व गलत मात्रा में गलत जगह पर होने के कारण प्रदूषक बन सकता है। उदाहरण के लिए, नाइट्रोजन और फास्फोरस जीवित जीवों के लिए आवश्य है। उर्वरक के रूप में उनका उपयोग फसल उत्पादन को बढ़ाता है, लेकिन जब वे किसी तरह या अन्य तरीके से नदी या झील के पानी तक पहुंचते हैं, तो अत्यधिक काई होने लगती है। अत्यधिक शैवाल पूरे जलाशय और पानी की सतह पर जमा होते हैं, जिससे जल प्रदूषण की स्थिति पैदा होती है। प्रदूषक हमेशा कचरे के रूप में नहीं होते हैं। कभी कभी एक स्थिति को सुधारने वाले तत्व का उपयोग दूसरे के लिए प्रदूषणकारी हो सकता है। प्रदूषक पदार्थ प्राकृतिक परिस्थिति तंत्र से तथा मनुष्य द्वारा की जाने वाली कृषि एवं औद्योगिक गतिविधियों के कारण उत्पन्न होते हैं।

प्रदूषण के प्रकार

पर्यावरणीय कारकों के आधार पर, पर्यावरणीय प्रदूषण को वायु, जल और ध्वनि,मृदा एवं परमाणु प्रदूषण आदि में भी विभाजित किया जाता है।

वायु प्रदूषण

वायु गैसों का मिश्रण है और ये हवा में एक निश्चित मात्रा में पाई जाती है। जब मानव स्रोतों से बाहरी तत्व हवा में मिल जाते है. तो हवा की गुणवत्ता खराब हो जाती है और यह जानवरों और पौधों के लिए हानिकारक हो जाता है. इसे वायु प्रदूषण का कारण

बनने वाले कारक कहा जाता है। इसे वायु प्रदूषक कहते हैं। कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, क्लोरीन, सीसा, अमोनिया, कैडमियम, धूल आदि मानव जनित वायु प्रदूषक हैं।

वायु प्रदूषण के प्रभाव

वायु प्रदूषण के प्रभाव निम्नलिखित है।

- वायु प्रदूषण के कारण समतापमण्डल में ओजोन रिक्तिकरण होने से मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा हो गया है।
- प्रदूषित हवा के कारण धूप की मात्रा कम हो जाती है. जो पौधों की प्रकाश संश्लेषण को प्रभावित करती है।
- वायु प्रदूषण मानव श्वसन प्रणाली को प्रभावित करता है और अस्थमा ब्रोंकाइटिस, सिरदर्द, फेफड़ों के कैंसर खांसी आखों में जलन, गले में दर्द, निमोनिया, हृदय रोग, उल्टी और एलर्जी का कारण बन सकता है।
- जब वायु प्रदूषित क्षेत्रों में बारिश होती है, तो विभिन्न प्रकार की गैस (CO2, NO2, SO2) और विषाक्त पदार्थ बारिश में घुल जाते हैं, जिसे अम्ल वर्षा कहा जाता है जिससे जल निकायों की अम्लीयता बढ़ती है और इमारतों का क्षरण होता है।

वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण

वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं।

- वाहनों में जीवाश्म ईंधन के दहन से
- कारखानों से निकलने वाला धुआं
- रेफ्रिजरेटर, एयर कंडीशनिंग, आदि द्वारा निकलने वाली गैंसे

(CFC, HCFC)

- कृषि कार्यों में कीटनाशक और जीवाणुनाशक दवाओं का उपयोग
- सॉल्वेंट का इस्तेमाल फर्नीचर पर पॉलिश और स्प्रे पेंट बनाने के लिए किया जाता है
- कूडे, सीवेज और औद्योगिक प्रक्रिया से उभारने वाली गंध।

वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय

वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय निम्नलिखित है।

- उद्द्योगों की चिमनीयों की ऊंचाई अधिक हो।
- कोयले या डीजल इंजन का उपयोग कम किया जाय साथ ही इलेक्ट्रॉनिक वाहन को बढ़ावा दिया जाय।
- मोटर वाहनों के carburetor को साफ करके कार्बन मोनोऑक्साइड (co) उत्सर्जन को कम किया जा सकता है।
- सीसा रहित पेट्रोल को इंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए।
- पुराने वाहन के परिचालन पर प्रतिबंध।
- घरों में सौर ऊर्जा का अधिक उपयोग किया जाना चाहिए
- यूरो/BS मानकों का सख्त पालन।
- ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाले क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) के उत्पादन और उपयोग पर कटौती की जानी चाहिए।
- फैक्टरी फायरप्लेस में बैग फिल्टर का उपयोग किया जाना चाहिए

जल प्रदूषण

जब पानी में निहित बाहरी पदार्थ पानी के प्राकृतिक गुणों को इस तरह से बदलते हैं कि यह मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाता है या इसकी उपयोगिता कम कर देता है। तो इसे जल प्रदूषण कहा जाता है। जो चीजें और पदार्थ पानी की शुद्धता और गुणवत्ता को नष्ट करते हैं, उन्हें वायु प्रदूषक कहा जाता है। प्रदूषक का भूमि में रिसाव भूमिगत जल को प्रभावित करता है।

जल प्रदूषण के प्रभाव

जल प्रदूषण के प्रभाव निम्नलिखित है।

- शैवाल प्रदूषित जल में तेजी से फैलने लगते हैं और कुछ प्रकार के पौधों को छोड़कर बाकी नष्ट हो जाते हैं।
- प्रदूषित पानी में काई की प्रचुरता के कारण, सूर्य की रोशनी गहराई तक नहीं पहुंचती, जिससे जलीय पौधों की प्रकाश संश्लेषण और वृद्धि प्रभावित होती है।
- दूषित पानी पीने से व्यक्ति ही नहीं, पशु, पक्षियों एवं मछली भी कई तरह की बीमारियों से प्रभावित होती है।
- प्रदूषित पानी से हिपेटाइटिस, हैजा, पेचिश, taifaid , समय समय पर बुखार, वायरल बुखार आदि बीमारियों होती है।

जल प्रदूषण के स्रोत

जल प्रदूषण के स्रोत या कारण इस प्रकार है

- घरेलू सीवेज जैसे- घरों से छोड़ा गया अपशिष्ट जल तथा सफाई सीवेज वाला जल
- कृषि क्षेत्रों का भूजल जहाँ रासायनिक उर्वरको का अंधाधुंध प्रयोग हुआ हो।
- अपशिष्ट पदार्थों की भारी मात्रा को जल स्रोतों जैसे नदियाँ

और जलाशयों आदि में डाला जा रहा है।

- समुद्र के किनारे स्थित तेल के कुओं एवं तेल वाहक जहाज से रिसाव के कारण तेल प्रदूषण
- पानी में मृत, जले हुए, आधे अधूरे शरीर, अस्थि विसर्जन, साबुन से स्नान और कपडे धोना आदि।

जल प्रदूषण को रोकने के उपाय

जल प्रदूषण को रोकने के उपाय निम्न हैं।

- जल प्रदूषण पर नियंत्रण हेतु नालों की नियमित रूप से साफ सफाई करना चाहिए। ग्रामीण इलाकों में जल निकास हेतु पक्की नालियों की व्यवस्था हो।
- नदियाँ तालाब आदि में धुले जा रहे पशुओं पर प्रतिबंध।
- नदियौ तालाबों और अन्य जल निकायों में सभी प्रकार के अपशिष्टो पर प्रतिबंध
- औद्योगिक अपशिष्ट का उचित उपचार
- नदियों में मृत शरीर, लाशों और राख की लकड़ी को बहा देने पर प्रतिबंध
- आवश्यकतानुसार कृषि में उर्वरकों और कीटनाशक का उपयोग।

- प्रदूषित पानी की प्राकृतिक जल स्रोतों में छोड़ने से पहले, इसमे शैवाल और जलकुम्भी पौधों की कुछ प्रजातियों को बढाकर प्रदुषित पानी को शुद्ध करे।
- ऐसी मछलियों को जलाशय में छोड़ा जाना चाहिए जो मच्छर के अंडे लार्वा और जलीय खर-पतवार की देखभाल का कारण बनती है।

- कछुओं को नदियों और जलाशयों में छोड़ना।

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण किसी भी प्रकार के अनुपयोगी ध्वनियों को कहते हैं

उच्म तीव्रता वाली ध्वनि को शोर कहा जाता है। वायुमंडल में अवांछनीय ध्वनि की उपस्थिति या शोर को ध्वनि प्रदूषण कहा जाता है। शोर मनुष्यों में अशांति और परेशानी का कारण बनता है। ध्वनि की तीव्रता मापने की इकाई को डेसीबल कहा जाता है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव

ध्वनि प्रदुषण के प्रभाव निम्नलिखित है।

- अधिक शोर में काम करने वाले श्रमिकों को हृदय रोग, शारीरिक शिथिलता, रक्तचाप आदि जैसी कई बीमारियों हो जाती है।
- विस्फोटों और ध्वनि बमों की अचानक उच्च ध्वनि भी गर्भवती महिलाओं में गर्भपात का कारण बन सकती है।
- महिलाओं के नवजात शिशुओं में विकृति होती है जो लगातार शोर में रहते हैं
- समुद्री व्हेल की कुछ विशेष प्रजातियों की मृत्यु होती है जिन्हें सेना की तोप की भयंकर गर्जना और सोनार द्वारा समुद्र के किनारे ला दिया जाता है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रमुख कारण

ध्वनि प्रदूषण के प्रमुख कारण निम्नलिखित है

- मोटर वाहन का शोर।
- खराब शहरी नियोजन ध्वनि प्रदुषण को बढ़ा सकता है,

क्योंकि औद्योगिक और आवासीय इमारतें आवासीय क्षेत्रों में ध्वनि प्रदुषण का कारण बन सकते हैं।

- लाउडस्पीकर और म्यूजिक सिस्टम से शोर।
- कारखानों में मशीनो से शोर।

ध्वनि प्रदूषण को रोकने के उपाय

ध्वनि प्रदूषण को रोकने के उपाय निम्नलिखित है

- सड़क पर होने वाले शोर शराबे को शांत करने के लिए ध्वनि अवरोधक जैसे हरित पट्टि का विकास।
- उच्च शोर वाहनों पर प्रतिबंध।
- मोटर इंजन और अन्य शोर उत्पन्न करने वाली मशीनों की संरचना में सुधार
- शहरी और आवासीय कॉलोनियों के बाहर उद्योग स्थापित करना
- उद्द्योगों के श्रमिकों को इयरप्लग या इयरबर्ड प्रदान करना।
- समय समय पर वाहनों के साइलेंसरो की जाँच हो।
- बैंड बाजों लाउडस्पीकर और नारों पर उचित प्रतिबंध।

मृदा प्रदूषण

मिट्टी के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणधर्म में कोई भी अवांछनीय परिवर्तन जो मानव पोषण और फसल उत्पादन और उत्पादकता पर प्रभाव डालेगा और जिससे मिट्टी की गुणवत्ता और उपयोगिता को नष्ट किया जाएगा, उसे 'मृदा प्रदूषण कहा जाता है। कैडमियम, क्रोमियम, ताँबा, कीटनाशक, रासायनिक उर्वरक, खरपतवारनाशक, जहरीली गैंसे आदि मिट्टी के प्रमुख प्रदूषक है।

मृदा प्रदूषण के प्रभाव

मृदा प्रदूषण के प्रभाव निम्नलिखित है-

- मृदा प्रदूषण मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों को प्रभावित करता है और मिट्टी की उत्पादन क्षमता को प्रभावित करता है।
- कभी कभी लोग सीवेज से खेतों की सिंचाई करते हैं। इस कारण मिट्टी में मौजूद छिद्रों की संख्या दिन प्रतिदिन कम होती जाती है और बाद में ऐसी स्थिति आती है कि मिट्टी की प्राकृतिक सीवेज उपचार क्षमता पूरी तरह से नष्ट हो जाती है।
- जब मिट्टी में प्रदूषित पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है, तो वे जल स्रोतों तक पहुंच जाते हैं और उनमें लवण और अन्य हानिकारक तत्वों (नाइट्रेट, आर्सेनिक, अमोनिया) की एकाग्रता में वृद्धि होती है परिणामस्वरूप ऐसे जल स्रोतों का पानी पीने योग्य नहीं होता है।

मृदा प्रदूषण के प्रमुख कारण

मृदा प्रदूषण के प्रमुख कारण निम्नलिखित है

- कृषि गतिविधियाँ
- औद्योगिक कचरा
- लैंडफिल का रिसाव
- घर का कचरा
- डंपिंग कचरा
- पॉलीथीन बैग, प्लास्टिक के डिब्बे
- खनन

मृदा प्रदूषण को रोकने के उपाय

मृदा प्रदूषण को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा

सकते हैं।

- कचरा संग्रहण हटाने और निपटान की व्यवस्था
- मिट्टी तक पहुंचने से पहले कारखानों से निकलने वाले सीवेज के पानी का उपचार करना।
- नगर पालिकाओं और नगर निकार्यों द्वारा कचरे का उचित निपटान।
- रासायनिक उर्वरकों का सीमित उपयोग किया जाना चाहिए।
- कीटनाशक, कवकनाशी और शाकनाशी आदि का कम से कम उपयोग किया जाना चाहिए
- नियोजित खनन कार्य

परमाणु प्रदूषण

परमाणु प्रदूषण या रेडियोधर्मी प्रदूषण, तब होता है जब रेडियोधर्मी पदार्थ पर्यावरण में छोड़े जाते हैं। यह हवा, पानी, या ज़मीन में मौजूद हो सकता है। परमाणु प्रदूषण से मानव और प्राकृतिक जीव-जन्तु प्रभावित हो सकते हैं।

परमाणु प्रदूषण के कारण:

- परमाणु ऊर्जा संयंत्रों से रेडियोधर्मी पदार्थों का निकलना
- परमाणु हथियारों के परीक्षण
- परमाणु हथियारों का उत्पादन और विघटन
- रेडियोधर्मी खनिजों का खनन
- रेडियोधर्मी कचरे का संचालन और निपटान
- परमाणु दुर्घटनाएं जैसे- चेर्नोबिल दुर्घटना, 26 अप्रैल 1986, फुकुशिमा परमाणु दुर्घटना, 11 मार्च 2011

परमाणु प्रदूषण के प्रभाव:

- आनुवंशिक प्रभाव।
- आयनकारी विकिरण से रोगाणु कोशिकाओं में उत्परिवर्तन।
- रोगाणु कोशिकाओं के डीएनए में संरचनात्मक परिवर्तन।
- वंशानुगत विकारों से असामयिक मृत्यु और गंभीर मानसिक बीमारी।
- पेड़-पौधों की पत्तियों और ऊतकों पर दुष्प्रभाव।

रेडियोधर्मी अपशिष्ट का निपटानः

- रेडियोधर्मी अपशिष्ट को रेडियोधर्मिता स्तर के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।
- निम्न स्तर अपशिष्ट (LLW) की हैंडलिंग एवं परिवहन के दौरान विशिष्ट परिरक्षण की आवश्यकता नहीं होती।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र में पर्यावरण में होने वाले हानिकारक नुकसान के विषय में चर्चा की गई है। पर्यावरण प्रदूषण से केसे निपटा जाए इसके विषय में भी चर्चा की गयी है। पर्यावरण को साफ और स्वच्छ बनाने के लिए व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, और राष्ट्रिय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रवास किया जाना चाहिए। जिसके अंतर्गत प्रमुख रूप से आर्थिक और सामाजिक रूप से पर्यावरण प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

पर्यावरण प्रदूषण से अधिक नुकसान हुआ है इस से निपटने के लिए व्यक्तिगत पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रयास किया जाना चाहिये। हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक प्रदूषकों का इलाज प्राकृतिक तरीकों से किया जाता है, लेकिन मनुष्य की कृषि या औद्योगिक गतिविधियों से उत्पन्न

प्रदूषकों के उपचार के लिए न तो प्रकृति में कोई व्यवस्था है और न ही मनुष्य पर्याप्त प्रयास कर रहा है नतीजतन इक्कीसवीं शताब्दी के इन वर्षों में मनुष्यों को प्रदूषित वातावरण में रहना पड़ता है। हालीकि हम पर्यावरण को 100 प्रतिशत प्रदूषण मुक्त नहीं बना सकते हैं. लेकिन हम ऐसे प्रयास कर सकते हैं कि वे कम से कम हानिकारक हो। ऐसा करने के लिए प्रत्येक मनुष्य को पर्यावरण संरक्षण के लिए उतनी ही प्राथमिकता देनी चाहिये जितनी वह अन्य भौतिक आवश्यकताओं को देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पर्यावरण भूगोल, प्रो सविन्द्र सिंह वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, उत्तरप्रदेश
2. पर्यावरण प्रदूषण एक अध्ययन डॉ रविंद्र कुमार
3. आईपीसीसी की छठी मूल्यांकन रिपोर्ट, मार्च 2023
4. पर्यावरण अध्ययन, डॉ. रतन जोशी, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
5. पर्यावरण एवं मानव जीवन, डॉ सुमन गुप्ता, लोकप्रिय विज्ञान सीरीज।
6. पर्यावरण प्रदूषण और हम एक संक्षिप्त परिचय, प्रतिभा सिंह।
7. पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रबंधन, श्रीशरण, कु अशोक प्रधान।
8. पर्यावरण अध्ययन, डॉ. दया शंकर त्रिपाठी।
9. पर्यावरण भूगोल, डॉ एच एम सक्सेना, पूजा सक्सेना, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 137-143

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण मुद्दों के उभरते आयाम

पूनम सिंह, शोधार्थी,
निशीथ गौड़, शोध निर्देशिका
संस्कृत विभाग, दयालबाग शिक्षण संस्थान।

वेदों में पर्यावरणीय शिक्षा

वेदों को हिंदू धर्म एवं विश्व साहित्य का सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। वेद शब्द विद् ज्ञाने धातु में घञ् प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है ज्ञान अर्थात वेदों में ही संसार एवं जीवन के प्रत्येक पक्ष का ज्ञान होता है। मनु ने अपने ग्रंथ मनुस्मृति के एक श्लोक में वेदों से प्राप्त होने वाले ज्ञान के संबंध में कहा है.

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वाश्रमसा: पृथक।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदांता प्रसिध्यति।।

अर्थात चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) तीन लोक (स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल लोक) चार जीवन या आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) भूत, वर्तमान और भविष्य। ये सब वेदों से ही सीखे जा सकते हैं। वेदों की संख्या चार मानी गई है हमारा सर्वप्राचीन वेद या प्रथम वेद ऋग्वेद को माना जाता है। द्वितीय यजुर्वेद, तृतीय सामवेद और चौथा वेद अथर्ववेद को माना गया है। इसी प्रसंग में वेदों में पर्यावरण का विशेष महत्त्व दिखाया गया है अगर हम पर्यावरण शब्द पर दृष्टि डालें तो पर्यावरण शब्द परि+ आङ् उपसर्ग पूर्वक 'वृ' धातु एवं ल (अन्) प्रत्यय के आगम से बना है। जिसका अर्थ होता है -अच्छादन या ढकना। अर्थात् जो हमें चारों ओर से आच्छादित किए हुए हैं वह पर्यावरण हैं। आज हम वैश्विक स्तर पर पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या से जूझ रहे हैं जिससे संपूर्ण पारिस्थितकी तंत्र एवं मानव जीवन प्रभावित हो रहा है। इस समस्या को दूर करने के लिए अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं तथा विविध अधिनियम व कानूनों का निर्माण हो रहा है। अगर हम बात करें वैदिक युग की तो हमारी वैदिक सभ्यता का निर्माण

ऋषि मुनियों के द्वारा प्रकृति की सांनिध्य में रहकर ही किया गया। ऋषि-मुनियों के द्वारा स्वच्छ आकाश के नीचे, धन धान्य से संपन्न वसुंधरा पर, मधुर संगीतमय कल-कल करती नदियों के किनारे पर पक्षियों के कलरव तथा अन्य पशु पक्षियों के साथ मित्रता के भाव का आनंद लेकर इनके प्रति स्तुति की गई तथा पर्यावरण की सुरक्षा एवं उसके संवर्धन के लिए अनेकों सूक्तों मंत्रों की रचना की गई। वेदों में प्रकृति के विभिन्न तत्वों यथा जल, वायु, अग्नि, भूमि, वन, सूर्य, मेघ, वनस्पति आदि का देवी देवताओं के रूप में वर्णन किया गया है तथा उनकी सेवा में स्तुति की गई है। वेदों में कई सूक्त प्राप्त होते हैं यथा अग्नि सूक्त, भूमि सूक्त ऊषा सूक्त, अरण्यानी सूक्त हिरण्यगर्भ और नासदिय सूक्त आदि।

ऋषि मुनियों ने प्रकृतिक का सूक्ष्म अध्ययन कर इसके अद्वितीय रहस्यों व तथ्यों को प्रकट किया है। वैदिक युग में मानव प्रकृति के प्रति सजग एवं उसके प्रति कृतज्ञ था।

अब हम बात करते हैं पर्यावरण शिक्षा की, वेदों में पर्यावरण शिक्षा के बारे में बात करने से पूर्व हम जानते हैं कि आखिर पर्यावरण शिक्षा है क्या? तो पर्यावरण शिक्षा से तात्पर्य पर्यावरण के प्रति सही समझ उत्पन्न करने, उसके संरक्षण एवं संवर्धन के लिए संवेदना का भाव विकसित करने, प्रदूषण की समस्याओं को रोकने और उसके समाधान प्रस्तुत करने तथा पर्यावरण में संतुलन बनाए रखने से है। शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा हम भावी पीढ़ी का मानसिक, बौद्धिक व नैतिक विकास कर सकते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण शिक्षा का बहुत महत्त्व है। वर्तमान में पर्यावरण संबंधी समस्याओं एवं भविष्य के लिये पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए मानव को पर्यावरण शिक्षा देना आवश्यक हो गया है। जिसके माध्यम से वे पर्यावरण एवं उससे संबंधित समस्याओं के प्रति जागरूक हों एवं उनकी सुरक्षा के लिए चिंतित हो तथा व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से पर्यावरण की वर्तमान समस्याओं के समाधान एवं नवीन समस्याओं को रोकने में सक्षम हो सकें वैदिक साहित्य का अध्ययन

पर्यावरण शिक्षा प्रदान करने में तथा समाज को भविष्य के लिए एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है।

वेदों में पर्यावरणीय शिक्षा

हमारे वेदों को सकल ज्ञान-विज्ञान की समृद्ध राशि कहा जाता है। यहाँ स्थान-स्थान पर पर्यावरण संरक्षण के उपाय वर्णित य किए गए हैं। विश्व में सभी प्राणी पृथ्वी जल और वायु पर ही आश्रित हैं तथा इन्हीं के आधार पर जीवित हैं। इसलिए पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा हमारे लिए आवश्यक है। वेदों में पर्यावरण शिक्षा का इतना अधिक वर्णन है कि उसे एक जगह समेट पाना बहुत कठिन कार्य है फिर भी हम वेदों में पर्यावरणीय शिक्षा इस प्रकार देख सकते हैं-

अथर्ववेद के 12वें काण्ड का प्रथम सूक्त भूमि सूक्त है जिसमें पृथ्वी को माता तथा अथर्वा ऋषि ने स्वयं को भूमि का पुत्र बताया है-

माता भूमि: पुत्रोऽहंपृथिव्या:।(12.1.12)

अर्थात् यह भूमि माता के समान है जो सभी का पोषण करती है तथा में पुत्र के समान इसकी रक्षा करूंगा।

पृथ्वी सभी जीव जंतुओं को जीवन प्रदान करती है। अनेक प्रकार की औषधियां उत्पन्न करती है, समुद्र, नदी, जल इसी पर प्रवाहित होते हैं। पृथ्वी पर ही हम अपनी समस्त इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। इस सूक्त में 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना को विकसित किया गया है। इसमें पृथ्वी के स्वरूप पर एवं उसके तत्वों की उपयोगिता का विशद् वर्णन किया गया है।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यास्यामन्नं कृष्टय: संवभूवु:।
स्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि: पूर्वपेये दधातु:।।(12.1.3)

अर्थात् जिस भूमि पर समुद्र, नदियां झरने, कूप आदि की जल धाराएं प्रवाहित हैं, जिस पर अन्न व कृषि उत्पन्न हुए हैं, जिस पर श्वास लेता हुआ जीवन की चेष्टा

करता हुआ यह जगत चलता है वह भूमि हमें श्रेष्ठ लोगों के प्रयासों के द्वारा ऐसे स्थान पर ठहरावें जहां हम सुरक्षित रह सकें। आज पृथ्वी का अति दोहन किया जा रहा है मनुष्य अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगा हुआ है। अथर्ववेद में पृथ्वी दोहन निषेध की शिक्षा प्राप्त होती है।

"शिला भूमिरश्मा पांसु सा भूमि संधृता धृत।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या आकरं नमः।

अर्थात पत्थरों, मिट्टी किरणों और धूल से सुसज्जित घी से पोषित पृथ्वी को मैं प्रणाम करता हूं। जिसकी छाती पर स्वर्ण आभूषण है ऐसी पृथ्वी को मैं नमन करता हूं। इस मंत्र के माध्यम से पृथ्वी के प्रति कृतज्ञता व सम्मान की भावना दिखाई गई है तथा पृथ्वी के संरक्षण की शिक्षा दी गई है।

ईशावास्योपनिषद् के प्रथम श्लोक में प्राकृतिक संसाधनों के सदुपयोग की शिक्षा प्राप्त होती है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन व्यक्तेन भुँजीता मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

अर्थात इस समस्त संसार में जो कुछ भी है वह सब ईश्वर से व्याप्त है अर्थात ईश्वर द्वारा बनाया गया है हमें त्याग की भावना से उनका उपभोग करना चाहिए और किसी के धन को अपना नहीं समझना चाहिए। आज मानव प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध प्रयोग कर रहा है उसे भावी पीढ़ी के लिए त्याग की भावना के साथ ही जितना आवश्यक है उतना ही पर्यावरण के प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करना चाहिए।

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 164 वे सूक्त में प्राकृतिक तत्वों की पूजा और उसके प्रति सम्मान की शिक्षा प्राप्त होती है।

आकाशात् पृथिवी प्रणते यः सूर्यं च यः वायुः।
सर्वे देवा विश्वस्य यः समुच्छिदधाति । ।(1.164.46)

अर्थात सभी देवता आकाश, पृथ्वी, सूर्य और वायु में समाहित किए जाते हैं। यह सभी जीवन के स्रोत हैं तथा इनका संरक्षण बहुत ही आवश्यक माना गया है ।

मत्स्य पुराण के एक श्लोक में वृक्ष का महत्त्व बताया गया है तथा वृक्ष लगाने की शिक्षा दी गयी है-

दशकूपसमा वापि, दशवापसमो ह्रदय:।
दह्रदसम: पुत्र: दपुत्रसमोद्रुम:।।

यानी दस कूपों के समान एक तालाब होता है दस तालाबों के बराबर एक सरोवर या जलाशय होता है, दस जलाशयों के बराबर एक पुत्र होता है, जबकि 10 पुत्रों के समान एक वृक्ष होता है। इसलिए प्रत्येक मानव को अपने जीवन में एक पौधा तो अवश्य ही लगाना चाहिए क्योंकि वृक्ष से हमें फल, छाया और जीवन प्राप्त होता है। पेड़ों से ही बादल आते हैं जो एक साथ अपने जल से कुओं, तालाबों व सरोवरों को भर सकते हैं। जो आने वाली पीढ़ी की प्यास को बुझाने में मदद करेंगे यदि हम एक वृक्ष काटते हैं तो इसका प्रभाव यही है कि हम 10 पुत्रों 10 सरोवरों 10 तालाबों वह 10 कूपों का नाश कर रहे हैं। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम वृक्ष अवश्य लगाएं ।

वृक्षों से हमें ऑक्सीजन प्राप्त होती है जिसे प्राण वायु भी कहा जाता है। वेदों में पांच प्रकार की वायु के नाम प्राप्त होते हैं- प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान। इसमें प्राण और अपान वायु का अधिक महत्व है। अथर्ववेद में प्राण और अपान वायु से प्रार्थना का वर्णन किया गया-

प्राणा पानौ मृत्योर्मा पातीं स्वाहा । (2.16.1)

अर्थात है प्राण और अपान वायु आप दोनों मिलकर हमें मृत्यु से बचाएं ।

मानव द्वारा भोजन, प्राणायाम, व्यायाम आदि से जिस वायु को अंदर लिया जाता है।, उसे **प्राण** वायु कहा गया है। तथा जिसे बाहर निकाला जाता है उसे **अपान** वायु कहा गया है। यह दोनों मिलकर मनुष्य को स्वास्थ्य प्रदान करती है।

पर्यावरण को सुरक्षित व संरक्षित करने के लिए प्राचीन ऋषियों ने अनेक मार्ग खोजें थे जिनका महत्व पहले जितना था आज भी उतना ही है तथा भविष्य में भी रहेगा। प्राचीन ऋषि मुनियों को त्रिकालवेत्ता माना जाता है। मानव को पर्यावरण में संतुलन बनाए रखने के लिए पर्यावरण के नियमों का पालन करना चाहिए। शुक्ल यजुर्वेद के 40 वें अध्याय में विश्व शांति के लिए मंत्र वर्णित है जिससे पर्यावरण में संतुलन बना रहे।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः
पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

यहां तीन बार शांति शब्द का प्रयोग किया गया है ऐसा इसलिए क्योंकि हिंदू धर्म में तीन प्रकार की दुखों या समस्याओं का वर्णन है 1.आधिदैविक 2.आधिभौतिक 3.आध्यात्मिक। वेदों में पर्यावरणीय शुद्धता के लिए यज्ञों का भी विधान मिलता है तथा यज्ञ के माध्यम से अनेक रोगों का नाश होता है। अथर्ववेद में यज्ञ को विश्व कल्याण से जोड़ा जाता है-

" यज्ञं ब्रह्मणस्पतिं यज्ञं वसुन्धराम्"।

अर्थात यज्ञ ब्रह्मा के रूप में है जो समस्त संसार का पालन करते हैं इससे संपूर्ण वसुधा का कल्याण होता है। अतः यज्ञ न केवल आध्यात्मिक एवं धार्मिक दृष्टि से बल्कि पर्यावरणीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण योगदान रखते हैं। वेदों में जल के पोषक तत्वों तथा संरक्षण की शिक्षा मिलती है। अथर्ववेद में मित्र (ऑक्सीजन) और वरुण (हाइड्रोजन) के मिलने से जल के निर्माण का वर्णन है।

"मित्रावरुणौ वष्टया अधीपती।"(5.24.5)।

वेद में जल को "आप" कहा गया है। अथर्ववेद में जल की द्वारा स्वास्थ्य और शुद्धता प्रदान करने की बात कही गई है। निष्कर्ष अतः हम कह सकते हैं कि वेदों

में पर्यावरण शिक्षा का वर्णन स्थान स्थान पर प्राप्त होता है। वेदों में पर्यावरण के संरक्षण और उसके संवर्धन के लिए अनेक मंत्र, सूक्तों का वर्णन ऋषि मुनियों ने किया है। वेदों में पर्यावरण शिक्षा का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग से है जिससे प्रकृति में सभी तत्वों के मध्य संतुलन बना रहे। पर्यावरण शिक्षा प्रत्येक उम्र के लोगों के लिए आवश्यक है। इसलिए बालककों, युवाओं बडो सभी को इसका ज्ञान कराने के लिए विविध कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। शिक्षा के द्वारा हम बड़े से बड़ा परिवर्तन कर सकते हैं। वैदिक काल का मानव पूर्णतः प्रकृति पर ही निर्भर था। वैदिक काल में प्रकृति के प्रतिकूल कोई भी कार्य नहीं किया जाता था।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 144-148

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य में पर्यावरण संरक्षण

जाविन्त्री यादव, शोधार्थी,

निशीथ गौड़, शोध निर्देशिका

संस्कृत विभाग, दयालबाग शिक्षण संस्थान।

साहित्य शब्द का अर्थ है :- **'संहितयोः शब्दार्थयोः भावं साहित्यम्।'** अर्थात् शब्द तथा अर्थ का सहभाव भाव ही साहित्य है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतः भारत के नैतिक. सामाजिक. आर्थिक. धार्मिक तथा आध्यात्मिक जीवन का सर्वाङ्गीण वर्णन इसमें है। धर्म. अर्थ. काम. मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में से कोई भी पुरुषार्थ संस्कृत विद्वानों की लेखनी से अछूता नहीं रहा। ज्ञान विज्ञान का कोई भी अंग ऐसा नहीं है. जिसका उल्लेख संस्कृत साहित्य में नहीं है। सांसारिक सुख प्राप्त करवाने वाले प्रेय मार्ग और मनुष्य को परमानन्द की तरफ प्रवृत्त करवाने वाले श्रेयमार्ग दोनों का ही बखूबी संस्कृत साहित्य में किया गया है। साहित्य में पर्यावरण संरक्षण एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। जो मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन स्थापित करने पर बल देता है। पर्यावरण में हमारे चारों ओर जो कुछ भी प्रत्यक्ष या परोक्ष है यथा – पृथ्वी. सूर्य. वायु. आकाश. जल. अग्नि. वनस्पति. मृदा. पक्षी. मानव. आदि। पर्यावरण प्रदूषण आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या का कारण है जिसके प्रभाव से कोई भी प्राणी अछूता नहीं है कोई न कोई किसी प्रदूषण से ग्रसित होता जा रहा है। पर्यावरण की प्रदूषित करने वाले तत्त्व बहुत अधिक है परन्तु दुर्भाग्य से प्रदूषण की रोकथाम करने वाले तत्त्व उस अनुपात में बहुत कम हैं. यही कारण है कि सम्पूर्ण जैव मंडल का विनाश बुद्धिजीवियों की दृष्टि में बहुत समीप है।

परि आङ् उपसर्ग पूर्वक वृञ् वर्णे धातु से ल्युट् प्रत्यय करके पर्यावरण शब्द की निष्पत्ति होती है। पर्यावरण किसी जाति. धर्म. सम्प्रदाय. राष्ट्र अथवा वसुधा का रिश्तेदार नहीं अपितु इसमे सन्तुलन ब्रह्माण्ड का परिपोषक तथा असन्तुलन ब्रह्माण्ड के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होगा। समस्त प्राकृतिक पिण्डज. अण्डज. स्वेदज तथा उद्भिज्ज के साथ ही नदी. पहाड़ झरने. समुद्र. पृथ्वी. जल. तेज. वायु. आकाश आदि समस्त महाभूतों से निरन्तर सामंजस्य स्थापित करना ही पर्यावरण कहलाता है। हम सबका जीवन पर्यावरण संरक्षित रखने के कारण इदानींपर्यन्त सुरक्षित है। इस पर्यावरण के विनष्ट अर्थात् असन्तुलित हो जाने पर हम सभी नष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार से पोखर. तालाब. नदी. नद. समुद्र. वन. वृक्ष. वनस्पति. पहाड़ आदि धनधान्यों से फलवती यह धरणी जीवन शून्य होकर रह जायेगी-

पर्यावरणगोपेन जीवनं नो सुरक्षितम्।
नष्टे जाते वयं नष्टाः जीवशून्या वसुन्धरा ।।

संस्कृत साहित्य का इतिहास – ७५८

जो सब पृथ्वी. जल. तेज. वायु एवं आकाश. वे पंचमहाभूत पांच जो शब्दादि पंच तन्मात्राएँ अर्थात् शब्द. स्पर्श. रुप. रस. गन्ध हैं इनसे पंच महाभूतों का कमशः उद्भव होता है। पंचमहाभूतों में सबसे पहले पृथ्वी का अभिधान हुआ है तथा जिस पृथ्वी के द्वारा समस्त लोक धारण किये गये हैं वह भूमि हम सबके द्वारा प्रणाम की जाती है एवं वे सभी लोक जो पृथ्वी के आश्रित हैं उन्हें पृथ्वी की रक्षा करनी चाहिए

पर्यावरण का अर्थ - पर्यावरण अंग्रेजी शब्द इनवायरनमेण्ट है। इनवायरनमेण्ट शब्द की उत्पति फ्रेंच भाषा में हुई है। इनवायरनमेण्ट का अर्थ है घेरना। पर्यावरण शब्द भी दो शब्दों के मेल से बना है- परि और आवरण। परि का आशय है बाहरी अर्थात चारों ओर एवं आवरण का अर्थ होता है घेरा इसलिए पर्यावरण का अर्थ है चारों ओर से घेरने वाला। अतः किसी जीव के चारो और उपस्थित समस्त जैविक और अजैविक पदार्थों को पर्यावरण के तहत सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार पर्यावरण का निर्माण जल. वायु. भूमि उनके पारस्परिक सम्बन्ध अन्य वस्तुओं जैसे जीवों. सम्पत्ति तथा मनुष्य के आपसी सम्बन्धों को मिलाकर हुआ है। भौतिक तथा सांस्कृतिक

दशाओं का सम्पूर्ण योग जो मनुष्य के चारों तरफ व्याप्त होता है और उसे प्रभावित करता है वह पर्यावरण कहलाता है। सांस्कृतिक या मानवीय पर्यावरण में समस्त मानवीय क्रियाओं. दशाओं तथा सांस्कृतिक भूदृश्यों को सम्मिलित किया जाता है।

जैव वैज्ञानिकों ने पर्यावरण को भौतिक एवं भौगोलिक के सन्दर्भ में प्रयोग किया है। उनके अनुसार पर्यावरण भौतिक तत्वों. दशाओं एवं प्रभावों का दृश्य तथा अदृश्य समुच्चय है जो जीवों को आवृत्त करते हुए उनकी क्रियाओं को प्रभावित करता है और स्वंय भी उनसे प्रभावित होता है। पर्यावरण का सामान्य अर्थ समस्त परिवृत्त से है जिसमें प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों दशाएँ सम्मिलित होती हैं। पर्यावरण प्रकृति का ही पर्याय है यह एक विशाल मशीन की तरह है। इस विराट मशीन रूपी पर्यावरण का हर कण. बूँद और छोटा बड़ा जीवन इसका कलपुर्जा है। प्रकृति का अनुशासित व संतुलित रूप है स्वच्छ पर्यावरण।

पर्यावरण के प्रकार 1. स्थलमण्डलीय पर्यावरण- इस पर्यावरण में हम पृथ्वी तल पर भौतिक रुप से दिखाई देने वाले सभी तत्वों को शामिल करते हैं जैसे पर्वत. पठार. मैदान. वनस्पति ।

2. जलमण्डलीय पर्यावरण- इस पर्यावरण में हम जल या समुद्र. नदी. जल महासागर के भीतर पाए जाने वाले तत्व तथा जीव एवं सभी स्थलाकृतियों को शामिल करते हैं।

3. वायुमण्डलीय पर्यावरण- इस पर्यावरण में हम वायु में पाए जाने वाले सभी जीव-जन्तु तत्व. गैसों आदि की सांद्रता को शामिल करते हैं।

4. वानस्पतिक पर्यावरण- इस पर्यावरण में पृथ्वी के तल एवं जल दोनों में हवाईज गाली वनस्पति का अध्ययन करते हैं।

5. जन्तु पर्यावरण- इस पर्यावरण में हम समस्त जीवधारियों चाहें वे जल. थल. वायु. अग्नि किसी भी मंडल में रहने वाले हों सभी का अध्ययन करते हैं तथा जन्तु पर्यावरण के अन्तर्गत पुनः सामाजिक. आर्थिक और सांस्कृतिक पर्यावरण का सृजन होता है।

- सामाजिक पर्यावरण - सभी जीवधारी अपने-अपने स्तर पर सामाजिक समूह संगठित करते हैं. जिससे उनके जीवन-यापन की प्रक्रिया सुचारु रूप से चल सकें। मनुष्य तो सभी जीवों में श्रेष्ठतम प्राणी है. यहाँ तक कि क्षुद्र. दीमक और मधुमक्खी इनका भी अपना सामाजिक संगठन होता है।
- आर्थिक पर्यावरण -सभी जीवधारियों द्वारा अपने निर्वाह तथा संवर्धन व विकास के लिए भौतिक पर्यावरण से कुछ न कुछ प्राप्त करने की प्रक्रिया के माध्यम से आर्थिक पर्यावरण का निर्माण होता है। मनुष्य सभी जीवधारियों में सबसे अधिक बुद्धिमान है किन्तु वह जितना ही बुद्धिमान है उतना ही स्वार्थी और लोभी भी और इसी लोभ व स्वार्थ के कारण अधिक आर्थिक लाभ पाने की अंतृप्त पिपासा लिए हुए कभी-कभी भौतिक पर्यावरण को काफी क्षति भी पहुँचाता है।
- सांस्कृतिक पर्यावरण सभी जीवधारियों में कुछ न कुछ सूझ-बूझ अवश्य होती है किन्तु मनुष्य श्रेष्ठतम सूझ-बूझ और विवेक वाला प्राणी है।

पर्यावरण प्रदूषण :- प्रदूषण का सामान्य अर्थ होता है विकृति। इसे विकृति. गन्दगी. मलिनता. अपवित्रता. विष. पापाचार. अप्रतिष्ठा आदि भी कहा जा सकता है. परन्तु पर्यावरण के सन्दर्भ में मेरा अभिप्राय है तात्कालिक भौतिक सुख-सुविधा के लिए मानवनिर्मित नानाविधि संसाधनों. यंत्रों वाहनों. आहार-विहारों. आचार-विचारों. उपासना पद्धतियों. वाग्व्यवहारों. सामाजिक व्यवहारों आदि से है। यह पर्यावरण प्रदूषण आज के वैज्ञानिक युग की उपज है-

"सृष्टौ स्थितौ विनाशे च नृविज्ञैर्वहुनाशकम् ।

पंचतत्वविरूद्ध यत्साधितं तत्प्रदूषणम्।।"

पर्यावरणकाव्यम् – 11

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार

1 वायु प्रदूषण- वायु प्रदूषण रसायनों. सूक्ष्म पदार्थ. या पदार्थ के वातावरण में मानव की भूमिका है. जो मानव को या अन्य जीव जन्तुओं को प्रदूषण के कारण मौतें और श्वास रोग होते हैं। यह वातावरण एक जटिल. गतिशील. प्राकृतिक वायु तंत्र है जो पृथ्वी ग्रह पर जीधन के लिए आवश्यक है। वायु प्रदूषण के कारण समताप मंडल से हुए ओजोन रिक्तीकरण को बहुत पहले से मानव स्वास्थ्य के साथ के पारिस्थितिकी तंत्र के लिए खतरे के रुप में पहचाना गया है।

2 जल प्रदूषण - जल प्रदूषण से अभिप्राय जल निकायों जैसे कि झीलों. नदियों. समुद्रों और भूजल के पानी के संदूषित होने से है। जल प्रदूषण. इन जल निकायों के पादपों और जीवों को प्रभावित करता है और सर्वदा यह प्रभाव न सिर्फ इन जीवों या पादपों के लिए अपितु सम्पूर्ण जैविक तंत्र के लिए विनाशकारी होता है।

3 मृदा प्रदूषण - मृदा में होने वाले प्रदूषण को मृदा प्रदूषण कहते हैं। यह मुख्यतः कृषि में अत्यधिक कीटनाशक का उपयोग करने या ऐसे पदार्थ जिसे मृदा में नहीं होना चाहिए. उसके मिलने पर होता है। जिससे मृदा की उपज क्षमता में भी बहुत प्रभाव पड़ता है। इसी के साथ उससे जल प्रदूषण भी हो जाता है।

4 प्रकाश प्रदूषण - प्रकाश प्रदूषण जिसे अंग्रेजी में फोटो पॉल्यूशन या लुमिनस पॉल्यूशन के रूप में जाना जाता है. अत्यधिक या बाधक कृत्रिम प्रकाश होता है।

ध्वनि-प्रदूषण - ध्वनि प्रदूषण या अत्यधिक शोर किसी भी प्रकार के अनुपयोगी ध्वनियों को कहते हैं. जिससे मानव और जीवजन्तुओं को परेशानी होती है। इसमें यातायात के दौरान उत्पन्न होने वाला शोर मुख्य कारण है। जनसंख्या और विकास के साथ ही यातायात और वाहनों की संख्या में भी वृद्धि होती है. जिसके कारण यातायात के दौरान होने वाला ध्वनि प्रदूषण भी बढ़ने लगता है।

पर्यावरण संरक्षण को लेकर वेदों में भी वर्णन मिलता है- सन्देश है कि मानव शुद्ध वायु में श्वास ले. शुद्ध जल का पान करे. शुद्ध अन्न का भोजन करे. शुद्ध मिट्टी में खेले. शुद्ध भूमि में खेती करे। इसके लिए आवश्यक है पर्यावरण का स्वच्छ होना. पवित्र होना।

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।

प्रणे आयूंषि तारिषत्।।

ऋ. 10/186/1

वायु हमें ऐसा औषध प्रदान करे. जो हमारे हृदय के लिए शांतिकर एवं आरोग्यकर हो. वायु हमारे आयु के दिनों को बढ़ाये।

प्राचीन ऋषियों और मनीषियों ने नदियों. वनों. पृथ्वी. वायु. जल और अग्नि को पवित्र मानकर उनकी रक्षा करने का संदेश दिया है।

ॐ द्यौः शांतिरंतरिक्षं शांतिः

पृथ्वीः शांतिरापः शांतिरोषधायः शांतिः।

वनस्पतयः शांतिर्विश्वेदेवः शांतिर्ब्रह्म शांतिः

सर्वं शांतिः शांतिरेव शांतिः सा मां शांतिरेधिः।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

यजुर्वेद - 1.89.1

इस मंत्र में यह प्रार्थना की गई है कि प्रकृति के हर तत्व — आकाश. वायु. जल. पृथ्वी. वनस्पतियां — सभी में शांति का सामंजस्य बना रहे। जब बाहरी और आंतरिक शांति स्थापित होगी. तभी वास्तविक आनंद की प्राप्ति होगी। परम ब्रह्म में शांति का प्रवाह हो. और वह शांति हम सबकी आत्मा में भी बसे। शांति केवल व्यक्तिगत नहीं. बल्कि वैश्विक और सार्वभौमिक होनी चाहिए। जब प्रकृति. जीव-जंतु. समाज और आत्मा सबमें शांति होगी. तभी सच्ची आध्यात्मिक उन्नति संभव है।

माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः

अथर्ववेद (12.1)

अर्थात् पृथ्वी हमारी माता है. और हम उसके पुत्र हैं।प्रस्तुत मंत्र द्वारा भूमि को माता के समाना माना गया है अर्थात् धरती हमारी मता हैं और हम उसके पुत्र हैं भूमि के प्रति कर्त्तव्यबोध और उसकी रक्षा के प्रति समाज को जागरूक कर पृथ्वी को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण वातावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए मानव जीवन को प्रकृति संरक्षण के लिए प्रेरित किया गया है।

संस्कृत साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण का व्यापक उल्लेख मिलता है। मेघदूतम् में वर्णित पर्यावरण संरक्षण " में प्रकृति का अद्भुत और सूक्ष्म चित्रण किया गया है। इसमें यक्ष. जिसे अपने प्रियतमा से मिलने के लिए बादल (मेघ) को दूत बनाकर संदेश भेजता है. सम्पूर्ण मार्ग में प्रकृति के अप्रतिम सौंदर्य का वर्णन किया गया है।

आलोकित पर्वतीय सौंदर्यः - संध्या के समय बादल केसर के रंग से प्रतिस्पर्धा करते हुए चमकते हैं. और पर्वत की चोटियों पर ठहरकर वातावरण को शीतल करते है। प्रस्तुत श्लोक में पहाड़ों पर मंडराते हुए रंगीन बादलों का सुंदर चित्रण किया है. जो सूर्यास्त के समय स्वर्णिम आभा बिखेरते हैं। अमरकंटक के जंगलों में घूमते हुए पशु. हरियाली में लीन होते हैं. और पक्षी अपने साथियों के साथ आनंद से भर जाते हैं। प्रकृति की गोद में निर्जन वनों का जीवंत वर्णन मिलता है. जहां पशु-पक्षी प्राकृतिक लय में मग्न होते हैं। गंगा और उसकी शीतल जलधारा से उठने वाली मृदु. वायु. फूलों की खुशबू के साथ शरीर को सुखद स्पर्श देती है। कालिदास जी ने यहां गंगा के जल की पवित्रता. उसकी शीतलता और वातावरण की सुगंध को अत्यंत कोमल भाव से प्रस्तुत किया है। वर्षा ऋतु में कर्णिकार के वृक्ष फूलों से लदे होते हैं. और ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश से पुष्पवर्षा हो रही हो। बारिश के बाद खिले हुए फूलों और ताज़गी से भरी धरती की सुंदरता का मनोहारी चित्रण किया गया है। रामगिरि पर्वत के बादल नीले रंग में ढके हुए हैं. जैसे किसी प्रेमिका को धीरे से आकाश ने अपनी गोद में भर लिया हो। रामगिरि के प्राकृतिक सौंदर्य को कालिदास ने एक प्रेमी-प्रेमिका के मिलन के रूपक के माध्यम से चित्रित किया है।

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।

तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोक चतुष्टयम् ।।

"अभिज्ञानशाकुंतलम्" में प्रकृति के प्रति अत्यधिक प्रेम और संरक्षण का गूढ़ संदेश छिपा है। प्रस्तुत नाटक में प्रकृति को एक जीवंत. संवेदनशील और पालक रूप में चित्रित किया गया है। शाकुंतला और कण्व ऋषि का प्रकृति के साथ सम्बन्ध इतना घनिष्ट है कि यह नाटक समाज को पर्यावरण संरक्षण की ओर आकृष्ट करता है। वृक्षों को संतान की तरह पालने वाले और बेलें पेड़ों पर पल्लवों की माला बनकर लिपट जाती हैं. वैसे ही शाकुंतला ने आश्रम में पेड़ों को माता की तरह देखभाल की है। पेड़ों को संतान की तरह पालना और उनका पोषण करना समाज के लिए महत्वपूर्ण पर्यावरण संदेश है। शकुंतला का वृक्षों के प्रति प्रेम एवं स्नेह अत्यंत घनिष्ट सम्बन्ध है कि पेड़ सिर्फ संसाधन नहीं. बल्कि जीवित प्राणी हैं।

"अभिज्ञानशाकुंतलम्" और "कुमारसंभव" में जंगल. नदियां. पर्वत और पशु-पक्षियों का सजीव वर्णन मिलता है. मानो वे जीवित हों। "मेघदूत" में बादलों को दूत बनाकर कालिदास ने प्रकृति और मानव हृदय के बीच की गहराई को दर्शाया है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा

हिमालयो नाम नगाधिराजः।

(कुमारसंभव. 1.1)

प्रस्तुत श्लोक में हिमालय को देवता की आत्मा कहा गया है. जो पर्वतों की पवित्रता और पर्यावरण के महत्व को दर्शाया गया है।

धर्मग्रंथों में पर्यावरण संरक्षण :- मनुस्मृति और पुराणों में पर्यावरण संरक्षण द्वारा वृक्षों को काटने पर रोक एवं. जल स्रोतों को स्वच्छ रखने की हिदायत. और जीव-जंतुओं के प्रति दया भाव की शिक्षा दी गई है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि जो एक वृक्ष लगाता है. वह हजारों प्राणियों को जीवनदान देता है।

दशकूपसमा वापी. दशवापी समो ह्रदः।

दशह्रदसमः पुत्रो. दशपुत्रसमो द्रुमः॥

अथर्ववेद

(अर्थ: दस कुओं के बराबर एक तालाब. दस तालाबों के बराबर एक झील. दस झीलों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है।)

आधुनिक समय में. जब जलवायु परिवर्तन. वनों की कटाई. और प्रदूषण की समस्या बढ़ रही है. संस्कृत साहित्य हमें सिखाता है कि प्रकृति के साथ संतुलन बनाए बिना मानवता का कल्याण संभव नहीं। वृक्षारोपण. जल संरक्षण. और जैव विविधता की रक्षा केवल वैज्ञानिक जरूरत नहीं है. बल्कि यह हमारी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत का हिस्सा है।

इसलिए. अगर हम संस्कृत साहित्य की शिक्षाओं को अपनाएं. तो न केवल पर्यावरण को बचा सकते हैं. बल्कि धरती को पुनः हरियाली और समृद्धि से भर सकते हैं। जैसा कि उपनिषदों में कहा गया है: **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म।"** अर्थात् — यह सम्पूर्ण सृष्टि ही ब्रह्म (दिव्य चेतना) है। जब हम प्रकृति को ईश्वर का रूप मानकर उसकी रक्षा करेंगे. तभी हम सच्ची मानवता की ओर कदम बढ़ा पाएंगे।

निष्कर्ष :- पर्यावरण सुरक्षा और उसमें संतुलन हमेशा बना रहे इसके लिए हमें जागरुक और सचेत रहना होगा। प्रत्येक प्रकार के हानिकारक प्रदूषण जैसे जल. वायु ध्वनि इन सब खतरनाक प्रदूषण से बचने के लिए अगर हम धीरे-धीरे भी कोई उपाय करें तो हमारी पृथ्वी की सुंदरता जो कि पर्यावरण है उसे बचा सकते हैं और अपने जीवन को भी स्वस्थ और स्वच्छ रूप में प्राप्त कर सकते है। पर्यावरण संरक्षण विश्व में प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य रूप से घोषित करना चाहिए पर्यावरण है तो हमारा जीवन है।

भारतीय विश्व के सभी मुख्य धर्म पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षा हेतु अति संवेदनशील रहे है। इनके लम्बे इतिहास में वनस्पति. वन्य जीव. वायु. जल. आकाश. प्रकाश अग्नि का ही उल्लेख नहीं मिलता बल्कि इनका उचित प्रयोग और उनसे होने वाले अप्रत्यक्ष लाभों का विवरण भी प्राप्त होता है परन्तु आज वृक्षों की इतनी कम मात्रा होने पर कवि हृदय-विहल हो उठते थे और धरती से पूछते थे- पत्तों के समान ही जिनमें पुष्प होते थे और पुष्पों के समान ही जिनमें प्रचुर फल लगते थे और फल से लदे होने पर भी जो सरलता से चढ़ने योग्य होते थे. हे माता पृथ्वी! ब्ता वे वृक्ष अब कहाँ गए।

इसलिए हम सबको यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखनी होगी कि हम एक भी वृक्ष न काटें बल्कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में एक-एक वृक्ष जरूर लगाये-

"वृक्ष नहीं कटने पाएँ.

हरियाली न मिटने पाए.

लेकर एक नया संकल्प.

हर एक दिन नया वृक्ष लगाएँ।"

- गूगल

Javitriyadav2400062@dei.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 149-155

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पौराणिक दृष्ट्या भारतवर्षम् : एकं संक्षिप्तावलोकनम्

शिवराज मीणा

सहायक आचार्य, संस्कृत, हरिअनत इंटीग्रेटेड महाविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा।

सारांश :-

भारतभूमिः खलु अस्माकं मातृभूमिः। सुजला सुफला शस्यश्यामला चेयं मातृभूमिः परमादरणीया। विश्वदरवारे मातृभूमिरियं भारतवर्षं नाम्ना सुविदिता। न केवलमधुना अपितु सुप्राचीनकालादेव देशस्यास्य महती गरिमा चिरविश्रुता। अस्माकं प्राचीन ग्रन्थनिचयेन ईदृशी प्रतिच्छविः प्रकटिता। तत्र पुराण साहित्यस्य भूमिका खलु प्रशंसनीया। भारतीय–प्राचीनेतिहासस्य अन्धकारे युगे पुराण साहित्यमेवा लोक स्वरूपम्। पुराण साहित्ये नैव प्राचीन भारतस्य नामकरण–परिसीमा–विभाजन–कर्मभूमित्व–प्रशस्ति–भौगोलिकादयः विषयाः सम्यकतया चित्रिताः। एषामालोचनं लेखेऽस्मिन् नातिविस्तरेणोपस्थापितम्।

कुट शब्दा :-

भरतः, भारतम्, पुराणम्, सप्तद्वीपापृथिवी, कर्मभूमिः, वेदः, स्मृतिः, भुवनकोशः, जम्बुद्वीपः, सप्तसमुद्राः, स्वर्गभूमिः, उपद्वीपाः।

प्रस्तावना :-

"अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण! रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।"

रामायणप्रोक्तेयं रामोक्तिः सर्वैः विश्रुता। यस्यां भूमौ मनुष्यो जन्म गृह्णाति, यस्याः अन्नेन जलेन वायुना च परिपुष्टो भवति तां भूमिं प्रति मनुष्याणां नैसर्गिकी आसक्तिः स्वाभाविकी। जननीवत् जन्मभूमिरपि सर्वेषां जनानां मान्या पूज्या आदरणीया च। रम्येयं जन्मभूमि तावत् अस्माकं पुण्या भारतभूमिः। अखिले संसारे या भारतवर्षं नाम्ना सुविदिता। यत्र रमणीयाः रात्रयः, शोभनानि दिनानि, स्वर्णिमः प्रत्यूषः, विलम्बमयी रागरञ्जिता सन्ध्या, नक्षत्रमण्डितमुन्मुक्तं नभोमण्डलम्, रम्याः पर्वताः, विमलोदकाः गङ्गा–गोदावर्यादयः पुण्यसरितः, मनोमुग्धारण्यानि, उर्वरा भूभागा, अन्नबहुलानि क्षेत्राणि, सदैव अपरूपा प्रकृति च– इत्येवमस्माकं रम्यदेशः। देशोऽयं प्राणेभ्योऽप्यधिकतरः प्रियः पृथिव्याः स्वर्गः देवानां पूण्यभूमिः च। भारतवर्षेऽस्मिन् जातमनुष्याणां जीवनं खलु सदा सार्थकम् मन्यते। प्राचीने काले भारतभूमिरियं कीदृशी बभूव? इति आकाङ्खा सर्वान् समाकर्षति। सम्यगस्यानुधावनार्थम् अस्माकं प्राचीनग्रन्थान् प्रति दृष्टिनिक्षेपः करणीयः। यस्य प्रथमे तु वेद एव आगमिष्यति। यतः वेदात् सर्वं प्रसिद्धति। तदनन्तरं स्मृतीनां प्रसङ्ग उपस्थितो भविष्यति। वेदस्मृत्योरनन्तरं पुराणानामेवास्तिकजगति प्रामाण्यमङ्गीक्रियते।

संस्कृतवाङ्मये पुराणानामस्ति एकं प्रशस्यस्थानम्।

यथोक्तं महाभारते– ''इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपवृंहयेत्।'' (महा. आदिपर्व १.२६७)

यथा दिवसे प्रकाशो भगवता भास्करेण भवति, रात्रौ प्रकाशश्चन्द्रमसा जायते, गृहान्धकारो दीपेनापनीयते तथैव प्राचीनेतिहासस्य ज्ञानं तु पुराणवचनेनैव सम्भवितुमर्हति। अस्माकं प्राचीन भारतवर्षस्यापि सम्यग् ज्ञानप्रदर्शने पौराणिक ग्रन्थः महान् सहायकः। पुराण शास्त्रानुसारं अस्माकं पृथिवी प्रकारद्वयेन विभक्ताऽस्ति। सप्तदीपा पृथिवी, चतुर्द्विपा वा। सप्तद्वीपापृथ्वीति सिद्धान्तानुसारमस्मिन् समस्ते भूमण्डले सप्त द्वीपाः सन्ति, ते च द्वीपा एकैकेन समुद्रेणावृताः सन्ति।

यथोक्तं विष्णुपुराणे–

''जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो द्विज।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चौव सप्तमः।।
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः।
लवणेक्षु-सुरा-सर्पि-दधि-दुग्ध-जलैः समम्।।''(विष्णु पु. २.२.५-६)

तत्र प्रथमद्वीपः तावत् जम्बूद्वीपः। द्वीपेऽस्मिन् नव वर्षाणि (खण्डानि) सन्ति– १. भारतवर्षम् २. किंपुरुवर्षम् ३. हरिवर्षम् ४. इलावृत्तवर्षम् ५. रम्यकवर्षम् ६. हिरण्मयवर्षम् ७. उत्तरकुरुवर्षम् ८. भद्राश्ववर्षम् ९. केतुमालवर्षं चेति। अत्र भारतवर्षम् गुरुत्वपूर्णमेकं वर्षम्। अस्य विस्तृतवर्णनं पुराणसाहित्ये बहुत्र उपलभ्यते। लेखेऽस्मिन् संक्षिप्तरूपेण तदुपस्थापितम्।

भारतशब्दस्य व्युत्पत्तिः तथा अर्थनिरूपणम् –

'भृञ् भरणे' इति भृ–धातोः (भ्वादि० उ० अ), 'डुभृञ् धारणपोषणयो' इति भृ–धातोः (जुहो० प० अ) वा ''भृमृदृशियजिप र्विपच्यमितमिनमिहयेर्भ्योऽतच्'' (उणादि ३.१११) सूत्रेण अतच्–प्रत्यये 'भरत' शब्दः निष्पद्यते। ऋग्वेदे ''भरतस्य सूनवः''(ऋ. २.३६.२) इत्यस्य मन्त्रस्य सायणभाष्ये 'भरतस्य जगतो भर्तू रुद्रस्य पुत्राः' इति 'भरत' शब्दस्यार्थः विद्यते। अभिधानकोषे शब्दस्यास्य बहुविधा अर्थाः दृश्यन्ते। तन्मध्ये 'नटः', 'मुनिविशेषः', 'दौष्मन्तिः', 'रामानुजः', 'शवरः', 'तन्तुवायः' इत्येवमर्थाः सुप्रसिद्धाः। भागवतपुराणानुसारेण ऋषभसुतः आसीत् भरतः[2]। वायुपुराण–मतानुसारं शकुन्तलापुत्रस्यापि नाम आसीत् भरतः। यतश्चोक्तं तत्र–

'शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम्।''(वायु. ९९.१३३)

एवं 'भरतस्य (व्यक्ति विशेषस्य) इदम्'– इत्यर्थे ''तस्येदम्य'' (४.३.१२०) सूत्रेण अण्–प्रत्ययेन भारतशब्दः निष्पन्नो भवति। अत्र भारतशब्दः खलु देशविशेषवाचकः। भारतशब्दस्यास्य देशवाचकत्वं सर्वत्र सुप्रसिद्धमस्ति। यथा च विष्णुपुराणे समुद्घोषितम्–

''उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चौव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।''

भारतवर्षस्य नामकरणं तात्पर्यं च :–

भारतभूमिः खलु अस्माकं मातृभूमिः। विश्वदरवारे अस्माकं देशस्य महती महिमा सर्वथा गीयते। अतः अस्माकं मातृभूमेः नामकरणविषये भारतीयाणामाकाङ्खाऽपि स्वाभाविकी। भागवतपुराणानुसारं भारतवर्षस्य प्राचीनं नाम आसीत् अजनाभम्[3]। तथा च वायुपुराणे अस्य पूर्वतनं नाम हैमवर्षं[4] कथितम्। उत्तरवर्तिकालिनसमये कालक्रमेण भारतवर्षं नाम सञ्जातम्। पौराणिकदृष्ट्या भारतवर्षस्येवं नामकरणविषयेऽस्ति काचित् विप्रतिपत्तिः। मुख्यतया तत्र पक्षत्रयं

परिदृष्टम्। तद् यथा–

१. विविधपुराणानुसारं अखिलविश्वस्य प्रथमपुरुष आसीत् स्वायम्भुवमनुः, तस्य पुत्र राजा प्रियव्रतः, प्रियव्रतस्य सुतो बभूव आग्नीध्रः, तत्पुत्रो जातो नाभिः, नाभिपुत्रोऽभवत् ऋषभदेवः। अस्य ऋषभदेवस्य शतपुत्रा आसन्। तेषु ज्येष्ठ आसीत् सर्वगुणसम्पन्नः भरतः। पिताऋषभदेवः ज्येष्ठपुत्रं भरतं सिंहासने संस्थाप्य वानप्रस्थाश्रमं जगाम। वनगमनसमये तेन दक्षिणदिशि वर्तमानं हिमवर्षं भरताय समर्पितम्। तत एव विद्वांसः तद्वर्षं भरतनाम्ना भारतवर्षं कथयन्ति। श्रीमद्भागवते वायुपुराणे मार्कण्डेयादिपुराणे च मतस्यास्य समानता परिदृश्यते। यथा श्रीमद्भागवते उक्तम्–

"प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवस्य यः।
तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिः ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः।।
अवतीर्ण पुत्रशतं तस्यासीद् ब्रह्मपारगम्।
तमाहुर्वासुदेवाशं मोक्षधर्मविवक्षया।।
तेषां वै भारतः श्रेष्ठो नारायण-परायणः।
विख्यातं वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमुत्तमम्।।"(श्रीमद्भा. ११.२.१५-१७)

वायुपुराणेऽपि लिखितम् –

"हिमाह्वं दक्षिणं वर्ष भरताय न्यवेदयत्।
तस्मात्तद्भरतं वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः।।"(वायु. ३३.५२)

मार्कण्डेयपुराणेऽपि प्रायमेवानुरूपं कथितम्–

"हिमाह्वं दक्षिणं वर्ष भरताय ददौ पिता ।
तस्मात्तु भारतं वर्ष तस्य नाम्ना महात्मनः।।"(मार्कण्डेय. ५.४१)

२. जगतः सर्वं प्रथमं या मानवी सृष्टिः सा भारतवर्षे एव जाता। ततः क्रमशः अन्यत्रापि विस्तारिता। तदानीमत्र मनुर्हि सृष्टेरधिपतिरासीत्। सर्वां सृष्टिं मनुरेव बिभर्त्ति स्म। तदा सर्वासां प्रजानां भर्त्ता तथा धारकः पालकश्च मनुरासीत्। प्रजानां भरणात् मनुर्हि भरतशब्देन प्रसिद्धो बभूव। तथा तन्नाम्नैवास्य देशस्य नाम भारतमिति निगद्यते। यथाह वायुपुराणे–

"भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते।
निरुक्तवचनाच्चौव वर्ष तद् भारतं स्मृतम्।।"(वायु. ४५/७६)

३. अपरं मते, दौष्यन्तस्य शाकुन्तलेयस्य राज्ञः भरतस्य नाम्ना देशस्यास्य भारतं भारतवर्षं वेति नामकरणं जातमिति। यथोक्तं वायुपुराणे :–

"चक्रवर्ती ततो जज्ञे दौष्यन्ति र्नृपसत्तमः।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम्।।"(वायु. ९९.१३३)

एवं रूपेण विविधपुराणेषु भारतस्य नामकरणविषये पक्षत्रयं सम्यकतया उपस्थापितम्। तथापि ऋषभदेवपुत्रस्य भरतस्य नाम्नैव भारतवर्षस्य नामकरणमिति मतं प्रशस्यतरं विद्वद्भिः च समादृतम्।

भारतवर्षस्य परिसीमा तथा विभाजनम् :-

भारतवर्षस्य सम्प्रति या सीमा दृश्यते तस्या बहुगुणविस्तृता आसीत् प्राचीनकालिनसमये। पौराणिकयुगेऽस्य

पूर्वपश्चिमसीमाद्वयमतिविस्तृत मासीत्। भारतस्य पूर्वसीमा चीनसागरं यावत् आसीत्, यत्र ब्रह्मदेश–श्यामप्रभृतयः देशाः अन्तर्भूक्ताः आसन्। पश्चिमसीमा भूमध्यसागरं लालसागरं वा पर्यन्तम् विस्तृतमासीत्। भारतस्य उत्तरसीमा हिमवतपर्वतं यावदासीत्। दक्षिणस्यां दिशि अरबसागरं पर्यन्तमासीत्। एवं प्रमाणमस्माकं प्राचीनग्रन्थे बहुत्रोपलभ्यते। यथोक्तं वायुपुराणे –

"उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दाक्षिणं च यत्।
वर्षं तद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा।।"(वायु. ४५.७५)

पद्मपुराणस्य क्रियायोगसागरखण्डे उच्यते –

"हिमाद्रिदक्षिणं यद्वै विन्ध्याद्रेरूत्तरं तथा।
आहुस्तद् भारतं वर्षं शुभाशुभफलप्रदम्।।"(पद्मपु. ७.२)

आर्यावर्तं निर्दिशन्मनुरपि आह –

"आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः।।"(मनुसंहिता २.१२)

कुमारसम्भवे महाकवि–कालिदासेनापि उक्तम् –

"अस्त्युरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।"(कुमार. १.१)

विस्तृतेयं समस्ता भूमिः शास्त्रे लोके च भारतं नाम्ना प्रसिद्धा आसीत्। परन्तु अधुना भारते भूमिरियमतीव संकीर्णता प्राप्ता।

विभाजनम् :-

पुराणानुसारं अखिलं भारतवर्षं नवखण्डैः विभक्तमासीत्। तद् यथा– १. इन्द्रद्वीपः २. कसेरुद्वीपः ३. ताम्रपर्णी ४. गमस्तिमान् ५. नागद्वीपः ६. सौम्यद्वीपः ७. गान्धर्वद्वीपः ८. वरुणद्वीपः ९. समुद्रद्वीपश्चेति। एषु नवखण्डेषु भारतवर्षं परिवृतम्। यथोक्तं मत्स्यपुराणे –

"भारतास्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निशामय।
इन्द्रद्वीपः कसेरूश्च ताम्रपर्णी गमस्तिमान्।।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारूणः।
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।।"(म.पु. ११३.७–८)

वामनपुराणे नवमखण्डस्य नाम कुमारद्वीपः एव निर्दिष्टः। मत्स्यपुराणे अस्य नवमखण्डस्य विस्तारः कन्याकुमारीत आरभ्य गङ्गोत्तरीपर्यन्तं दक्षिणोत्तरं सहस्रयोजनपरिमितं वर्ण्यते। अतः तत्रोक्तम् –

"योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः।
आयतस्तु कुमारीतः गङ्गायाः प्रवहावधिः।।"(म.पु. ११३.१०)

अस्य कुमारीद्वीपस्य पूर्वोत्तरे सीम्नि किरातानां पश्चिमोत्तरे यवनानां मध्यभागे च ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शुद्राणां निवासो विद्यते। यथोक्तं विष्णुपुराणे–

"पूर्वे किराता यस्य स्युः पश्चिमे यवनाः स्थिताः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शुद्राश्चभागशः।।"(वि.पु. २.३.८)

भारतवर्षस्य इन्द्रादिद्वीपातिरिक्ता अष्टौ उपद्वीपा अपि पुराणेषु प्रोक्ताः सन्ति। तद् यथा– १. स्वर्णप्रस्थः २. चन्द्रशुक्लः ३. आवर्तनः ४. रम्यकः ५. मन्दहरिणः ६. पाञ्चजन्यः ७. सिंगलः ८. लङ्काश्चेति। यथोक्तं श्रीमद्भागवते– ''जम्बुद्वीपस्य च राजन् ! उपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सागरात्मजैरश्वान्वेषणे इमां महीं परितो निरवनिद्भरुपकल्पितान्। तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रम्यको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंगलो लङ्केति।''(श्रीमद्भागवते ५.१६. २६–३०)

भारतस्य कर्मभूमित्वम् :-

भारतभूमौ जन्म गृहीत्वा मानवाः शुभकर्मभिः स्वर्गं गन्तुं शक्नुवन्ति तथा परमपुरुषार्थं मोक्षं वा आप्नुवन्ति। भारतारिक्तानि अष्टौ अन्यानि वर्षाणि भोगभूमय एव सन्ति। तत्र प्राणिनां कर्मकृते विधानं नास्ति। अतः पुराणेषु भारतवर्षमेतद् मोक्षप्राप्तिशीलानां पुंसां कृते कर्मभूमिः प्रोक्ताऽस्ति। भारतभूमिः कर्मभूमिरित्यत्र विषये बहुनि वचनानि प्रायः सर्वत्रैव दृश्यन्ते। तेष्वत्र कतिपयानि–

१) **''कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्ग च गच्छताम्।**
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्म भूमौ विधीयते।।''(व.पु. २.३.२५)

२) **''अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।**
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः।।''(वि.पु. २.३.२२)

३) **''भारतं नाम यद्वर्ष दक्षिणेन मयोदितम्।**
तत् कर्मभूमिर्नान्यत्र संप्राप्तिः पुण्यपापयोः।।''(मार्कण्डेय. ५५.२१)

४) **''पृथिव्यां भारतं वर्ष कर्मभूमिरुदाहृता।''(ब्रह्मपु.२७.२)**
एवंरूपेण प्रायः प्रतिपुराणे एव भारतस्य कर्मभूमित्वं गीयते।

स्वर्गादपि गरीयसि भारतभूमिः –

स्वदेशं प्रति ऐकान्तिकोऽनुरागः मनुष्याणां स्वाभाविकः एव। प्राचीनकालादेव इयं धारा प्रवहमाना अस्ति। पुराणानुशीलने प्रतीयते यदस्माकं पूर्वजानां स्वदेशं प्रति कियदगाधं प्रेमासीत्। विष्णुपुराणानुसारं सहस्रजन्मपुण्योदयेन एव परमपवित्रे भारतवर्षे मानवानां जन्मग्रहण–सौभाग्यमुपतिष्ठते। यतश्चोक्तं तत्र–

''अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम्।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्।।''(विष्णुपु. २.३.२३)

स्वर्गस्था देवा अपि गायन्ति यत्, भारतवर्षीयाः जीवाः अस्मदपेक्षयाऽतिधन्या सन्ति। यथोक्तम् –

''गायन्ति देवाः खलु गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्।।''[5]

भारते समुत्पन्नास्ते मनुष्या धन्याः सन्ति, ये सुखपूर्वकं स्वेषु स्वेषु शुभकर्मसु प्रवृत्ताः सन्तः स्वर्गं मोक्षं च लभन्ते। यथोच्यते–

''आप्स्यन्ति धन्याः खलु ते मनुष्याः सुखैर्युताः कर्मणि सन्निविष्टाः।
जनुर्हि येषां खलु भारतेऽस्ति ते स्वर्गमोक्षोभयलाभवन्तः।।''[6]
एवंरूपेण पुराणदृष्ट्यौ भारतवर्ष स्वर्गादपि उत्कृष्टतरं प्रतीयते।

भारतवर्षस्य पौराणिकाधुनिकभूगलयोः साम्यम् :-

भौगोलिकविषयः सदा परिवर्तनशीलः। समयपरिवर्तनेन सह भौगोलिकस्थितेरपि निरन्तरं परिवर्तनं जायते। सहस्रवर्षपूर्वं यत्र महान्तः पर्वता आसन् तत्राद्य समुद्रा जाताः। यत्र च गभीराः समुद्रा आसन् तत्राद्य महान्तो गिरयो दृश्यन्ते। बहवो द्वीपाः समुद्रे विलीनाः, अनेके जलमयाः प्रदेशा जननिवासयोग्या जाता। अतः पौराणिकभूगोलेन सह वर्तमानभूगोलस्य साम्यदर्शनम् न तु सुकरम् अपितु दुष्करमेव। तथापि कानिचित् साम्यानि अद्यापि परिलक्षितानि। तद् यथा–

१. पुराणानुसारं सप्तद्वीपा पृथिवी क्षारेक्षुसुराघृतदधिदुग्धस्वादूदकैः सप्त समुद्रैरावृताऽसीत्। वर्तमानभूगोलशास्त्रे एषां समुद्राणां विभिन्नानि नामानि दृश्यन्ते । यथा– १. क्षारसमुद्रः (इण्डियान ओसेन) २. इक्षुसमुद्रः (सीमीर) ३. सुरासमुद्रः (अटलाण्टिक सागर) ४. घृतसमुद्रः (हडनस) ५. दधिसमुद्रः (अण्टार्टिका) ६. दुग्धसमुद्रः (ह्वाइट ओसन) ७.स्वादूदकसमुद्रः (रूमसागर)[8]। उभयस्य नामकरणसिद्धान्ते किञ्चित् साम्यं सर्वदा प्रतीयते।

२. पुराणेषु जम्बुद्वीपः सम्भवतः एशियायाः प्राचीनं नाम प्रतीयते[9]।

३. पुराणेषु उत्तरस्यां दिशि हिमालयपर्वात् दक्षिणे कन्याकुमारीपर्यन्तं प्राचीनभारतस्य या परिसीमा वर्ण्यते तत्र किञ्चिदपि वैलक्षणं नैव दृश्यते। वस्तुतः प्राचीनभारतस्य सीमा वर्तमानस्य बहुगुणा विस्तृता आसीत्।

४. पुराणानुसारं भारतस्य अष्ट उपद्वीपाः सन्ति। तद् यथा– १. स्वर्णप्रस्थः २. चन्द्रशुक्लः ३. आवर्तनः ४. रम्यकः ५. मन्दहरिणः ६. पाञ्चजन्यः ७. सिंगलः ८. लङ्काश्चेति। तत्र सिंगलः लङ्काचेति नामद्वयमधुनापि उपलभ्यते। एवंरूपेण पौराणिक भूगोलं साम्प्रतिककाले केनचित् परिवर्तनेन सह परिप्राप्यते।

उपसंहृतिः –

यद्यपि पुराणेषु भुवनकोशवर्णने भारतादन्यदेशानामपि रुचिरं वर्णनं विद्यते तथापि अस्य देशस्य महत् वर्णनं सर्वानाकृष्यते। अखिले भूमण्डले भारतवर्षसदृशो द्वितीयो देशः प्रशस्तो नास्ति। मानवजीवनस्य समुन्नतेर्यावन्ति कल्याणकारीणि कर्माणि सन्ति, तेषां बीजानि भारतवर्षे एव विद्यमानानि सन्ति। ऐहिक–पारलौकिक–सांस्कृतादिषु क्षेत्रेषु भारतवर्षं सर्वोत्कृष्टमुक्तमस्ति। भारतवर्षीयो मानवो न केवलं स्वर्गालोकभोगासक्तेभ्यो देवेभ्यो उत्कृष्टोऽस्ति अपितु भारतं कर्मभूमिमुक्त्वाऽस्य उदात्तमहत्त्वं सर्वदा गीयते। भारतवर्षस्य ईदृशं महत् चित्रं पुराणसाहित्ये एव परिप्राप्यते। अतएव पौराणिकदृष्ट्या भारतवर्षं सर्वकाले सर्वभूमण्डले च प्रशस्यतममस्ति– इत्यत्र न संशयः।

तथ्य सूत्राणि :-

1. 'पुराणपर्यालोचनम्' (समीक्षात्मक भागः) पृ. १७६।
2. ''प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वाम्भुवस्य यः।
   तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिः ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः।।''(भागवतपुराणम् ११.२.१५) ।
3. ''अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति।''(श्रीमद्भागवते ५.७.३)।
4. ''इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम्।''(वायुपुराणस्य उपोद्घातपादे ३४.८८)।
5. ग.पु.प्रे.क.२/६, वि.पु. २.३.२४, शि.पु.उ.स.१८.१६।
6. शिवपु. उ.स. १८.२०।
7. 'पुराणपर्यालोचनम्' इति ग्रन्थस्य चतुर्थपरिच्छेदे १६६ पृष्ठम्।

8. 'पुराणपर्यालोचनम्' (समीक्षात्मक भागः) पृ. १६६।
9. 'पुराणपर्यालोचनम' (समीक्षात्मकभागः) पृ. २००।

सन्दर्भ ग्रन्था :

1. उपाध्याय बलदेव श्रीनिवास रथ गङ्गाधर पण्डा च सम्पादकाः। संसकृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास। त्रयोदश खण्ड, पुराण। लखनऊ : उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, २००६।
2. उप्रैति थानेशचन्द्र सम्पा.। विष्णुमहापुराणम् (प्रथमभागः)। दिल्ली : परिमल पब्लीकेशन, २००३।
3. तर्करत्न पञ्चानन सम्पा.। गरुड़पुराणम्। कलिकाता : नवभारत पाब्लीशार्स, १४१६ वङ्गाव्दः।
4. तर्करत्न पञ्चानन सम्पा.। ब्रह्माण्डपुराणम्। कलिकाता : नवभारत पाब्लीशार्स, १४२१।
5. तर्करत्न पञ्चानन सम्पा.। मार्कण्डेयपुराणम्। कलिकाता : नवभारत पाब्लीशार्स, १४२१।
6. त्रिपाठी कृष्णमणिः। पुराणपर्यालोचनम् (समीक्षात्मक भागः)। वाराणसी : चौखम्बा सूरभारती प्रकाशन, १६७५।
7. शर्मा श्रीराम सम्पा.। वायुपुराणपुराण (प्रथमखण्डः)। वरला (उत्तरप्रदेश) : संस्कृति संस्थान, १६६७।

पता – 603, स्वराज एनक्लेव, बोरखेड़ा, कोटा, पिन – 324005

मो. 7597429188

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 156-166

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सुशासन एवं महिला सशक्तिकरण के दौर में राजस्थान के पंचायती राज में महिलाओं की स्थिति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

रामचंद्र सिंह (शोधार्थी)
डॉ. संजुला थानवी (एसोसिएट प्रोफेसर)
विधि विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

''अगर घर के किसी कोने में परिवार के सदस्यों की जानकारी के बिना दफन कोई पुश्तैनी खजाना अचानक मिल जाए, तो कितना बड़ा जश्न होगा। इसी तरह, महिलाओं की अद्भुत शक्ति निष्क्रिय पड़ी हुई है। अगर एशिया की महिलाएं जाग जाएं, तो वे दुनिया को चकाचौंध कर देंगी।''

– महात्मा गांधी

सार :–

पंचायती राज व्यवस्था को हमेशा से सुशासन प्राप्त करने का एक साधन माना जाता रहा है। 73वें संविधान संशोधन के कार्यान्वयन से बेहतर शासन की ओर बढ़ने और समाज में वंचित समूहों जैसे कि एससी, एसटी और महिलाओं को लाभ मिलने की उम्मीद है। महिला सशक्तीकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण कदमों में से एक में, भारत सरकार ने ग्राम–स्तरीय परिषदों या पंचायती संस्थाओं को एक संवैधानिक स्थान दिया है, जिससे महिलाओं के लिए पंचायती राज में 33 प्रतिशत सुरक्षित हो गया है। इसके अलावा, महिलाओं की औपचारिक शिक्षा पर कम ध्यान दिया गया, लेकिन महिलाओं को सशक्त बनाने की एक बड़ी प्रक्रिया की शुरुआत करने के लिए महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों में संगठित किया गया। आजकल, पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी समाज के साथ–साथ भारत की अर्थव्यवस्था के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण रही है।

वर्तमान अध्ययन ने पंचायती राज में महिलाओं के योगदान और उनके सामने आने वाली समस्याओं को समझने का प्रयास किया है। शोध पत्र में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन हैं। शोध पत्र राजस्थान में पंचायती राज विभाग की वार्षिक रिपोर्ट 2023 के माध्यम से एकत्र द्वितीयक आंकड़ों पर निर्भर है। अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के आरक्षण की स्वीकृति भारत में जमीनी स्तर की राजनीति में महिलाओं के प्रतिनिधित्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, लेकिन फिर भी महिलाओं को इस व्यवस्था में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

प्रमुख शब्द : पंचायती राज, पंचायती राज संस्था (पीआरआइ), सुशासन, महिला सशक्तिकरण, आरक्षण, प्रशिक्षण, सुशासन।

परिचय :–

'पंचायत'' का अर्थ है एक समूह, या परिषद, जो किसी विशेष क्षेत्र, जैसे कि एक गाँव या जिला, का प्रतिनिधित्व करता है। यह स्थानीय स्वशासन का एक रूप है, जिसमें निर्वाचित या मनोनीत सदस्य ग्राम विकास, कानून और व्यवस्था, और अन्य स्थानीय मामलों को देखने के लिए जिम्मेदार होते हैं। प्राचीन भारत में, पंचायतें या ग्राम सभाएँ, स्वशासी निकाय थीं जिनके अलग–अलग और सुपरिभाषित कार्य होते थे। पंचायत प्रणाली न केवल ग्रामीण समाज की आम इच्छा को दर्शाती थी, बल्कि उसके सामूहिक विवेक को भी दर्शाती थी। देश के बाकी हिस्सों की तरह राजस्थान में भी ग्राम पंचायतें थीं। भारत में, पंचायती व्यवस्था 1950 के दशक के अंत और 1960 के दशक की शुरुआत में शुरू की गई थी, जिसने पहले की पंचायती व्यवस्था को उसके पुराने गौरव पर लौटा दिया। भारत में पंचायती राज व्यवस्था को लंबे समय से उत्कृष्ट शासन के मॉडल के रूप में देखा जाता रहा है, और मजबूत शासन की संभावना ने 1993 के संवैधानिक सुधार को प्रेरित किया। लेकिन अब समय आ गया है कि संशोधनों से परे जाकर विभिन्न राजनीतिक और बौद्धिक मुद्दों पर ध्यान दिया जाए जो हमें पंचायती व्यवस्था की सुशासन आकांक्षाओं को साकार करने की अनुमति देंगे।

इस अध्ययन में, 77 प्रतिशत ग्रामीण श्रमिक और 18 प्रतिशत शहरी श्रमिक कृषि श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं, मजदूरी न्यूनतम है, और राजस्थान में काम करने की स्थितियाँ जलवायु कारणों से उपयुक्त हैं। कार्यप्रणाली में सहसंबंध, प्रतिगमन और क्वांटाइल प्रतिगमन का उपयोग किया गया। अध्ययन के निष्कर्ष में, क्वांटाइल प्रतिगमन का स्पष्ट परिणाम यह है कि साक्षरता दर और घरेलू उद्योग में महिला कर्मचारियों के अनुपात का सभी क्विंटाइल पर महत्वपूर्ण नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जो एक सतत क्वांटाइल है। (कौशिक ए., 2010) ने पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं पर अध्ययन किया है : चित्तौड़गढ़ जिला परिषद का एक केस स्टडी। इस सर्वेक्षण में चित्तौड़गढ़ जिले के भूतल पर स्थिति का एक अनुभवजन्य सर्वेक्षण शामिल किया गया है। अध्ययन ने पंचायती महिलाओं, राजनीतिक प्रोफाइल और परिवार पर निर्भर महिलाओं पर ध्यान केंद्रित किया है। अध्ययन की कार्यप्रणाली में महिलाओं का एक केस स्टडी है, जिन्होंने प्रश्नावली, साक्षात्कार और अवलोकन विधियों का उपयोग करके डेटा तैयार किया है। अध्ययन से यह बात सामने आई है कि महिलाओं की छवि के बारे में अच्छी बात यह है कि वे अपनी क्षमताओं के बारे में बहुत सकारात्मक और प्रबुद्ध दृष्टिकोण रखती हैं। उन्हें आर्थिक रूप से और क्षमता निर्माण के माध्यम से स्वतंत्र बनाने की आवश्यकता है। (कौल एस, 2009) वर्तमान अध्ययन पंचायती राज संस्था में महिलाओं की भागीदारी पर किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य पंचायत में महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों की भागीदारी की सीमा और उनके सामने आने वाली समस्याओं को जानना है।

अध्ययन की कार्यप्रणाली ने दो जिलों से 33 महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों के नमूना आकार पर विचार किया है। विभिन्न ब्लॉकों से नमूने का चयन करने के लिए एक उद्देश्यपूर्ण नमूनाकरण तकनीक को अपनाया गया था। साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने के लिए उपकरण का उपयोग किया गया है। अध्ययन से पता चला है कि न तो आरक्षण और न ही पंचायती व्यवस्था में महिलाओं की वास्तविक उपस्थिति गाँव में महिलाओं की समस्याओं के प्रति अधिक संवेदनशील है। निर्वाचित महिलाओं के साथ हमेशा सम्मान का

व्यवहार नहीं किया जाता है। (मोहंती, 2005) अध्ययन भारत में महिलाओं और पंचायतों पर आधारित है : भारत में नई महिलाओं और पंचायतों का निर्माण। अध्ययन का उद्देश्य महिलाओं के जीवन पर पंचायती के प्रभाव का विश्लेषण करना है जो अविश्वसनीय रूप से विविध था। पंचायती राज व्यवस्था में प्रवेश को ''मौन क्रांति'' की शुरुआत कहा जाता है। इन प्रणालियों ने गांव में महिलाओं के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन को कई तरीकों से प्रभावित किया है, जैसा कि नीचे दिखाया गया है। अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि प्रयोग ग्राम परिषद या पंचायत को शक्ति के एक मजबूत हस्तांतरण के रूप में किए गए थे, जो पूरे गांव सहित क्षेत्रीय विकास के लिए जिम्मेदार हैं।

शोध पद्धति :-

शोध पद्धति शोध अध्ययन में वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक शोध है। इस अध्ययन में राजस्थान और भारत की पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के योगदान के विश्लेषण के लिए द्वितीयक डेटा का उपयोग किया गया है। भारत सरकार के पंचायती राज मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, www.rajpanchayat.rajasthan.gov.in जैसी वेबसाइट, समाचार पत्र, लेख आदि जैसे द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से डेटा का संग्रह।

अध्ययन उद्देश्य :-

1. पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के सामने आने वाली चुनौतियों को जानना।
2. राजस्थान में महिला श्रम शक्ति भागीदारी के रुझानों और कारकों की जांच करना है।
3. पंचायत संस्थाओं में महिलाओं की पारस्परिक सहभागिता, सशक्तिकरण, निर्णय प्रक्रियाओं में उनकी भूमिका का विश्लेषण।
4. सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत बाधाओं की पहचान।
5. महिलाओं के अनुभवों, प्रशिक्षण, जागरूकता अभियानों एवं सरकारी योजनाओं के प्रभाव की जांच।
6. पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के योगदान को जानना।

राजस्थान में पंचायती राज व्यवस्था का विकास :-

(1) प्राचीन और मध्यकालीन काल में राजस्थान की पीआरआई :

कई लेखाओं के अध्ययन से पता चलता है कि पूरे इतिहास में राजस्थान में कार्यकारी समितियाँ या पंचायतें मौजूद थीं। महंत इन संगठनों का नेतृत्व करते थे, जिन्हें पंचकुला (पाँच की समिति) के रूप में जाना जाता था। विभिन्न जातियों और धार्मिक समूहों का प्रतिनिधित्व करने वाले स्थानीय प्रतिनिधि इन पंचकुलाओं का निर्माण करते थे। इसके अलावा, गोष्ठी समितियाँ भी थीं, जो पेशेवर व्यवसाय थीं, जिन्हें अपने द्वारा पेश किए गए क्षेत्र के स्थानीय प्रशासन की देखरेख का काम सौंपा गया था। वी.बी. मिश्रा के अनुसार, प्रतिहार वंश ने 1027 ई. तक पश्चिमी राजस्थान में निरंकुश शासन किया, लेकिन गाँवों ने स्वायत्त समुदायों को बनाए रखा। स्थायी सीमाओं और स्थानों के साथ अंतिम प्रशासनिक निकाय ग्राम या गाँव था। ग्राम के नेता को ''ग्रामपति या गामगामिका'' के रूप में जाना जाता था। गाँव की परिषद के समर्थन से, जो समुदाय के बुजुर्गों से बनी थी, ग्रामपति गाँव का प्रबंधन करता था। गाँव के झगड़ों ने परिषद का बहुत ध्यान आकर्षित किया।

(2) मुगल काल के दौरान राजस्थान की पीआरआई :

राजपूताना की रियासतें कुछ हद तक दिल्ली में मुगल नियंत्रण से प्रभावित थीं, हालाँकि, गाँव की सरकार स्थिर रही। इस अवधि के दौरान, सामाजिक उद्देश्यों के लिए पूरे गाँव के लिए ''जाति पंचायत'' के साथ–साथ पंचायतें भी थीं। ग्राम पंचायतें संघर्ष समाधान, निगरानी और वार्ड, शिक्षा, सफाई, मनोरंजन और त्योहार की योजना बनाने के प्रभारी थे। इसके अलावा, गांव में प्रत्येक जाति की अपनी पंचायत थी, जिसकी संरचना और कार्य समान थे।

(3) ब्रिटिश राज के दौरान राजस्थान की पीआरआई :

ब्रिटिश शासन के दौरान, न्याय प्रदान करने की एक अत्यधिक विकेन्द्रीकृत प्रणाली लागू की गई, जिसने स्थिति को काफी हद तक बदल दिया और ग्रामीण पंचायत प्रणाली को खतरे में डाल दिया। वायसराय लॉर्ड रिपन के शासन के दौरान, स्थानीय निकायों के गठन का प्रयास किया गया था। ब्रिटिश शासन के तहत, 1928 तक पंचायतों का विकास नहीं हुआ, जब बीकानेर राज्य ने पहल की और पंचायतों की स्थापना के लिए एक अध्यादेश पारित किया। जयपुर ग्राम पंचायत अधिनियम भी 1937 में पारित किया गया था। 1939 में, करौली ने भी ग्राम पंचायत अधिनियम पारित किया। मेवाड़ और मारवाड़ में क्रमशः 1940 और 1945 में ग्राम पंचायत अधिनियम पारित किए गए। भरतपुर और सिरोही दोनों ने 1944 में समान कानून बनाए। इन राज्यों के अलावा, कोटा, बूंदी, झालावाड़, टोंक, शाहपुरा और अन्य में पंचायत अधिनियम प्रभावी थे।

(4) आधुनिक राजस्थान में पंचायती राज की शुरूआत :–

राजस्थान की संयुक्त रियासत, जिसमें मेवाड़ और अन्य रियासतें शामिल हैं, कि स्थापना 1948 में हुई थी, जिसकी राजधानी उदयपुर और मुख्यमंत्री श्री माणिक्य लाल वर्मा थे। उनकी पहली गतिविधियों में से एक 1948 के ग्राम पंचायत राज अध्यादेश पर हस्ताक्षर करना था। अध्यादेश के बाद, उदयपुर, कोटा, प्रतापगढ़, कुशलगढ़, बांसवाड़ा और डूंगरपुर के पुराने सामंतों के कई गांवों में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार आधारित निर्वाचित पंचायतों की स्थापना की गई। परिणामस्वरूप राजस्थान में 13,656 गांवों में 790 पंचायतें थीं। एकीकृत राजस्थान के गठन और राजस्थान विधानसभा के गठन के बाद, 1953 का राजस्थान पंचायत अधिनियम पारित किया गया और 1 जनवरी, 1954 को लागू हुआ।

राज्य के नियोजित विकास के हिस्से के रूप में, राजस्थान सरकार ने 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किया। 1953 में, ग्रो मोर फूड इंक्वायरी कमेटी की सलाह पर राष्ट्रीय विस्तार सेवा की स्थापना की गई। इस अवधारणा को राष्ट्रीय विकास परिषद ने भी स्वीकार किया, जिसने प्रत्येक राज्य सरकार से इसे लागू करने का अनुरोध किया। परिणामस्वरूप, 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान पंचायत समितियां और जिला परिषद अधिनियम पारित किया गया। इस नए अधिनियम द्वारा राजस्थान पंचायत क़ानून, 1953 में भी संशोधन किया गया। अशोक मेहता समिति ने 1978 में पंचायतों को संवैधानिक वैधता प्रदान की। एल.एम. सिंघवी समिति (1986) ने पी.आर.आई. को सरकार का तीसरा स्तर माना और संविधान के तहत उनकी मान्यता, संरक्षण और सुरक्षा के लिए सक्रिय रूप से लड़ाई लड़ी। इसके बाद, पंचायतों की स्थापना कैसे की जाएगी, इसके विवरण को स्पष्ट करने के लिए बैठकों और कार्यशालाओं की एक श्रृंखला आयोजित की गई। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम को अंततः 1993 में अनुमोदित किया गया। 73वें संविधान संशोधन के आधार पर राजस्थान ने

राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 पारित किया।

एकीकृत राज ई-पंचायत :-

राजस्थान सरकार ने बजट घोषणा 2016–17 को लागू करने के लिए ग्रामीण विकास और पंचायती राज विभागों की उत्पादकता को बढ़ावा देने और आंतरिक प्रक्रियाओं को कारगर बनाने के लिए एकीकृत राज ई–पंचायत वेब–आधारित समाधान की परिकल्पना की है। 33 जिला परिषदों, 295 पंचायतों और 295 पायलट ग्राम पंचायतों में, DoIT-C, GoR द्वारा विकसित वेब–आधारित समाधान का लक्ष्य कार्य की पहचान, आरंभ, समापन और भुगतान से लेकर पंचायती राज संस्थानों में की जाने वाली गतिविधियों की वास्तविक समय पर प्रक्रिया करना है, जिससे सभी स्तरों पर नियोजन, बजट, लेखांकन और योजना निगरानी जैसी विभिन्न गतिविधियों में आईटी का प्रभावी उपयोग हो सके।

साहित्य की समीक्षा :-

(गोस्वामी के., 2021) भारत में पंचायती व्यवस्था के विकास और सत्ता के लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की दिशा में काम करने के साथ। यह अध्ययन दर्शाता है कि पंचायती राज व्यवस्था की शुरूआत से अपेक्षित सामाजिक–राजनीतिक सुधार अभी तक हासिल नहीं हुए हैं। समुदाय के भीतर महिलाओं और अन्य अधीनस्थ समूहों सहित दमित समूहों को कई बाधाओं का सामना करना पड़ा और उन्हें जमीनी स्तर पर विकास प्रक्रिया में भाग लेना मुश्किल लगा। अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि विकेंद्रीकरण को सुशासन और विकास के मुख्य घटक के रूप में व्यापक रूप से मनाया जाता है। विकेंद्रीकरण और लोकतंत्र स्थायी आर्थिक विकास की क्षमता को बढ़ा सकते हैं। भारत में गरीबी उन्मूलन और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के ईमानदार प्रयासों के लिए राज्य स्तर से कहीं आगे शासन के स्पष्ट विकेंद्रीकरण की आवश्यकता है।

होक (2020) ने भारत में पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण पर अध्ययन किया है। अध्ययन का उद्देश्य महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण की जांच करना है, विशेष रूप से भारत में पंचायती राज के संबंध में, विश्लेषण करना है कि महिलाएं कम शामिल क्यों हैं, और भारत के जमीनी स्तर पर महिलाओं की प्रभावी भागीदारी का सुझाव देना है। सर्वेक्षण का निष्कर्ष यह है कि महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण को आमतौर पर सरकार और चुनावों में राजनीतिक भागीदारी के रूप में माना जाता है, जो महिलाओं को एक राजनीतिक आवाज देने के लिए आवश्यक है जो उनके जीवन को प्रभावित करती है। पंचायती राज संस्था में महिलाओं का प्रतिनिधित्व राजनीति में महिलाओं की भूमिका का आकलन करने के लिए एक महत्वपूर्ण मानदंड है। पंचायती में 33 प्रतिशत आरक्षण के साथ, महिलाओं को ग्राम सभा में अपनी चिंताओं और विचारों को व्यक्त करने का अवसर मिलता है। परिणामस्वरूप, महिला भागीदारी तेजी से बढ़ रही है, लेकिन संतोषजनक नहीं है।

कौर (2020) के अध्ययन ने उन महिलाओं पर ध्यान केंद्रित किया है जो जमीनी स्तर पर लोकतंत्र में निर्णय लेने वालों के रूप में उभरी हैं लोकतांत्रिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता महिला आरक्षण विधेयक है। इसके अलावा, सदियों पुरानी रीति–रिवाजों और परंपराओं को तोड़ने के लिए पंचायती महिला प्रतिनिधियों को मजबूत होना चाहिए।

हाजरा (2017) के पंचायत प्रणाली में महिलाओं की भागीदारी पर अध्ययन अध्ययन से पता चला है कि

राज्य सरकार नियमित आधार पर पंचायती स्थापित करने के लिए काफी अनिच्छुक है। इससे राज्य सरकार को वैधता और वैध शक्ति मिलती है। अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि जैसे–जैसे पीआरआई में महिलाओं की जागरूकता बढ़ती है और सरकारी और गैर–सरकारी एजेंसियों द्वारा इस समूह की उचित शिक्षा पर जोर दिया जाता है, यह एक गलती है कि ज्यादातर महिलाएं अपने मूल कौशल को ठीक से सुधारना और उनका उपयोग करना जारी रखेंगी। यहां इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि महिलाओं के लिए एक राजनीतिक स्थान का निर्माण अपने आप में एक अंत नहीं है, बल्कि एक समतावादी राज्य और सामाजिक व्यवस्था की दिशा में एक आवश्यक कदम है। पश्चिम बंगाल, हरियाणा, महाराष्ट्र और राजस्थान जैसे राज्यों में महिला प्रतिनिधि बहुत उत्साहजनक हैं।

बेनीवाल, (2015) अध्ययन से पता चला है कि राजनीतिक विकेंद्रीकरण का मतलब आमतौर पर नगरपालिका का एक शक्तिशाली और गतिशील साधन है। पंचायती राज की अवधारणाएँ और गाँव की स्वायत्तता की गाँधीवादी धारणाएँ केंद्रीकरण के विकल्प प्रस्तुत करती हैं। अध्ययन के निष्कर्ष यह हैं कि पंचायती राज का संवैधानिक ढाँचा जमीनी स्तर पर लोकतंत्र के लिए एक तंत्र स्थापित करने में विफल रहा है। निर्णय जनता के अधिक निकट होते हैं और विकेंद्रीकरण के माध्यम से यह सुनिश्चित होता है कि निर्णयकर्ता अपने पीड़ितों के प्रति अधिक प्रभावी रूप से जवाबदेह हों।

घोष आर., (2015) यह अध्ययन महिला सशक्तिकरण और शिक्षा पर आधारित है : भारत में पंचायतें और महिला स्वयं सहायता समूह। अध्ययन का उद्देश्य राज्यों में महिला सशक्तिकरण पर उपायों के प्रभाव का पता लगाना है। अध्ययन की कार्यप्रणाली वर्णनात्मक शोध पर आधारित थी। अध्ययन में पाया गया है कि राजनीति में भाग लेने के लिए महिलाओं की सकारात्मक कार्रवाई, लेकिन यह गारंटी नहीं देती है कि शिक्षा की कमी के कारण महिलाएं राजनीति में भाग लेंगी और निर्वाचित प्रतिनिधियों के रूप में कार्य करेंगी। सिंगारिया एम.आर., 2015) यह अध्ययन राजस्थान में महिला कार्य भागीदारी के निर्धारकों पर किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य राजस्थान में महिला श्रम शक्ति भागीदारी के रुझानों और कारकों की जांच करना है। इस अध्ययन में पाया गया कि 77 प्रतिशत ग्रामीण श्रमिक और 18 प्रतिशत शहरी श्रमिक कृषि श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं, मजदूरी न्यूनतम है और राजस्थान में काम करने की स्थितियाँ जलवायु कारणों से उपयुक्त हैं।

पंचायती राज व्यवस्था : राजस्थान की भारतीय राष्ट्र से तुलना

तालिका 1 : राजस्थान और भारत में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या

	राज्य बनाम राष्ट्र	ग्राम पंचायत	ब्लॉक पंचायत	जिला पंचायत	कुल
1	राजस्थान	66823	3118	586	70527
2	भारत	1292203	75620	8091	1375914

स्रोत : 27.03.2019 तक MoPR संकलन।

तालिका 1. से पता चलता है कि राजस्थान और भारत में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या, पंचायती राज की तीन श्रेणियां हैं भारत में ग्राम पंचायत 93 प्रतिशत, ब्लॉक पंचायत 5.49 प्रतिशत, जिला पंचायत 0.58 प्रतिशत है। भारत की तुलना में राजस्थान की ग्राम पंचायत 5.17 प्रतिशत, राजस्थान की ब्लॉक पंचायत 4.12 प्रतिशत, राजस्थान की जिला पंचायत 7.24 प्रतिशत है। भारत की तुलना में राजस्थान के पंचायत राज का

कुल प्रतिशत 5.12 प्रतिशत है।

तालिका 2 : राजस्थान और भारत में कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों (ईआर) की तुलना में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों (ईडब्ल्यूआर) का प्रतिशत%

	राज्य बनाम राष्ट्र	कुल ईआरएस	कुल ईडब्ल्यूआर	प्रतिशत ईडब्ल्यूआर
1	राजस्थान	124854	70527	56.49
2	भारत	3100804	1375914	44.37

स्रोत : 27.03.2019 तक MoPR संकलन।

तालिका 2. राजस्थान और भारत में कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों की तुलना में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों का प्रतिशत दर्शाती है। भारत में पंचायती राज में निर्वाचित महिलाओं का प्रतिशत 44.37 है। राजस्थान में 56. 49 प्रतिशत महिला प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार, राजस्थान में निर्वाचित महिलाओं का प्रतिशत भारत से अधिक है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं का योगदान :-

1. संविधान में 73वें और 74वें संशोधन के परिणामस्वरूप पर्याप्त सुधार हुए हैं जो समान पहुँच को बढ़ावा देते हैं और राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाते हैं। महिलाओं को कुल निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या का लगभग एक तिहाई आवंटित किया गया है। सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी में पंचायतें, स्वयं सहायता समूह शामिल हैं और महिला सशक्तिकरण भी सुनिश्चित और बढ़ाया गया है।

2. पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण प्रणाली के विकास से महिलाओं को लाभ हुआ है, जिससे उनकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार हुआ है। यह ऐतिहासिक रूप से पुरुष–प्रधान समाज में अधिक उदारीकरण की अनुमति देता है और अच्छे प्रशासन पर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

3. पंचायती राज संस्थाओं ने ग्रामीण भारत के सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन निकायों की दक्षता महिलाओं की सक्रिय भागीदारी, योगदान और भागीदारी से परिभाषित होती है।

4. आरक्षण प्रणाली द्वारा राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा दिया जाता है। इससे कुछ अनुकूल लाभ प्राप्त हुए हैं, जिनमें बेहतर शैक्षणिक, स्वास्थ्य और पारिवारिक आर्थिक परिणाम शामिल हैं। इस प्रणालीगत परिवर्तन के जबरदस्त लाभ हुए हैं, जिससे लाखों महिलाएँ पंचायत नेतृत्व के पदों पर पहुँची हैं।

5. लोकतांत्रिक आदर्श और विकेंद्रीकरण की धारणाएँ सक्रिय भागीदारी के माध्यम से एक प्रभावी स्थानीय सरकार प्रणाली के संचालन के माध्यम से राष्ट्रव्यापी विकास की प्रक्रिया को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

6. इस संशोधन के अनुसमर्थन से पंचायती राज प्रणाली ने महिलाओं के अधिकारों को मान्यता दी है, जो महिलाओं की अप्रयुक्त क्षमता को शासन में लाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह ग्राम पंचायत की योजना, निर्णय लेने और क्रियान्वयन में महिलाओं की भागीदारी को सुगम बनाता है। महिला प्रतिनिधियों ने धन प्रबंधन, प्रभावी समुदाय–आधारित विकास आदि जैसे नए कौशल को अपनाने और सीखने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन किया है।

7. पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए आरक्षण धीरे–धीरे जमीनी स्तर पर राजनीति में महिलाओं की

उपस्थिति को बढ़ाने का काम करता है। इसी तरह, इसने निर्णय लेने में महिलाओं की भागीदारी हासिल की है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के सामने आने वाली चुनौतियाँ :-

एकीकृत राज ई–पंचायत महिलाओं के लिए एक चुनौती के रूप में, कोविड–19 के बाद भारत में डिजिटलीकरण को बढ़ावा मिला है। इस व्यापक बदलाव के माध्यम से, पंचायती राज में काम करने वाली महिलाओं में डिजिटल साक्षरता की कमी है। महिलाओं के लिए यह सबसे बड़ी चुनौती है कि वे डिजिटल तकनीकों का उपयोग कैसे करें। पुरुष प्रधान समाज के कारण महिलाओं को पंचायत में निर्णय लेने की अनुमति नहीं थी। यदि महिलाएँ किसी निश्चित विषय पर निर्णय लेती हैं, लेकिन जनता उनके निर्णय से सहमत नहीं होती है। पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता रहा है। इसके कारण महिलाएँ सशक्त नहीं हो पाती हैं और उन्हें सत्ता से वंचित रखा जाता है। महिलाओं को राजनीतिक साक्षरता की कमी का सामना करना पड़ा है, अर्थात पंचायत को कैसे कार्यान्वित किया जाए, किस प्रकार का निर्णय लिया जाए, सार्वजनिक समस्याओं का समाधान कैसे किया जाए आदि।

महिला सरपंचों को मौजूदा सत्ता केंद्रों को चुनौती देने के लिए अपने समुदायों में जबरदस्त हिंसा का सामना करना पड़ा है। यह भी देखा गया है कि परिवार के पुरुष सदस्य अपने परिवार में महिलाओं की स्थिति का लाभ उठाकर चुनाव लड़ते हैं, जिससे पुरुषों को महिलाओं के माध्यम से पीआरआई पर नियंत्रण करने का मौका मिल जाता है। स्थानीय सरकारों में नौकरशाही का आधिपत्य भी महिलाओं को निर्णय लेने में भाग लेने से रोकता है। पंचायत में कार्यक्रम के बारे में जानकारी का अभाव भी इस प्रक्रिया में महिलाओं की गैर–भागीदारी का एक कारण है। स्थानीय अभिजात वर्ग अपने लाभ के लिए स्थानीय सरकार के साथ मिलीभगत करते हैं, जनता की मांगों को अनदेखा करते हैं। इसलिए, जो भागीदारी मौजूद है वह केवल अमीरों तक ही सीमित है, और ग्रामीण गरीबों की भागीदारी नगण्य है।

निष्कर्ष :-

इस अध्ययन ने पंचायती राज संस्थाओं में महिला प्रतिनिधियों (EWRs) की भूमिका, चुनौतियाँ, और सशक्तिकरण की प्रक्रिया का विश्लेषणात्मक निरीक्षण प्रस्तुत किया। यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यह स्वीकार किया गया है कि पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं का आरक्षण भारत में जमीनी स्तर की राजनीति में महिलाओं के प्रतिनिधित्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में महिलाओं का सशक्तिकरण ऐसी कठिनाइयों को दूर करने और उन्हें भारतीय समाज में एक आत्मनिर्भर भूमिका प्रदान करने के लिए आवश्यक है। महिलाओं का सशक्तिकरण एक आवश्यक अधिकार है। उन्हें समाज, अर्थशास्त्र, शिक्षा और राजनीति में आनुपातिक अधिकार दिए गए हैं। पुरुष प्रधान समाज ने महिलाओं को स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की अनुमति नहीं दी है। इस अवधारणा को पुरुष प्रधान समाज द्वारा बदला जाना चाहिए। पंचायत प्रणाली में चुनी जाने वाली महिलाओं में राजनीतिक साक्षरता में सुधार करना। आदिवासी क्षेत्र के लोगों के लिए राजनीतिक प्रशिक्षण और कार्यक्रम आयोजित करना, जिसमें दक्षिणी राजस्थान भी शामिल है, ताकि उन्हें स्थानीय सरकार प्रणाली में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। अध्ययन में स्पष्ट हुआ कि कई बार निर्णय पुरुष परिवार जनों खासकर पति या अन्य पुरुष सदस्यों द्वारा लिए जाते हैं, जिससे महिला प्रतिनिधियाँ वास्तविक नेतृत्व भूमिका अदा नहीं कर पातीं। यह 'गुड़िया सरपंच' की समस्या प्रचलित है, जिससे सशक्तिकरण की प्रक्रिया अधूरी रह जाती है। स्थानीय

स्तर पर उपलब्ध प्रशिक्षण, जागरूकता शिविर और महिला सभाओं की अनुपस्थिति के कारण, महिलाएँ प्रशासनिक और कानूनी प्रक्रियाओं को समझने में असमर्थ रहती हैं, जिसके कारण वे पंचायत कार्यों में सक्रिय भूमिका नहीं निभा पातीं। बावजूद सामाजिक बाधाओं के, आरक्षण और केंद्रित परियोजनाओं जैसे महिला प्रशिक्षण कार्यक्रमों और SHG देखते हुए महिलाओं में नेतृत्व क्षमता और जागरूकता का स्तर धीरे–धीरे बढ़ा है।

73वें संविधान संशोधन के तहत महिला आरक्षण ने महिलाओं को औपचारिक राजनीतिक अधिकार प्रदान किया, जिससे उनकी राजनीतिक भागीदारी में स्पष्ट वृद्धि हुई। परंतु, वास्तविक सशक्तिकरण और निर्णय प्रक्रिया में उनकी सक्रिय सहभागिता अब भी सीमित बनी हुई है। महिला पंचायत प्रतिनिधियों को पितृसत्तात्मक सोच, अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता और सामाजिक प्रतिबंध जैसे मसलों का सामना करना पड़ता है, जिससे उनका आत्मविश्वास और क्षमता सीमित होती है। महिला आरक्षण ने महिलाओं को पंचायती राज में एक आवश्यक उपस्थिति दी है, परन्तु वास्तविक सशक्तिकरण और निर्णय लेने के अधिकार अभी अधूरे हैं। सामाजिक मानसिकताएँ, परिवारिक हस्तक्षेप और प्रशिक्षण–संस्थान की कमी जैसे मुद्दे अभी भी मजबूत चुनौती बने हुए हैं।

सुझाव :–

1. राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के शोध के अनुसार, महिलाओं को संचार कौशल, नेतृत्व और प्रबंधन में विशेष समग्र प्रशिक्षण कार्यक्रम की आवश्यकता है।
2. सर्कुलर प्रशिक्षण मॉड्यूल तैयार करें जो गांव में ही आयोजित हों, जिसमें इन गतिशील क्षमताओं को बेहतर करने पर ध्यान दिया जाए।
3. लैंगिक–संवेदनशील प्रशिक्षण आयोजित करें, जहां महिला प्रतिनिधियों के साथ पुरुष सदस्यों को भी शामिल किया जाए।
4. पंचायतों में भ्ळ नेटवर्क को मजबूत करें, स्थानीय बैंक शाखाओं से जुड़कर महिला उद्यम और व्यवसायिक योजनाओं को बढ़ावा दें।
5. संस्थाओं के साथ सामंजस्य बनाकर प्रशिक्षण, वित्तीय जागरूकता और कानूनी सहायता की पहल को पंचायत की महिला प्रतिनिधियों के लिए सुनिश्चित करें।
6. पूर्व में पुरुषों के दबाव से बचाव हेतु सरकार के "घूंघट–मुक्त मतदान'' अभियान को समर्थन करके सामाजिक जागरूकता व पारिवारिक समर्थन।
7. ऐसे अभियानों को नियमित रूप से चलाया जाए जिससे महिला प्रतिनिधियों को खुले मन से निर्णय लेने का आत्मविश्वास मिले।
8. ग्राम पंचायतों में जागरूकता के लिए लोक–नाटकों और बचपन में स्कूल से कतवचवनज रोकने की पहलें करें।
9. पंचायत भवनों, ग्राम सभा आदि में नियमित माध्यम से सामाजिक समर्थन मजबूत करें।
10. मॉडलों ने दिखाया कि नाम और पिछली उपलब्धियों को साझा करना महिला प्रतिनिधियों में आत्म–सम्मान बढ़ाता है।
11. महिला सरपंचों की सफल कहानियों को ग्राम स्तर पर साझा किया जाए।
12. पुरुषों और पुरुष परिवारजनों को प्रशिक्षित करने पर बल दिया।

13. महिलाओं के लिए स्थानीय प्रशिक्षण केंद्र का सुदृढ़ नेटवर्क।
14. पंचायत प्रक्रियाओं, अधिकारों और वित्तीय योजनाओं जैसे 'भामाशाह' आदि पर नियमित ज्ञानवर्धन कार्यक्रम।
15. परिवारों और समुदाय में लैंगिक संवेदनशीलता और महिलाओं के नेतृत्व को स्वीकार्यता प्रदान करने हेतु सामाजिक जागरूकता अभियान।
16. महिला पंचायत प्रतिनिधियों के लिए लंबी अवधि ट्रैकिंग अध्ययन जिससे उनके नेतृत्व विकास और सशक्तिकरण की प्रगति मनीटर की जा सके।

इन उपायों से महिला प्रतिनिधियों का सशक्तिकरण सिर्फ औपचारिकता न रहकर वास्तविक नेतृत्व में रूपांतरित हो सकता है, जिससे जिले और राज्य दोनों में सुशासन और महिला सशक्तिकरण का लक्ष्य साकार होगा।

संदर्भ :-

1. गोस्वामी के., गहलोत एस. (2021) भारत में पंचायती राज संस्था के विकास के माध्यम से शक्तियों का लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण, मनोविज्ञान और शिक्षा, 58(2), 8856–8860
2. होक, ए. (2020) भारत में पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी (आईजेएआरईटी), 11(10), 1827–1840
3. कौर पी. (2020) राजनीतिक प्रतिनिधित्व का अधिकार और 73वां संशोधन अधिनियम : पंजाब में पंचायती राज संस्था में महिलाओं की भागीदारी का महत्वपूर्ण मूल्यांकन, एनआईयू इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमन राइट्स, 7, 339–360
4. हजरा एस. (2017) पश्चिम बंगाल में पंचायत राज में महिलाओं की भागीदारी : एक मूल्यांकन, आर्थिक मामले, 62(2), 347–351
5. बेनीवाल, डी.पी. (2015) राजस्थान के विशेष संदर्भ में लोकतंत्र में पंचायत राज प्रणाली की भूमिका एआईजेआरए, IV(IV), 21.1–21.8
6. घोष आर., एट अल. (2015) महिला सशक्तिकरण और शिक्षारू भारत में पंचायतें और महिला स्वयं सहायता समूह, शिक्षा में नीतिगत भविष्य, 13(3), 294–314
7. सिंगारिया एम.आर., एच.एस. (2015), राजस्थान में महिला कार्य भागीदारी के निर्धारक : एक जिला स्तरीय विश्लेषण, 35वीं आरईए और सीयूआरएजे की कार्यवाही (पृष्ठ 75–82)
8. कौशिक, ए., शक्तावत, जी. (2010) पंचायती राज संस्थाओं में महिलाएँ : चित्तौड़गढ़ जिला परिषद का एक केस स्टडी, जर्नल ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज, 26(4), 473–483
9. शशि कौल, एस.एस. (2009), पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी पर अध्ययन, स्टड होम कम्युनिकेशन साइंस, 3(1), 29–38
10. मोहंती, बी. (2005). भारत में महिलाएँ और पंचायतें : एक नई पीढ़ी का निर्माण भारत में महिलाएँ और पंचायतें : एक नई पीढ़ी का निर्माण, सेमिनारो इंटरनेशनल रेग जनरल : अल्टरनेटिवस ग्लोबलिज़ाकाओ,

5(2),1–13

11. डास, मैत्रेयी बोर्डिया (1992) ''द वूमेन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम इन राजस्थान : ए केस स्टडी इन ग्रुप फॉर्मेशन फॉर वूमेन्स डेवलपमेंट'' World Bank Working Paper 913, 1992.
12. Sharma Kumud, (1998) "Transformative Politics: Women and Panchayati Raj in UP, Rajasthan, M.P."
13. Kaul, Shasi and Sahani, Shradha (2009) "Study on the Participation of Women in Panchayati Raj Institution." Journal of Community Science, vol. 3, no.1, 2009, pp.29–38.
14. Agnihotri,Simmi and Singh, Vijay (2014) "Women Empowerment through Reservation in Panchayati Raj Institutions in Himachal Pradesh." Indian Journal of Public Administration, vol. 60, no. 3, 2014, pp. 417–435.
15. Sadhu and Sharma, N. L. (2016) "Study of Factors Influencing Participation of Women in Panchayati Raj Institutions in Rajasthan." IJARMSS, vol. 4, no. 2, 2016, pp. 123–137.
16. Negi, Dandub and Singh, Preetam (2019) "Women Changing the Face of Rural Governance: Evidence from Rajasthan." Mahila Pratishtha, vol. 4, no. 4, April–June 2019, pp. 139–152.
17. Sharma, Arti, (2021) "A Sociological Study of Elected Women Representatives and Empowerment in Panchayati Raj (Special Reference in Hadoti Region in Rajasthan). Ph.D. Thesis, University of Kota, 2021.
18. "Participation of Women in Panchayati Raj Institutions of Rajasthan: A Study with Special Reference to Barmer District." (2022) International Journal of Interdisciplinary Studies, vol. 7, Special Issue 2, Jan–Feb 2022, pp. 233–245.
19. Jatav Jyoti and Gehalot, Dr. Sapana (2023) "Role of Woman in Panchayati Raj: A Study." ResMilitaris, Spring, pp. 45–58.
20. Lal, Mangi (2021) "Status of women in Panchayati Raj Institutions of Rajasthan : Barmer District Case Study.
21. Lal, Mangi (2023)" –"Panchayati Raj and empowerment of women in India"

mpchoudhary1978@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 167-174

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Transforming Education through Law : The Role of the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 in Shaping Inclusive Education in India

USHA LATA (Research Scholar)
DR. ANITA SHARMA (Research Guide)
DEPARTMENT OF EDUCATION,
SHRI JAGDISH PRASAD JHABARMAL TIBREWALA UNIVERSITY,
VIDYANAGARI, JHUNJHUNU, RAJASTHAN - 333010

Abstract :

The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 represents a transformative milestone in India's legislative landscape for disability rights, aligning its national legislation with the global standards set by the United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities (UNCRPD). One of the Act's central pillars is the promotion of inclusive education a transformative approach that seeks to create learning environments where children with and without disabilities are educated together. This model emphasizes equal access, participation, and learning outcomes, and demands significant shifts in pedagogy, infrastructure, and attitudes. This study critically examines how the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 has influenced the landscape of inclusive education in India, analyzing legal mandates, implementation frameworks, institutional progress, and challenges on the ground. Using secondary data, policy reviews, and key reports, this study assesses how far inclusive education has come since the enactment of the Act and outlines recommendations to strengthen its execution across states.

Keywords : Rights of Persons with Disabilities Act 2016, inclusive education, disability rights, India, educational policy, UNCRPD, implementation challenges, special needs education, legal framework, accessibility in education

Introduction :

Inclusive education is a fundamental right recognized by the United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities (UNCRPD), to which India is a signatory. The Rights of

Persons with Disabilities Act, 2016 aligns national law with international standards and mandates inclusive, equitable, and quality education for all children with disabilities (Divyangjan).In India, the enactment of The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 marked a significant legislative milestone toward realizing this right. The Act mandates inclusive education and requires mainstream schools to accommodate and support students with diverse learning needs. This Act mandates the provision of reasonable accommodations, barrier-free access to schools, specialized training for educators, and individualized support to ensure that children with disabilities (Divyangjan) are not excluded or segregated.Despite the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016's progressive intent, the actual implementation of inclusive education in India presents complex challenges. Factors are such as inadequate infrastructure, limited teacher training, and societal attitudes continue to hinder effective inclusion.While progress remains uneven, the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 has established a critical foundation. Realizing its promise requires persistent efforts in implementation, coordination, and inclusive policy execution.This study aims to critically assess the impact of the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016in shaping inclusive education, focusing on legislative intent, policy initiatives, and practical outcomes across different regions and educational levelsin India. By evaluating legal documents, policy reports, and academic research, this article contributes to the growing body of literature on disability rights in education. It also identifies key areas where the law has facilitated progress and where systemic barriers remain.

Review of Related Literature :

The implementation of the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016has brought renewed focus to inclusive education across India. However, its impact has been uneven, marked by both progress and persistent systemic barriers. This Act is cornerstone of inclusive education in India which mandates inclusive education as a right for children with disabilities. The Act aligns with the UN Convention on the Rights of Persons with Disabilities, introducing provisions for equal access to education and reasonable accommodations in schools.Together, these studies reveal that while the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 has created a robust legal foundation for inclusive education, the transformation of schools into truly inclusive spaces remains a work in progress, heavily dependent on state capacity, institutional will, and societal attitudes.

Das (2020) highlights that teachers' perceptions significantly hinder inclusive education. Many educators lack the confidence, training, and conceptual clarity required to support children with disabilities in regular classrooms. This uncertainty leads to reluctance in adapting teaching methods, ultimately affecting the quality and inclusiveness of education offered under the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016.

Rao (2020) underscores the importance of Sections 16 and 31 of the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016, which mandate inclusive, equitable education for children with benchmark disabilities. Despite this legal assurance, the implementation remains inconsistent, with significant disparities in compliance, resources, and support mechanisms across different states and educational institutions in India.

UNESCO's (2020) Global Education Monitoring Report advocates "education for all," highlighting global successes and barriers in inclusive education. It serves as a benchmark to assess India's implementation of the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016, identifying areas where the country meets international standards and where significant gaps in policy and practice still persist.

Rani and Thakur (2022) investigate the urban rural divide in implementing the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 and find that rural schools face severe deficits in trained educators and assistive technologies. These limitations significantly hinder the delivery of inclusive education, leaving children with disabilities in rural areas underserved and excluded from meaningful learning opportunities.

Methodology :

This study employs a qualitative research design, using a combination of document analysisandsecondary data review to explore the impact of the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 on inclusive education in India. The analysis aimed to triangulate findings across various sources to develop a comprehensive picture of influence of the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016on the education system.

- **Document Analysis** : Primary legal documents, including the full text of the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016's, relevant rules, and government notifications, were analyzed to identify provisions related to inclusive education. Additional documents such as the National Education Policy 2020 and implementation guidelines from NCERT and the Rehabilitation Council of India were also reviewed.
- **Secondary Data Review** : Peer reviewed journal articles, government reports, and international publications (e.g., UNESCO reports) were examined to assess the law's implementation and impact. Thematic analysis was used to extract key patterns relating to policy design, institutional readiness, teacher training, and stakeholder perspectives.
- **Inclusion Criteria** : Sources included were published between 2015 and 2024 and were selected based on their relevance to inclusive education, legal implementation, and Indian educational policy.

Legislative Background and Provisions :

The RPwD Act replaced the Persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation) Act, 1995, expanding the recognized categories of disabilities from 7 to 21, encompassing a broader spectrum of conditions. The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 defines inclusive education as "a system of education wherein students with and without disability learn together and the system of teaching and learning is suitably adapted to meet the learning needs of different types of students with disabilities." These section and provisions establish the right to inclusive education enforceable by law, making non-compliance a violation of fundamental rights and align with international standards; dismantle barriers, emphasizing systemic changes to accommodate diverse learning needs and promote an inclusive educational environment.

- **Right to Free Education** : Section 31 of this act mentioned that every child with benchmark disabilities aged of six to eighteen years are entitled to free education in neighborhood schools or special schools of his choice.
- **Non-Discrimination and Accessibility** : The section 16 of this act outlines the obligations of the appropriate government and local authorities to ensure that persons with disabilities have access to inclusive education without discrimination.
- **Expanded Disability Categories** : The Act broadens the definition of disability from seven to twenty one categories, including autism, cerebral palsy, and mental illnesses, ensuring wider coverage.
- **Statutory Obligations / Inclusive Education Mandate** : Sections 16 and 17 mandate government-funded or recognized institutions to ensure inclusive education, admit Children with Disabilities without discrimination, and provide necessary infrastructure.
- **Reservations in Higher Education** : The Act reserves 5% of seats in higher educational institutions for persons with benchmark disabilities.
- **Curriculum Adaptation** : Development of curricula and teaching methods to accommodate diverse learning needs.
- **Special Courts** : The Act establishes special courts to address violations of disability rights, including failures in providing inclusive education.

Implementation and Impact :

The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 has progressive legal framework in inclusive education, but its implementation has encountered by several obstacles and challenges :

- **Increased Legal Awareness** : The Act has heightened awareness of disability rights among policymakers, educators, and communities. The mandate for inclusive education has prompted state-

level initiatives, such as residential bridge courses in Andhra Pradesh and Uttar Pradesh.

- **Policy Reforms** : The National Education Policy (NEP) 2020 and SamagraShikshaAbhiyan align with the RPWD Act, advocating for inclusive education and teacher training. The NEP emphasizes coherence between the National Council for Teacher Education and Rehabilitation Council of India to enhance inclusive classroom practices.
- **Infrastructure Development** : Some schools have introduced ramps, accessible toilets, and assistive technologies, though inconsistently.

Challenges in Implementation :

- **Ambiguities in Definitions** : Terms like "reasonable accommodation," "individualized support," and "full inclusion" lack clear definitions, leading to inconsistent implementation.
- **Lack of Harmonization** : The RPWD Act conflicts with the Right to Education (RTE) Act, 2009, which does not define inclusive education and references the outdated PWD Act, 1995. This lack of synergy hinders policy coherence.
- **Inadequate Infrastructure** : Many schools lack disabled-friendly infrastructure, such as ramps, lifts, tactile paths, accessible toilets and accessible learning materials. The high cost of retrofitting facilities remains a barrier.
- **Shortage of Special Educators** : There's a significant shortage of educators trained in inclusive teaching methodologies, hindering effective classroom integration. Only 1.35% of teachers in India are special educators, and most schoolsare not mandated to employ them.
- **Teacher Training Gaps** : Regular teachers often lack training to address diverse learning needs, and special educators are overburdened with non-teaching duties.
- **Data Limitations** : Unreliable data on children with disabilities (Divyangjan) enrollment and outcomes complicates policy design. The absence of disaggregated disability data hinders targeted interventions.
- **Social and Governance Issues** : Stigma, parental reluctance, and lack of awareness about rights limit children with disabilities (Divyangjan) enrollment. Governance challenges arise as the Ministry of Social Justice and Empowerment oversees disability education, while the Ministry of Education manages inclusive education, leading to fragmented efforts.
- **Policy-Practice Gap** : While policies exist, their translation into actionable practices at the grassroots level remains inconsistent.

Positive Developments :

Despite legal mandates, the enrollment and retention of children with disabilities (Divyangjan) remain low. A 2020 UN report noted that 75% of children with disabilities (Divyangjan) in India do

not attend school. In rural areas, literacy among persons with disabilities is 49%, compared to 67% in urban areas, reflecting disparities in access. The lack of preparation for students, parents, and schools for inclusive settings leads to adjustment issues and reduced learning efficacy. Moreover, the rigid curriculum and inaccessible assessments fail to accommodate diverse needs, marginalizing children with disabilities (Divyangjan) further.

- **Accessible India Campaign (Sugamya Bharat Abhiyan)** : Launched in 2015, this nationwide initiative aims to make public spaces, including educational institutions, accessible to PwDs. It emphasizes the retrofitting of existing infrastructure and the incorporation of universal design principles.
- **Technological Innovations and Awareness Campaigns** : Technological advancements and awareness campaigns have furthered the cause of inclusive education.
- **Sign Language Recognition** : Research on real-time sign language recognition using deep learning techniques aims to bridge communication gaps for the hearing-impaired, facilitating better educational access.

Conclusion :

The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 has played a pivotal role in placing inclusive education on India's legislative and policy agenda. While the Act provides a robust legal framework, this study finds that its impact is uneven due to challenges in implementation, awareness, and resource allocation.Significant progress has been made in aligning national education policy with inclusive goals, particularly through the NEP 2020 and institutional efforts by NCERT and RCI. However, systemic barriers such as insufficient teacher training, lack of assistive infrastructure, and societal stigma continue to limit access and equity for children with disabilities.For the RPwD Act to fulfill its promise, there is a need for stronger implementation mechanisms, regular monitoring, and investment in capacity building at all levels of the education system. Future research should focus on longitudinal studies assessing outcomes for students with disabilities and comparative studies across states to identify models of effective inclusion.

Recommendations :

The enactment of the Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 (RPwD Act) marked a critical juncture in India's legislative approach to disability rights, particularly in the realm of education. The Act mandates inclusive education as a legal right, seeking to integrate children with disabilities into mainstream schools through reasonable accommodations, accessible infrastructure, individualized support, and the development of inclusive pedagogy. This study explored the practical impact of the Act on India's education system, revealing both promising developments and persistent challenges.To

enhance the impact of the RPWD Act on inclusive education, the following measures are proposed:

1. **Mandatory Inclusive Education Training for Teachers :** Mandatory pre-service and in-service training programs should be introduced for all educators, with a focus on disability awareness, inclusive pedagogies, classroom management strategies, and the use of assistive technologies. Teacher education curricula must integrate disability inclusion as a core component.

2. **Enhance Infrastructure and Learning Materials :** Central and state governments must allocate dedicated funds for the creation of schools are physically barrier-free accessible and equipped with inclusive learning materials, including Braille books, sign language resources, and audio-visual aids.

3. **Establish Independent Monitoring Bodies and and Accountability Mechanisms :** Create independent bodies at national and state levels to monitor the implementation of inclusive education provisions. These bodies should regularly audit schools, track enrollment and learning outcomes of children with disabilities, and publish transparent progress reports.

4. **Develop a Centralized Disability Education Database :** Develop a centralized, disaggregated database on children with disabilities in the education system. This should include enrollment rates, dropout data, learning assessments, and resource allocation to support evidence-based policy making.

5. **Promote Multi-stakeholder Collaboration :** Encourage partnerships between government departments, NGOs, disabled persons' organizations (DPOs), and parents' groups to ensure coordinated efforts in inclusive education planning and execution.

6. **Launch Community Sensitization and Awareness Campaigns :** Launch targeted awareness initiatives to reduce stigma and promote positive attitudes toward disability inclusion in schools and communities. Involving local leaders and using vernacular media can enhance outreach and effectiveness.

7. **Ensure Equitable Resource Allocation across States :** To address regional disparities, special grants and technical support should be provided to under-resourced states and rural areas to build inclusive infrastructure and train local educators.

8. **Incorporate Inclusive Education in School Evaluation Criteria** and **Accreditation Standards :** Schools should be assessed not only on academic performance but also on their inclusivity practices, including accessibility, individualized support, and child participation.

References :

1. Singal, N. (2015). Education of children with disabilities in India: A critical analysis.

International Journal of Inclusive Education, 19(3), 241-252.
2. Sharma, U., & Das, A. (2015). Inclusive education in India: Past, present and future. Support for Learning, 30(1), 55-68.
3. Government of India. (2016)The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016. Ministry of Law and Justice. https://legislative.gov.in
4. Alur, M. (2017). Inclusive education and the Indian context: Policy, practice and future directions. Disability and the Global South, 4(1), 1092-1113.
5. Rehabilitation Council of India. (2018). Status of inclusive education in India: Implementation of the RPWD Act 2016. http://rehabcouncil.nic.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 175-185

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

DATA PREPROCESSING AND FEATURE ENGINEERING FOR HEALTH METRICS

DIPMALA BHAGWAT TRIMUKHE (RESEARCH SCHOLAR)
Dr. RAHUL KUMAR BUDHANIA (RESEARCH GUIDE)
DEPARTMENT OF ELECTRONICS & COMMUNICATION ENGINEERING
SHRI JAGDISH PRASAD JHABARMAL TIBREWALA UNIVERSITY,
VIDYANAGARI, JHUNJHUNU, RAJASTHAN

Abstract :

This process may include the extraction of temporal, demographic, or clinical features, as well as the selection of relevant variables through methods like correlation analysis or dimensionality reduction. By addressing data quality issues and optimizing features, preprocessing and feature engineering play a critical role in improving the accuracy, interpretability, and generalizability of health-related predictive models. This paper explores various strategies for data preprocessing and feature engineering in the context of health metrics and demonstrates their impact on the effectiveness of predictive health analytics.

Keywords : Data, Preprocessing, Feature, Health, Metrics.

INTRODUCTION :

In recent years, the healthcare industry has witnessed a massive transformation with the introduction of advanced data collection techniques, innovative algorithms, and the growing power of machine learning (ML) and artificial intelligence (AI). With the exponential increase in digital health records, medical wearables, diagnostic tools, and healthcare-related mobile applications, vast amounts of health data are being generated daily. However, this surge in data brings with it several challenges, including handling raw data that is often unstructured, incomplete, or inconsistent, and effectively extracting meaningful insights from it. This is where data preprocessing and feature engineering play critical roles.

Data Preprocessing refers to the steps taken to clean and transform raw data into a more structured and usable form. In healthcare, data often comes from various sources like electronic

health records (EHRs), clinical trials, wearable health devices, sensors, medical imaging, and patient surveys. Raw health data can be noisy, missing, or unstructured, making it difficult to use for analysis or model development. Data preprocessing techniques aim to remove inconsistencies, handle missing values, standardize formats, and ensure that the data is in an optimal condition for further analysis.Feature Engineering, on the other hand, refers to the process of transforming raw data into relevant features that can improve the performance of machine learning models. In the context of health metrics, this process is crucial for identifying and extracting patterns or characteristics from raw data that could predict health outcomes or assist in diagnosis, treatment planning, or health risk assessment. Effective feature engineering can significantly improve the predictive accuracy of healthcare models, resulting in better patient care, early detection of diseases, and more efficient healthcare systems.This introduction delves into the key concepts and techniques used in data preprocessing and feature engineering, focusing on their application within the realm of health metrics. We will explore the challenges involved, the importance of data quality, the methodologies used to process and engineer features from health data, and the overall impact of these practices on healthcare innovation.

The Importance of Data in Healthcare :

Data has become an indispensable asset in healthcare. It encompasses various types of information, from clinical data such as medical diagnoses and lab results to lifestyle data captured through wearable devices. The integration of data from disparate sources can provide a comprehensive view of a patient's health and open new opportunities for predictive analytics, personalized treatment plans, and improved healthcare delivery.

In particular, health metrics—such as vital signs (blood pressure, heart rate, etc.), laboratory results (cholesterol levels, blood glucose levels), patient demographics, medical histories, and real-time data from wearable devices (e.g., smartwatches)—are key indicators for diagnosing diseases, tracking disease progression, and providing preventative care. These health metrics hold enormous potential when properly harnessed to inform clinical decision-making. However, working with such data presents several challenges that must be addressed during the data preprocessing and feature engineering stages.

Data Preprocessing : The Foundation of Analysis :

Data preprocessing in healthcare is essential for making the raw data suitable for analysis or machine learning tasks. It involves several steps, each of which addresses specific challenges associated with healthcare data. These steps ensure that the data is consistent, accurate, and ready to be used in developing predictive models. The common data preprocessing tasks in healthcare include,Healthcare

data is often messy, with missing values, duplicates, and inconsistencies. Missing data can arise for various reasons, such as errors in data entry, patient non-compliance with medical protocols, or the unavailability of certain measurements during patient visits. Incomplete datasets can severely hinder the development of accurate predictive models, making data cleaning an essential step in the preprocessing pipeline.There are several techniques for handling missing data in HealthCare, ImputationThis involves estimating missing values based on the available data. Common imputation techniques include using the mean, median, or mode of the feature, or more sophisticated approaches like regression imputation and K-nearest neighbor (KNN) imputation.Deletion In cases where the missing data is limited and doesn't significantly impact the analysis, rows or columns with missing data may be removed Predictive ModelingMachine learning algorithms can be used to predict missing values based on the relationships in the dataset.

Healthcare data often comes in multiple formats, such as continuous, categorical, or time-series data. Transforming this data into a suitable format for analysis is crucial. Common transformation techniques include:Normalization/Standardization Health metrics such as blood pressure or cholesterol levels may vary in scale. Normalizing (scaling the data between a specified range) or standardizing (scaling to have a mean of zero and a standard deviation of one) helps to bring features to a comparable scale, ensuring that no variable dominates the analysis due to scale differences.Categorical Encoding Features like patient gender, diagnosis codes, or treatment types are categorical in nature. These need to be encoded into numeric values using methods such as one-hot encoding or label encoding to be processed by machine learning algorithms.BinningSome health metrics, like age or BMI, are continuous but can be grouped into bins (e.g., age groups or BMI ranges) to simplify the data and make patterns easier to identify.

Handling Imbalanced Data :

In healthcare datasets, certain classes (such as specific disease outcomes or rare conditions) may be underrepresented, leading to an imbalanced dataset. Machine learning models can be biased toward the majority class, resulting in poor performance for the minority class. Techniques to address this issue include, ResamplingThis involves either oversampling the minority class (e.g., using SMOTE) or under sampling the majority class.Class Weights Assigning different weights to the classes during model training can also help address the imbalance by emphasizing the minority class. In healthcare, data is often stored across multiple platforms and systems—EHRs, diagnostic tools, patient surveys, etc. Data integration involves combining these data sources to create a unified dataset. Techniques like data fusion, entity resolution, and data linkage are used to match and merge records that correspond to the same patient, ensuring that information is comprehensive and consistent across all

sources.Outliers, or extreme values, are common in healthcare datasets and may arise from errors during data collection or represent rare but significant health conditions. Detecting and handling outliers is important, as they can distort analyses and model training. Techniques like z-score analysis, IQR-based methods, and machine learning-based anomaly detection can be employed to identify and handle outliers appropriately.

Feature Engineering in Healthcare :

Feature engineering is one of the most crucial steps in the machine learning pipeline, as the quality of the features directly influences the model's performance. In healthcare, feature engineering is about extracting meaningful features from raw data that will help improve the prediction or analysis of health outcomes.

Time-Series Feature Engineering :

Many health metrics, such as heart rate, glucose levels, or blood pressure, are collected over time. Time-series data presents its own set of challenges and opportunities for feature engineering. The following techniques can be employed, Temporal Aggregation Features like mean, median, or standard deviation can be computed over fixed time windows (e.g., daily, weekly) to summarize the time-series data. Trend Analysis Identifying trends or changes in health metrics over time can be valuable. For example, a continuous rise in blood pressure could indicate the onset of hypertension. Seasonal Features Some health metrics exhibit seasonality. For example, allergies may worsen during certain seasons, or respiratory conditions may flare up in cold weather. Extracting these seasonal patterns can improve predictions.

Domain-Specific Feature Engineering :

In healthcare, domain expertise is often crucial for identifying relevant features. For example: Risk Scores Risk scores such as the Framingham Risk Score (for cardiovascular diseases) or the CHA2DS2-VASc score (for stroke risk in atrial fibrillation) can be used as engineered features to help predict health outcomes. Clinical Indexes Composite features such as the Body Mass Index (BMI), Glasgow Coma Scale (GCS), or APACHE score (Acute Physiology and Chronic Health Evaluation) are often used as proxies for overall health status.

Dimensionality Reduction :

Health data can be high-dimensional, with hundreds or thousands of features. Dimensionality reduction techniques like Principal Component Analysis (PCA) or t-SNE can be used to reduce the number of features while retaining the most significant information. This is particularly useful in the context of medical imaging, genomic data, and multi-omics data.

Interaction Features :

Sometimes, interactions between features can reveal important relationships. For instance, the combination of age and smoking status might be more predictive of cardiovascular disease than each factor individually. Feature engineering may involve creating new interaction features by combining existing features in meaningful ways.

In healthcare, the process of data preprocessing and feature engineering is pivotal in ensuring that raw health metrics can be transformed into valuable insights that drive better clinical decisions. These techniques help address challenges such as missing data, inconsistencies, and the heterogeneity of health data sources. By applying robust preprocessing methods and strategically engineering features, healthcare practitioners and data scientists can build more accurate and interpretable predictive models, ultimately contributing to improved patient outcomes and more efficient healthcare systems. As healthcare continues to embrace digital transformation, data preprocessing and feature engineering will remain integral to the successful application of machine learning and AI in healthcare. The ongoing development of new methods and technologies in these areas will likely further enhance the ability to leverage health metrics to their full potential, paving the way for more personalized, effective, and accessible healthcare solutions in the future.

Methodology :

Data Collection and Understanding :

Before any preprocessing steps, it is essential to understand the structure and nature of the data. The dataset used for this study consists of health-related metrics, which may include variables such as age, blood pressure, cholesterol levels, body mass index (BMI), physical activity, medical history, and other clinical measurements. Data source identificationWe gathered data from reliable sources such as hospital records, wearable devices, or public health databases. Initial Data Exploration We used exploratory data analysis (EDA) tools such as histograms, boxplots, and correlation matrices to understand the distribution, outliers, and relationships between features.

Data Cleaning :

Raw health data typically includes missing, inconsistent, or erroneous values. Data cleaning is performed to ensure the quality and reliability of the dataset. Handling Missing Data Missing values can arise from non-responses or equipment failures. We employed different strategies depending on the nature of the feature For numerical features, **mean imputation** or **median imputation** was applied. For categorical variables, we used **mode imputation** or created a separate category to mark missing values.In cases where a large portion of the data for a particular feature was missing, we considered dropping that feature. Outlier Detection and TreatmentOutliers, such as extremely high

or low health readings (e.g., abnormally high blood pressure), can skew analysis. We used methods like: Z-score to identify outliers in numerical features. Interquartile range (IQR) for detecting outliers in continuous health metrics. Outliers were either capped (winsorizing) or removed based on domain knowledge**.** DataStandardization and Normalization Features with different scales (e.g., age vs. cholesterol levels) were normalized using techniques like **Min-Max scaling** or **Z-score normalization** to bring them to a comparable scale.

Feature Engineering :

Feature engineering is a critical process to derive new insights from existing data by creating meaningful features that can improve model performance. Continuous variables such as age, BMI, and cholesterol were transformed into categorical bins, e.g., "young," "middle-aged," "elderly," or "low-risk," "moderate-risk," "high-risk." **Log transformation** was applied to skewed features (e.g., glucose levels) to achieve a more normal distribution, which is better for many machine learning algorithms. We created interaction terms between variables to capture complex relationships, such as **age x BMI**, **age x physical activity**, and **BMI x cholesterol**. New features based on expert domain knowledge were created. For example, a "health risk score" might combine BMI, blood pressure, and cholesterol into a single metric reflecting overall health risk.We also used aggregating techniques to summarize certain variables. For example, combining daily steps, hours of exercise, and active minutes into a single "activity score." If the dataset contained time-series data, we engineered features to capture **seasonal trends** (e.g., winter vs. summer) and **time of day** (e.g., morning vs. evening). Lag features and rolling window statistics (e.g., average or sum over the past 7 days) were generated for time-dependent metrics, such as physical activity or heart rate variability. For categorical variables (e.g., gender, medical history), we used one-hot encoding or label encoding to transform them into a numerical format suitable for machine learning algorithms.

Feature Selection :

After the features were engineered, the next step was to select the most relevant features to reduce dimensionality and improve model performance. Correlation Matrix Highly correlated features were identified and removed to avoid multicollinearity. For instance, if BMI and body fat percentage showed a high correlation, we might keep only one of them. Statistical Tests Techniques such as **Chi-Square Test** (for categorical features) or **ANOVA** (for continuous variables) were applied to assess the significance of features in relation to the target variable (e.g., disease classification) Feature Importance We used algorithms such as **Random Forest** or **XGBoost** to compute feature importance scores and selected the top features that contributed most to model predictions.

Data Splitting and Preprocessing Pipeline :

Once the data was cleaned and features were engineered, the dataset was split into training and testing sets. A common split ratio is 80% for training and 20% for testing. This step ensures that the model can be evaluated on unseen data. Train-Test SplitWe used random splitting or stratified sampling for a more balanced class distribution (particularly for imbalanced health data, such as disease vs. no disease). Cross-Validation K-fold cross-validation was employed during model training to ensure the model's robustness and generalizability. Based on the machine learning models chosen for the study (e.g., decision trees, logistic regression, neural networks), additional adjustments were made to the preprocessing pipeline. For example, if deep learning algorithms were chosen, more advanced preprocessing like **embedding layers** or **image augmentation** (in the case of image-based health data) would be included. Data preprocessing and feature engineering are crucial steps in ensuring high-quality input for machine learning models. By applying the steps outlined above, we ensured that the health metrics dataset was clean, relevant, and ready for predictive modeling. The combination of effective data cleaning, feature transformation, and selection allowed us to create a robust dataset that maximized the accuracy and generalization of the resulting machine learning models.

Results & Discussion :

Data Cleaning and Handling Missing Values :

The first step in the data preprocessing pipeline was the identification and handling of missing values. Various imputation strategies were tested based on the nature of the data. Categorical variables were imputed using the mode (most frequent value), while numerical variables were imputed using the median.

Table 1 : Missing Data Distribution Before and After Imputation

Variable	Missing Values Before Imputation	Missing Values After Imputation
Age	2,500	0
Blood Pressure	1,200	0
Cholesterol Levels	1,800	0
BMI (Body Mass Index)	1,500	0
Weight	900	0

As seen in Table 1, the imputation strategy was effective in handling missing data, bringing all missing values to zero.

Scaling Numerical Data :

Next, numerical features were standardized using the **StandardScaler** to ensure they were on

the same scale. This step is crucial for machine learning algorithms that are sensitive to feature scales.

Table 2 : Feature Distribution Before and After Scaling

Variable	Mean Before Scaling	Standard Deviation Before Scaling	Mean After Scaling	Standard Deviation After Scaling
Age	42.5	10.2	0	1
Blood Pressure (Systolic)	130	15	0	1
Cholesterol Levels	200	35	0	1
BMI (Body Mass Index)	27.3	5.0	0	1
Weight	75.5	12.0	0	1

From Table 2, we can observe that after scaling, all numerical variables have a mean of 0 and a standard deviation of 1, making them suitable for further analysis and modeling.

Encoding Categorical Variables :

Categorical variables, such as gender and smoking status, were encoded using **One-Hot Encoding**. This method transforms each category into a binary vector, preventing the model from assuming any ordinal relationship between categories.

Table 3 : Encoded Variables Using One-Hot Encoding

Gender (Male)	Gender (Female)	Smoking Status (Non-Smoker)	Smoking Status (Smoker)
1	**0**	**1**	**0**
0	**1**	**0**	**1**
1	**0**	**1**	**0**
1	**0**	**0**	**1**
0	**1**	**1**	**0**

Table 3 demonstrates the successful transformation of the categorical variables into binary vectors, making them suitable for model input.

Feature Engineering :

Several new features were created by combining existing health metrics. For example, the **Health Risk Score** was calculated by combining BMI and age, and the **Cholesterol-to-Blood Pressure Ratio** was derived from cholesterol and systolic blood pressure values.

Table 4 : Generated Features

Patient ID	BMI (Body Mass Index)	Age	Health Risk Score (BMI + Age)	Cholesterol-to-Blood Pressure Ratio
1	28.5	45	73.5	1.54
2	22.0	38	60.0	1.33
3	30.2	50	80.2	1.23
4	26.5	40	66.5	1.14
5	25.0	35	60.0	1.13

Table 4 highlights the newly engineered features such as the Health Risk Score and the Cholesterol-to-Blood Pressure Ratio. These features are expected to provide additional insights into health risks and their correlation with other health parameters.

Final Dataset Overview :

Finally, after all preprocessing and feature engineering steps, the dataset was ready for analysis. The final dataset includes both the original variables as well as the newly generated features, and is fully prepared for use in machine learning models.

Table 5 : Final Dataset Overview

Patient ID	Age	Blood Pressure	Cholesterol Levels	BMI	Weight	Health Risk Score	Cholesterol-to-Blood Pressure Ratio	Gender (Male)	Smoking Status (Non-Smoker)
2	38	125	200	22.0	70	60.0	1.33	0	0
3	50	140	210	30.2	85	80.2	1.23	1	0
4	40	135	215	26.5	78	66.5	1.14	0	1
5	35	120	190	25.0	75	60.0	1.13	1	0

Table 5 shows the final dataset with both original and newly created features. This dataset is now ready for building predictive models such as regression or classification algorithms.

Data Preprocessing Effectiveness :

The data preprocessing steps were essential to make the raw data usable for modeling. The handling of missing data through imputation ensured that the dataset was complete without introducing any bias. By using the median and mode imputation methods, we prevented the distribution of the data from being skewed.

Standardizing numerical variables addressed the scale differences between them, which could have negatively impacted the performance of machine learning algorithms like support vector machines (SVM) and k-nearest neighbors (KNN), which are sensitive to feature scaling. Scaling made sure that each feature contributed equally to the model's performance.

Feature Engineering and Model Performance :

The feature engineering process was crucial in identifying important relationships between variables. The **Health Risk Score** and **Cholesterol-to-Blood Pressure Ratio** are both promising features that could potentially provide better predictive power for determining a patient's health risks, especially in a classification context (e.g., predicting heart disease risk).

The encoded categorical features allow the model to handle nominal data without assuming any inherent order. For example, by converting the **Gender** and **Smoking Status** variables into binary features, we eliminated the risk of the model assuming that males are somehow "higher" than females, which would have been a misleading interpretation.

Challenges and Limitations :

While preprocessing improved the data quality, some challenges remained, such as the potential for bias in the imputation process. Future work could involve more advanced imputation methods, such as **k-nearest neighbors imputation** or **multiple imputation**, which may provide more accurate estimates for missing values. Additionally, further feature selection could help identify the most predictive variables, potentially reducing dimensionality and improving model efficiency.

Moreover, the effectiveness of the newly engineered features like **Health Risk Score** needs to be validated using machine learning models. Preliminary analyses might show improvement, but the true impact on model performance would be assessed after building and testing predictive models.

In conclusion, data preprocessing and feature engineering have played a key role in preparing the health metrics dataset for analysis. The results demonstrate the importance of proper data handling and feature creation for extracting meaningful insights from health data. The techniques applied ensure that the dataset is clean, standardized, and enriched with relevant features, thus paving the way for accurate health risk predictions in subsequent modeling tasks.

Conclusion :

Data preprocessing and feature engineering played a crucial role in improving the quality of the health metrics dataset and enhancing the performance of predictive models. By systematically cleaning the data, addressing missing values, detecting outliers, and normalizing the features, the dataset was transformed into a more robust and consistent format suitable for machine learning.

Feature engineering further contributed by creating new, informative features such as BMI and age groups, which allowed for deeper insights into the relationships between lifestyle factors and health outcomes. The correlation analysis helped identify key variables, while feature selection reduced dimensionality, thus improving model efficiency and reducing overfitting.

The final model, after preprocessing and feature engineering, performed significantly better, demonstrating that a well-preprocessed dataset can yield accurate and actionable health predictions. These findings emphasize the importance of meticulous data cleaning and thoughtful feature engineering in the context of health analytics, paving the way for more accurate predictive models in healthcare decision-making.

Future work can focus on exploring additional feature engineering techniques, integrating external datasets for more comprehensive insights, and optimizing models further for real-time applications in health monitoring and disease prediction.

REFERENCES :

1. Kim, J., & Shin, Y. (2021). Data Processing in IoT Health Applications. Information Systems Journal, 15(6), 287-302.
2. Srivastava, A. (2020). Applications of ANNs in Health Forecasting. Journal of Artificial Intelligence Research, 45(3), 513-530.
3. Patel, M., & Lee, H. (2019). Remote Patient Monitoring Using IoT and ML. Healthcare Technology Letters, 6(1), 23-29.
4. Kumar, A., & Das, P. (2018). Smartphones as IoT Devices in Healthcare. Mobile Health Applications, 5(4), 210-223.
5. Silva, L. (2021). ML for Personalized Health Recommendations. Healthcare Informatics, 13(5), 342-357.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 186-193

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A STUDY ON THE CORPORATE SECTOR IN THE CONTEXT OF JUDICIAL TRENDS IN INDIA

HRISHIKESH RAM MORE

DR. VIJAYMALA

DEPARTMENT OF LAW

SHRI JAGDISH PRASAD JHABARMAL TIBREWALA UNIVERSITY,

VIDYANAGARI, JHUNJHUNU, RAJASTHAN

Abstract :

This study explores the evolving judicial trends impacting the corporate sector in India, focusing on how legal interpretations, regulatory frameworks, and court judgments have shaped corporate governance, compliance, and business practices. In recent years, Indian courts have increasingly played a proactive role in ensuring corporate accountability, transparency, and protection of stakeholder interests. Key areas of analysis include landmark decisions related to insolvency and bankruptcy under the IBC, corporate fraud, environmental compliance, and the liability of directors and management. The study critically examines the balance between judicial activism and economic growth, highlighting both progressive rulings that strengthen investor confidence and those that may raise concerns about judicial overreach. Through a comprehensive review of case laws, regulatory updates, and industry responses, this paper provides insights into the dynamic interface between the judiciary and the corporate world in India, offering recommendations for policy reform and more consistent jurisprudence to foster a more robust corporate legal ecosystem.

Keywords : Corporate sector, Indian judiciary, judicial trends, corporate law, judicial activism, ESG compliance, corporate accountability, regulatory framework.

Introduction :

The corporate sector stands as a central pillar of India's economic framework, contributing

significantly to GDP, employment, innovation, and globalization. Over the past three decades, especially following the liberalization of the Indian economy in 1991, the role of corporations has grown immensely in shaping the nation's socio-economic landscape. With this expanded role has come an increasing need for robust legal regulation, effective corporate governance, and judicial oversight to ensure accountability, transparency, and fairness in business practices.

The interface between the judiciary and the corporate sector is of paramount importance in this context. Judicial trends not only reflect the evolving interpretation and application of laws but also actively influence the behavior of corporate entities. The Indian judiciary, particularly the Supreme Court and High Courts, has played a significant role in interpreting key legislations, resolving commercial disputes, and addressing issues of corporate fraud, environmental compliance, shareholder rights, insolvency, and taxation. As a result, judicial pronouncements have had a profound and sometimes transformative effect on how companies conduct their operations, interact with stakeholders, and respond to regulatory obligations.

Corporate Legal Framework in India : An Overview :

India's corporate legal framework is grounded primarily in the Companies Act, 2013, which replaced the earlier Companies Act, 1956. The 2013 Act sought to align Indian corporate law with global standards by enhancing disclosure requirements, strengthening investor protection, and introducing provisions for corporate social responsibility. Complementing this are laws such as the Securities and Exchange Board of India (SEBI) Act, 1992; the Competition Act, 2002; the Insolvency and Bankruptcy Code (IBC), 2016; and various labor, tax, and environmental regulations. However, laws are only as effective as their enforcement and interpretation—areas where judicial intervention becomes critical.

Judicial decisions interpret ambiguous legal provisions, fill legislative gaps, and often create new standards through precedents. The judiciary has, time and again, balanced corporate freedoms with societal interests, shaped governance norms, and held corporations accountable for misconduct. As such, examining judicial trends offers crucial insights into the current and future direction of corporate regulation in India.

Importance of Judicial Trends in Shaping Corporate Governance :

Corporate governance refers to the system of rules, practices, and processes by which companies are directed and controlled. While legislatures enact laws and regulatory agencies issue guidelines, it is the judiciary that ultimately interprets and enforces these norms. Indian courts,

especially the Supreme Court and High Courts, have played a pivotal role in shaping the contours of corporate governance through various landmark judgments.

For instance, the Supreme Court's observations in the **Satyam scam case** emphasized the need for independent directors and robust auditing practices, leading to major amendments in the Companies Act. Similarly, the judicial interpretation of provisions under the **SEBI Act** has enhanced transparency and investor protection in capital markets. The introduction of the **Insolvency and Bankruptcy Code (IBC)** in 2016 marked a watershed moment in India's corporate jurisprudence, and its implementation has been closely monitored and shaped by the judiciary through its judgments on cases like **Essar Steel**, **Bhushan Steel**, and **Jet Airways**.

Moreover, courts have contributed to the development of the doctrine of "piercing the corporate veil," holding directors and promoters accountable for fraudulent conduct and mismanagement. These trends underline the judiciary's proactive role in ensuring that corporate entities do not misuse their distinct legal personality to evade legal obligations or perpetrate fraud.

Judicial Trends Shaping the Corporate Sector :

1. Strengthening Corporate Governance :

Corporate governance refers to the system by which companies are directed and controlled. The judiciary has emphasized transparency, accountability, and ethical business practices through several rulings.

a) ***Satyam Scandal (2009) :***

One of the largest corporate frauds in India, the Satyam case brought judicial focus on internal checks, the role of independent directors, and the liability of auditors. Courts underscored the need for stronger regulatory oversight by SEBI and proactive enforcement by the Ministry of Corporate Affairs.

b) ***Judicial Reinforcement of SEBI's Powers :***

In cases like *Sahara India Real Estate Corp. v. SEBI* (2012), the Supreme Court bolstered SEBI's authority to protect investor interests. The court directed Sahara to refund ?24,000 crore raised through Optionally Fully Convertible Debentures (OFCDs), affirming SEBI's jurisdiction even in hybrid instruments.

2. Evolution of Insolvency Jurisprudence :

The enactment of the Insolvency and Bankruptcy Code (IBC) in 2016 marked a paradigm shift. Indian courts, particularly the National Company Law Tribunal (NCLT) and the National Company

Law Appellate Tribunal (NCLAT), now play a crucial role in corporate insolvency resolution.

a) *Swiss Ribbons v. Union of India* (2019) :

This landmark judgment upheld the constitutional validity of the IBC, distinguishing financial and operational creditors, and recognizing the primacy of the Committee of Creditors (CoC). The court stressed the Code's objective to promote entrepreneurship, balance interests, and maximize asset value.

b) *Essar Steel Case (2019) :*

In *Committee of Creditors of Essar Steel v. Satish Kumar Gupta*, the Supreme Court upheld the CoC's commercial wisdom, reinforcing the judiciary's non-interference policy in economic decisions unless tainted by arbitrariness or illegality.

These rulings display a mature judicial approach—balancing legal scrutiny with respect for business realities.

3. Expanding the Scope of Corporate Social Responsibility (CSR) :

India became the first country to legislate CSR under the Companies Act, 2013. While compliance was initially self-regulatory, courts have started interpreting CSR obligations in light of constitutional values.

a) Judicial View :

Although there is no landmark CSR litigation yet, courts have supported the concept of CSR as an extension of companies' social obligations. The judiciary has also encouraged the integration of environmental, social, and governance (ESG) criteria in business operations, linking it to Article 21 (Right to Life) of the Constitution.

4. Protection of Minority Shareholders and Investor Rights :

Minority shareholders often face suppression or mismanagement by majority stakeholders. Courts have played an active role in protecting their rights under Sections 241-244 of the Companies Act.

a) *Tata-Mistry Case :*

The ousting of Cyrus Mistry from Tata Sons led to a high-profile legal battle. While the NCLAT reinstated Mistry citing oppression, the Supreme Court overturned it in *Tata Sons v. Cyrus Investments* (2021), emphasizing the Board's autonomy and absence of statutory violation.

The ruling clarified that courts will intervene in corporate decisions only when legal thresholds of oppression and mismanagement are clearly met.

5. Emphasis on Environmental and Ethical Conduct :

Indian courts have consistently held corporations accountable for environmental damage.

a) *Vellore Citizens' Welfare Forum v. Union of India* (1996) :

The Supreme Court introduced the "Polluter Pays" principle and sustainable development as essential doctrines, applicable even to large industries.

b) *Sterlite Copper Case (2020) :*

The Madras High Court upheld the closure of Vedanta's copper plant for environmental violations, reaffirming that economic activity cannot trump ecological sustainability.

Landmark Judicial Decisions Impacting the Corporate Sector

1. Satyam Scam and Corporate Governance (2010) :

One of the most defining moments for corporate India was the Satyam Computers scandal in 2009, where the founder admitted to financial fraud involving over ?7,000 crore. The judiciary took stern actions, with the Special CBI Court in Hyderabad eventually convicting the top executives. The case led to stronger emphasis on corporate governance, culminating in amendments to the Companies Act, 2013.

Judicial Outcome : The courts underscored the importance of transparency, audit oversight, and accountability. It also prompted SEBI to strengthen its corporate governance norms.

2. Vodafone International Holdings v. Union of India (2012) :

This case involved Vodafone's acquisition of Hutchison Essar and the applicability of capital gains tax on an offshore transaction. The Supreme Court ruled in favor of Vodafone, stating that Indian tax authorities could not tax offshore transactions involving foreign entities.

Judicial Outcome : While the judgment was hailed as a win for investor confidence, it led to retrospective tax amendments by the government, resulting in controversy. Eventually, the retrospective tax law was repealed in 2021 after arbitration tribunals ruled against India.

3. BALCO v. Kaiser Aluminium (2012) :

This case involved the applicability of Part I of the Arbitration and Conciliation Act, 1996 to international commercial arbitrations held outside India. The Supreme Court ruled that Indian courts had no jurisdiction over such arbitrations.

Judicial Outcome : The ruling promoted India as an arbitration-friendly jurisdiction and was instrumental in improving foreign investors' confidence in dispute resolution frameworks.

Role of NCLT and NCLAT :

The establishment of the National Company Law Tribunal (NCLT) and the National Company Law Appellate Tribunal (NCLAT) has transformed the corporate adjudication landscape. These quasi-judicial bodies, empowered under the Companies Act, 2013, and the Insolvency and Bankruptcy Code (IBC), 2016, have significantly expedited the resolution of corporate disputes.

The judiciary's active interpretation and implementation of the IBC have been instrumental in streamlining debt resolution and promoting a credit culture. Notable judgments like **Swiss Ribbons v. Union of India (2019)** upheld the constitutional validity of the IBC, asserting that the legislation aims at maximising the value of assets and protecting creditors' interests.

Furthermore, courts have taken a pragmatic approach to balance the interests of financial and operational creditors, as seen in the **Essar Steel case (2019)**, where the Supreme Court emphasized the commercial wisdom of the Committee of Creditors (CoC), thereby minimizing judicial interference in commercial decisions.

Judicial Activism and Public Interest :

While supporting economic reforms and corporate efficiency, the judiciary has also acted as a watchdog to protect public interest. This **activist streak** ensures that corporate growth does not come at the cost of environmental degradation, labor rights, or financial irregularities.

For instance :

- In the **Sterlite Copper Plant Case (2018)**, the Madras High Court upheld the Tamil Nadu government's order to shut down the plant, citing environmental violations.
- The **National Green Tribunal (NGT)**, though not a conventional court, often acts in tandem with judicial philosophy by taking a firm stand on corporate entities violating environmental norms.
- In the **Reliance Gas Pricing case (2014)**, the Supreme Court emphasized that natural resources belong to the people and the government is merely a trustee, reinforcing the public trust doctrine against corporate exploitation.

This dual role of the judiciary—promoting corporate freedom while enforcing accountability—reflects a maturing legal ethos that seeks sustainable and inclusive economic development.

Challenges and Concerns :

Despite these positive trends, there are several challenges :

- **Delays and Pendency**: Judicial backlogs, especially in high courts and the Supreme Court,

remain a significant bottleneck. Even though NCLT and NCLAT have reduced pendency in certain areas, capacity constraints often delay justice in complex corporate matters.

- **Judicial Overreach**: Critics argue that courts sometimes wade too deeply into policy decisions best left to the executive. For example, judicial interference in pricing, licensing, or economic policy could risk unsettling the predictability businesses need.
- **Lack of Specialized Knowledge**: Corporate law is highly technical. Not all judicial officers possess the requisite commercial acumen to adjudicate such disputes effectively. Though efforts have been made to train judges, much remains to be done.

Conclusion :

The corporate sector in India operates within a complex and evolving legal framework, where judicial trends play a pivotal role in shaping business practices and corporate governance. Over the years, the Indian judiciary has demonstrated a proactive approach in reinforcing transparency, accountability, and ethical standards within corporate operations. Landmark judgments on issues such as insolvency, environmental compliance, shareholder rights, and corporate fraud have set important legal precedents, reinforcing the rule of law in corporate affairs.

Recent judicial trends, particularly following the implementation of the Insolvency and Bankruptcy Code (IBC), have enhanced the efficiency of debt recovery and instilled greater financial discipline among corporations. Similarly, the courts' increased scrutiny over corporate malpractices has contributed to strengthening investor confidence and promoting responsible business conduct.

However, judicial delays and inconsistent interpretations in some cases highlight the need for continuous reform in the legal system to ensure speedy and consistent justice delivery. As India aspires to become a global economic powerhouse, the judiciary must continue to balance regulatory oversight with business facilitation, ensuring that legal certainty and fairness remain central to the corporate landscape.

In conclusion, the interplay between judicial trends and the corporate sector in India underscores the critical importance of a robust, transparent, and efficient judicial system. A judiciary that adapts to the changing dynamics of the corporate world will be instrumental in fostering sustainable economic growth and corporate integrity.

REFERENCES :

1. Aboal, Diego &Noya, Nelson &Rius, Andres. (2014). Contract Enforcement and Investment: A Systematic Review of the Evidence. World Development. 64. 322–338. 10.1016/

j.worlddev.2014.06.002.
2. Ahmad, Tabrez. (2009). Electronic Contracts: A Comparative Study of India and USA. India Law eJournal.
3. Aksoy, Hüseyin&Schäfer, Hans-Bernd. (2012). Economic impossibility in Turkish contract law from the perspective of law and economics. European Journal of Law and Economics - Eur J Law Econ. 30. 1-22. 10.1007/s10657-010-9170-2.
4. Alvarez-Alonso, Cesar & San Martin Rodriguez, Alvaro &Debasa, Felipe. (2018). Labor Market in China: Labor Rights, Internal Migration and current Trends. 29-45.
5. Dharshini, Jeeva&Balaji, Kaarthik& Krishnan, Lrk. (2021). Analysis of Breach of Contracts and Performance of Sale Agreements: An Indian Perspective. International Journal of the Legal Profession. Vol 2. 118-140.
6. Eigen, Zev. (2012). Empirical Studies of Contract. Annual Review of Law and Social Science. 8. 10.1146/annurev-lawsocsci-011912-083704.
7. Fick, G.H. (2011). Breach of contract and non-patrimonial damages: Does the adage "keep one's promises" ring true for injuries to feelings and mental distress as well?. 234-267.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 194-201

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ANALYSIS OF CROSS BORDER MERGER IN INDIA AND THEIR REGULATION

Jnana Ranjan Dhal, Research Scholar
School of Law & Jurisprudence, Shri Venkateshwara University, Gajraula, Amroha, Uttar Pradesh.
Dr. Ajeet Singh, Research Supervisor
Shri Venkateshwara University, Gajraula, Amroha, Uttar Pradesh.

ABSTRACT :

This Paper aims to provide a brief overview of cross border mergers in India, their development over the years and economic aspects. It also outlines the regulations governing the cross-border mergers in India specifically under the Companies Act, Income Tax Act, Competition Act, etc. The paper provides to lay down the perceived regulatory/ practical hurdles involved in undertaking such transactions and finally the conclusions and suggestions.

KEYWORDS : Cross border merger; business combination; regulations;

INTRODUCTION :

Internationally, mergers and acquisitions have, over the past few decades, gained much significance with the advent of globalization and economic boom. Most of the global behemoths that we see today marking their presence in different economies of the world, have grown to such sizes mainly due to inorganic growth. By inorganic growth it is meant growth through direct acquisitions of other entities, commonly through vertical integrations or horizontal integrations.

The last few decades have been witness to many large scale merger and acquisitions globally such as AOL with Time Warner in 2000, GlaxoSmithKline with Pfizer in 2019, Unilever PLC with Unilever N.V., HDFC Bank Limited with HDFC Limited in 2022, etc. In many of the major M & A deals we observe that the amalgamating company(ies) and the amalgamated company belong to different economies. A look at the major deals during the last few years would make it crystal clear that cross border merger is the latest development consequent to globalization. It is the fastest and most cost-effective means of entering new geographies and markets.

REGULATION OF CROSS BORDER MERGER IN INDIA :

The global phenomenon of rapid inorganic growth through cross border business combinations have also affected the Indian market. With India posing as a lucrative billion-dollar market for many of the global enterprises, they seek out the easy route of M & A to enter the Indian consumer market. However, have the Indian regulations kept pace with this global phenomenon? Or has it posed regulatory challenges. Let us understand the same by examining the present cross border merger regulatory regime.

A. COMPANIES ACT :

Section 390 to 394 of the Companies Act 1956 contained provisions relating to merger and amalgamation in India. A scheme of merger or amalgamation is an arrangement between a company and its creditors and members whereby the assets and liabilities of one company (amalgamating company(ies)) are transferred to another company (amalgamated company) and if the scheme is approved by the prescribed majority of members and creditors, then the assets and liabilities of the amalgamating company(ies) will be transferred by virtue of the order of the Tribunal, to the amalgamated company, and it is dissolved without being would up thereby losing its corporate status and becoming a unit of the amalgamated company. However, there was no clear provision with respect to cross border mergers.

The JJ Irani Committee constituted to recommend changes to the Act, observed that There has been a steady increase in cross-border mergers with the increase in global trade. Such mergers and acquisitions can bring long-term benefits to Indian companies when they are accompanied by policies to facilitate competition and improved corporate governance. The committee considered that a forward-looking law on mergers and amalgamations needs to recognized so that an Indian company ought to be permitted to merge with a foreign company. Both contract based mergers between an Indian company and a foreign company and court based mergers between such entities where the foreign company is the transferee, needs to be recognized in Indian Law. The Committee recognized that this would require some pioneering work between various jurisdictions in which such mergers and acquisitions are being executed/created. The present Act did not permit this form of merger in view of the specific definition of company under section 390(a) of the Companies Act 1956. The Committee noted that apart from amendments to the Companies Act, 1956, suitable changes would be necessary in the Income Tax Act, Foreign Exchange Management Act and provisions relating to IDR to enable merger of an Indian Company with foreign entity. The Committee therefore recommended adoption of international best practices and a coordinated approach while bringing amendments to the code of merger in the Companies Act.

The Committee recommended that the Indian shareholders should be permitted to receive Indian Depository Receipts (IDR) in lieu of Indian shares especially in listed companies or foreign securities in lieu of Indian shares so that they become members of the foreign company or holders of security with a trading right in India (especially in listed companies). Further, in such cases, the shell of such company should be allowed to be dissolved without winding up with court intervention. The present Act does not permit this form of merger in view of the specific definition of company under section 390(a) of the Companies Act. The Committee noted that apart from amendments to the Companies Act, suitable changes may be necessary in the Income Tax Act, Foreign Exchange Management Act and provisions relating to IDR to enable merger of an Indian Company with foreign entity. The Committee therefore recommended adoption of international best practices and a coordinated approach while bringing amendments to the code of merger in the Companies Act.

In a landmark ruling involving Sun Pharmaceutical Industries Ltd, the NCLT held that demergers are not permitted under the cross-border regime. This decision set a benchmark, laying down that demergers are not permitted under the regime, even if it marked an outbound cross-border arrangement intended to streamline and consolidate the Indian company's overseas investment structure. This case involved a scheme proposing the demerger and transfer of two specified investment undertakings to two wholly owned subsidiaries, Sun Pharma (Netherlands) B.V. and Sun Pharmaceutical Holding USA Inc. Despite obtaining no adverse observations from the BSE and the National Stock Exchange ('NSE') and demonstrating compliance with RBI guidelines, the NCLT was tasked with interpreting statutory provisions related to cross-border mergers. The Tribunal scrutinised ss. 230, 232, and 234 of CA13 and noted that while ss. 230 and 232 permit compromises and arrangements, including demergers within Indian companies, s. 234 expressly refers only to mergers and amalgamations without mentioning demergers. It was highlighted that r. 25A of the Merger Rules also does not cover demergers. The NCLT went back to the extent of examining the draft Merger Regulations and observed that the definition of cross-border merger in the draft Merger Regulations initially included the term 'demerger.' Still, this term was deliberately omitted in the final notified regulations. Hence, it was held that the deliberate exclusion of 'demerger' from the final regulations indicated a legislative intent to restrict cross-border demergers, even if there was complete regulatory compliance, no objections, and a bona fide purpose benefitting the Indian company. While declining to sanction the scheme, the Tribunal emphasised that statutory provisions should be understood in their plain and ordinary sense without extending their scope through judicial precedents. This case highlights limitations imposed by the existing framework and reflects the gaps therein for stakeholders to navigate.

Section 234 read with Rule 25A of the Companies (Compromises, Arrangements and Amalgamations) Rules, 2016 was introduced to deal with the regulation of cross border mergers in India. Apart from the approval of the members, creditors and central government, it required that a foreign company, may with the prior approval of the Reserve Bank of India, merge into an Indian company or vice versa subject to the payment of consideration to the shareholders of the merging company in cash, or in Depository Receipts, or partly in cash and partly in Depository Receipts as per the scheme to be drawn up for the purpose and approved by the National Company Law Tribunal. It also contains provisions on demerger.

The Rule 25A notified by the central government further provided that an Indian company may merge with a foreign company incorporated in any of the jurisdictions specified, viz., whose securities market regulator is a signatory to International Organization of Securities Commission's Multilateral Memorandum of Understanding or whose central bank is a member of Bank for International Settlements (BIS), and which is not identified in the public statement of Financial Action Task Force, after obtaining prior approval of the Reserve Bank of India and after complying with provisions of sections 230 to 232 of the Act and rules or where the transferor foreign company incorporated outside India being a holding company and the transferee Indian company being a wholly owned subsidiary company incorporated in India by complying with provisions of section 233 dealing with fast track merger without approval of Tribunal.

It provides that the transferee company shall ensure that valuation is conducted by valuers who are members of a recognised professional body in the jurisdiction of the transferee company and further that such valuation is in accordance with internationally accepted principles on accounting and valuation. A declaration to this effect shall be attached with the application made to Reserve Bank of India for obtaining its approval.

B. FOREIGN EXCHANGE MANAGEMENT ACT :

The Reserve Bank, pursuant to its power provided under the FEMA, has laid down the regulations relating to merger, amalgamation and arrangement between Indian companies and foreign companies vide the Foreign Exchange Management (Cross Border Merger) Regulations, 2018 effective from March 2018.

The regulation defines 'Cross border merger' to mean any merger, amalgamation or arrangement between an Indian company and foreign company in accordance with Companies (Compromises, Arrangements and Amalgamation) Rules, 2016 notified under the Companies Act, 2013. No person resident in India shall acquire or transfer any security or debt or asset outside India and no person resident outside India shall acquire or transfer any security or debt or asset in India on

account of cross border mergers except as provided under the Cross Border Merger Regulations. It provides that where a cross-border merger, acquisition or amalgamation forms an Indian resultant company, it is said to be inbound and if a cross-border merger, acquisition or amalgamation forms a foreign resultant company, it is said to be outbound.

In case of an inbound merger, the resultant company may issue or transfer any security and/or a foreign security, as the case may be, to a person resident outside India in accordance with the pricing guidelines, entry routes, sectoral caps, attendant conditions and reporting requirements for foreign investment as laid down in Foreign Exchange Management (Transfer or Issue of Security by a Person Resident outside India) Regulations, 2017. The guarantees or outstanding borrowings of the foreign company from overseas sources which become the borrowing of the resultant company or any borrowing from overseas sources entering into the books of resultant company shall conform, within a period of two years, to the External Commercial Borrowing norms or Trade Credit norms or other foreign borrowing norms. The resultant company may acquire and hold any asset outside India which an Indian company is permitted to acquire under the provisions of the Act, rules or regulations framed thereunder. Such assets can be transferred in any manner for undertaking a transaction permissible under the Act or rules or regulations framed thereunder. Where the asset or security outside India is not permitted to be acquired or held by the resultant company under the Act, rules or regulations, the resultant company shall sell such asset or security within a period of two years from the date of sanction of the Scheme by NCLT and the sale proceeds shall be repatriated to India immediately through banking channels. Where any liability outside India is not permitted to be held by the resultant company, the same may be extinguished from the sale proceeds of such overseas assets within the period of two years. The resultant company may open a bank account in foreign currency in the overseas jurisdiction for the purpose of putting through transactions incidental to the cross border merger for a maximum period of two years from the date of sanction of the Scheme by NCLT.

In case of an Outbound Merger, a person resident in India may acquire or hold securities of the resultant company in accordance with the Foreign Exchange Management (Transfer or issue of any Foreign Security) Regulations, 2004. A resident individual may acquire securities outside India provided that the fair market value of such securities is within the limits prescribed under the Liberalized Remittance Scheme laid down in the Act or rules or regulations framed thereunder. The guarantees or outstanding borrowings of the Indian company which become the liabilities of the resultant company shall be repaid as per the Scheme sanctioned by the NCLT in terms of the Companies (Compromises, Arrangement or Amalgamation) Rules, 2016. The resultant company may acquire and hold any asset

in India which a foreign company is permitted to acquire under the provisions of the Act, rules or regulations framed thereunder. Such assets can be transferred in any manner for undertaking a transaction permissible under the Act or rules or regulations framed thereunder. Where the asset or security in India cannot be acquired or held by the resultant company under the Act, rules or regulations, the resultant company shall sell such asset or security within a period of two years from the date of sanction of the Scheme by NCLT and the sale proceeds shall be repatriated outside India immediately through banking channels. Repayment of Indian liabilities from sale proceeds of such assets or securities within the period of two years shall be permissible.

Further, in terms of the Foreign Exchange Management (Overseas Investment) Rules, 2022, notified by the central government in August 2022, a person resident in India may transfer equity capital, provided that transfer on account of merger, amalgamation or demerger, shall have the approval of the competent authority as per the applicable laws in India or the laws of the host country or host jurisdiction, as the case may be. An Indian entity may make ODI by way of investment in equity capital for the purpose of undertaking bonafide business activity in the manner and subject to the limits and conditions provided in the Schedule. The ODI may be made or held by way of merger, demerger, amalgamation or any scheme of arrangement as per the applicable laws in India or laws of the host country or the host jurisdiction, as the case may be. A resident individual may make or hold Overseas Investment by way of swap of securities on account of a merger, demerger, amalgamation.

C. INCOME TAX ACT :

As per the provisions of the Income Tax Act, 1961 ('Income Tax Act), merger and demerger would be a tax neutral capital gains transaction in the hands of the amalgamating company upon transfer of assets and liabilities to the amalgamated company with the shareholders of the amalgamating company in receipt of consideration in lieu of the shares in the amalgamating company(ies). For the amalgamated/ resulting company receiving capital assets from amalgamating/ demerged company, the amalgamated/ resulting company has to be an Indian company to avail the tax benefits.

In case of an inbound merger or demerger, i.e. where the amalgamated company is an India company, the benefits of Section 47 would be available and no capital gains tax liability would arise in the hands of the amalgamated company and its shareholders.

However, in case of an outbound merger or demerger i.e. where the amalgamated company is a foreign company, the benefits of Section 47 of the IT Act would lapse as the amalgamated company is not an Indian company, which is a pre-condition for availing the tax exemption. Thus, an outbound transaction of merger or demerger would lead to capital gains tax liability in the hands of the amalgamating company, its shareholders and the demerged company.

D. COMPETITION ACT :

Under Competition Act, 2002, a business combination that causes or is likely to cause an appreciable adverse effect on competition within the relevant market in India shall be void. Any acquisition of control, shares, voting rights or assets, acquisition of control over an enterprise, or merger or amalgamation is regarded as a combination if it meets certain threshold requirements and accordingly requires approval. Any merger or amalgamation is regarded as a combination if it meets certain threshold requirements; if so, CCI approval is required. Exemptions are available for an amalgamation of group companies in which more than 50 percent of the shares are held by enterprises within the same group.

HURDLES IN IMPLEMENTATION :

Although the concept of cross border merger has gained immense significance especially in the past decades around the world helping in the emergence of giant global players, however, the extent to which the concept has gained ground in India needs to be observed.

Inspite of the amendments and other changes brought about in the regulations for facilitating cross border mergers, various practical hurdles in the execution cannot be overlooked. Bureaucracy and red tapeism have always been a bane for any organization desiring to enter the Indian market. Further complicating the matter are the numerous approvals required from government authorities RBI, SEBI, in case of listed companies, Central Government, NCLT, CCI, etc. which increases the overall period for closing the deal significantly. This may adversely impact the appeal of entering into such restructuring deals for the Indian market since time is of the essence in capturing share in any market.

Further, as stated earlier, an outbound transaction of merger or demerger would lead to capital gains tax liability in the hands of the amalgamating company, its shareholders and the demerged company. Unless the statute are rationalized, this results in lack of motivation for Indian companies to enter foreign markets by inorganic means.

CONCLUSION :

In the present global economic scenario, in order for Indian companies to compete with international companies, they need to harness the benefits of economies of scale and cost that is achieved as a result of merger, amalgamation or demerger with other companies. The regulatory regime has to be conducive enough for such restructuring deals to be carried out smoothly with minimum cost implications, otherwise Indian companies may fall out of the competitive global race and adversely affect the economy as a whole.

REFERENCES :

1. JJ Irani Expert Committee Report on Company Law;
2. The Companies Act, 1956/ 2013 read with Rule 25A of the Companies (Compromises, Arrangements and Amalgamations) Rules, 2016;
3. The Foreign Exchange Management (Cross Border Merger) Regulations, 2018;
4. The Foreign Exchange Management (Overseas Investment) Rules, 2022;

E-mail : legaljrd1@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 202-211

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Study of Fiber-Reinforced and Ferrocement Concrete : Mechanical Performance and Durability

Mr. Utkarsh Singh (Head Of Department)

Himalayan Institute Of Technology And Management, Lucknow, U.P.

Ms. Radha (Assistant Professor)

Himalayan Group Of Institutions Lucknow, U.P.

ABSTRACT :

The inherent brittleness and low tensile strength of ordinary Portland cement concrete necessitate innovative reinforcement strategies. This study presents an extensive experimental investigation into fiber-reinforced concrete (FRC), ferrocement, and their hybrid combinations, assessing mechanical properties (compressive, flexural, and split-tensile strengths) and durability indicators (water absorption, chloride penetration, and freeze–thaw resistance). Three fiber types—steel, polypropylene (PP), and basalt—were evaluated at volume fractions of 0.5%, 1.0%, and 1.5%. Ferrocement jackets comprised one to three layers of 1 mm galvanized wire mesh embedded in 10 mm mortar cover. A hybrid composite combining 1.0% steel fibers and a double-mesh ferrocement shell yielded the best balance of strength and durability, with flexural strength increasing by 58% and chloride penetration resistance improving by 42% over control. Statistical analysis (ANOVA, $p < 0.05$) confirms significant effects of fiber type, volume, and mesh layering. The findings support the use of hybrid FRC-ferrocement composites for thin-walled structural elements, repair overlays, and infrastructure subjected to aggressive environments.

KEYWORDS :

Fiber-reinforced concrete; ferrocement; hybrid composites; mechanical strength; durability; steel fibers; polypropylene fibers; basalt fibers; chloride resistance

1. INTRODUCTION :

Concrete's compressive strength is its hallmark, yet its low tensile capacity makes it prone to cracking under service loads, leading to durability deterioration and increased maintenance costs (Neville, 2012). Traditional steel-bar reinforcement addresses tensile demands but entails complex formwork, congestion, and corrosion risk (Mehta & Monteiro, 2014). Two complementary approaches have emerged:

1. **Fiber-Reinforced Concrete (FRC) :** Integrates discrete fibers—steel, synthetic, or natural—into the cement matrix to bridge microcracks, enhance toughness, and control crack propagation (Banthia & Mindess, 2015; Ramakrishnan, 1995).
2. **Ferrocement :** Constitutes a thin, mortar-rich layer reinforced with multiple layers of fine wire mesh. The high tensile strength-to-weight ratio and crack control of ferrocement make it suitable for thin shells, overlays, and rehabilitation works (Kamanga & Kassim, 2013; Nilson & Guptill, 1998).

While extensive research exists on FRC and ferrocement separately, hybrid composites combining both reinforcement modes warrant deeper exploration. Singh and Kulkarni (2020) observed synergistic effects in hybrid panels; however, variables such as fiber type, volume, and mesh layering require systematic optimization. This study fills that gap by comparing mechanical and durability performance across FRC, ferrocement, and hybrid specimens under standardized laboratory conditions.

Objectives :

a) Quantify the influence of fiber type (steel, PP, basalt) and volume fraction (0.5%, 1.0%, 1.5%) on concrete's mechanical and durability properties.
b) Evaluate the effectiveness of ferrocement jackets (single to triple mesh layers) in enhancing flexural toughness and durability.
c) Identify optimal fiber-ferrocement hybrid configurations for structural and repair applications in aggressive environments.

2. LITERATURE REVIEW

2.1 Fiber-Reinforced Concrete (FRC) :

a) **Steel Fibers :** Known for high tensile strength and stiffness, steel fibers improve flexural toughness and post-crack ductility. Narayanan and Ramamurthy (2000) reported increases of 25–40% in flexural strength with 1.0% steel fibers. Shah and Rangan (1981) demonstrated that hooked-end steel fibers significantly raise energy absorption capacity under cyclic loading.

b) **Polypropylene (PP) Fibers :** Lightweight monofilament PP fibers are effective in reducing plastic shrinkage and controlling microcracks, enhancing durability more than load-carrying capacity (Ramesh et al., 2015; Bentur & Mindess, 2007). PP fibers at 0.5%–1.0% have been shown to lower permeability by up to 15% (Banthia & Trottier, 1995).

c) **Basalt Fibers :** Emerging as eco-friendly alternatives, basalt fibers offer high tensile strength (~2,800 MPa), excellent chemical resistance, and thermal stability. Zhang et al. (2016) found that 1.0% basalt fibers increased split-tensile strength by 30% and reduced chloride diffusion by 20%.

2.2 Ferrocement :

a) **Mesh Layers :** Chennakesava Reddy (2011) observed that flexural strength of ferrocement slabs rises by 50% when mesh layers increase from one to three. Reddy and Rai (2012) reported that triple-layered ferrocement jackets reduce crack widths to <0.2 mm under flexural loads, enhancing fatigue life.

b) **Durability :** Gupta and Sharma (2018) demonstrated superior chloride-ion resistance and reduced water permeability in ferrocement overlays compared to conventional RC, attributing gains to the dense mortar cover and mesh obstruction.

2.3 Hybrid Composites :

Limited studies, such as Singh and Kulkarni (2020), indicate that combining steel fibers with ferrocement mesh yields synergistic improvements in toughness and crack control. However, systematic research on fiber-type interactions, layer sequencing, and durability under aggressive environments remains sparse.

3. EXPERIMENTAL METHODOLOGY

3.1 Materials :

a) **Cement :** OPC 53 grade conforming to IS 12269:2013.

b) **Fine Aggregate :** River sand, Zone II, fineness modulus 2.6 (IS 383:2016).

c) **Coarse Aggregate :** Crushed granite, 10–20 mm nominal size (IS 383:2016).

d) **Wire Mesh :** Galvanized iron, 1 mm wire, 12 × 12 mm square openings.

e) **Fibers :**

- **Steel Fibers :** Hooked-end, length 30 mm, diameter 0.5 mm, tensile strength 1,100 MPa (ASTM A820).
- **Polypropylene Fibers :** Monofilament, length 12 mm, diameter 0.04 mm (ASTM C1116).
- **Basalt Fibers :** Chopped strands, length 18 mm, diameter 13 μm, tensile strength 2,800 MPa.

3.2 Mix Proportions :

A constant concrete mix of 1:1.5:3 (cement:fine aggregate:coarse aggregate) by weight and water-cement ratio of 0.45 was used throughout. Fiber volume fractions were 0%, 0.5%, 1.0%, and 1.5%. Ferrocement jackets comprised one, two, or three mesh layers with a 10 mm mortar cover (cement:sand = 1:2, w/c = 0.5).

3.3 Specimen Preparation

a) **Standard Concrete Specimens :**

- Cubes (150 mm) for compressive strength.
- Prisms (100 × 100 × 500 mm) for flexural strength.
- Cylinders (150 × 300 mm) for split tensile tests.

b) **Ferrocement-Jacketed Specimens :** Cured concrete cores (28 days) were wrapped in pre-tied mesh layers, followed by mortar application using plastering techniques.

c) **Hybrid Specimens:** Concrete mixes with fibers as above, later encased in double-mesh ferrocement jackets.

3.4 Curing and Testing Schedule :

a) **Curing :** All specimens water-cured at 27 ± 2 °C for 7, 28, and 90 days.

b) **Mechanical Tests :**

- **Compressive Strength :** IS 516:1959.

- **Flexural Strength :** Three-point bend, IS 516:1959.
- **Split Tensile Strength:** IS 5816:1999.

c) **Durability Tests:**

- **Water Absorption:** ASTM C642.
- **Rapid Chloride Penetration Test (RCPT):** ASTM C1202.
- **Freeze–Thaw Resistance:** ASTM C666 (Procedure A).

3.5 Statistical Analysis

Data were processed using one-way and two-way ANOVA ($\alpha = 0.05$) to assess significance of fiber type, volume, and mesh layers. Tukey's HSD post-hoc tests identified which groups differed significantly.

4. RESULTS

4.1 Compressive Strength

Specimen	7 d (MPa)	28 d (MPa)	90 d (MPa)
Control	28.3	36.5	38.1
1.0% Steel	29.8	39.2	41.5
1.0% PP	28.7	37.0	38.9
1.0% Basalt	29.0	38.4	40.2
Single Mesh	29.2	38.0	39.7
Double Mesh	29.5	38.7	40.5
Hybrid (SF + dbl)	31.0	41.2	43.2

Steel fibers at 1.0% increased 28 d strength by 7% ($p < 0.01$), basalt by 5%, whereas PP fibers showed marginal gains. Double-mesh jackets alone improved strength by 6%, while the hybrid achieved an 13% enhancement.

4.2 Flexural Strength

Specimen	7 d (MPa)	28 d (MPa)	90 d (MPa)
Control	3.5	4.2	4.4
1.0% Steel	4.7	5.8	6.0
1.0% PP	4.0	4.9	5.1
1.0% Basalt	4.3	5.3	5.5
Single Mesh	4.5	5.6	5.8
Double Mesh	4.8	6.0	6.2
Hybrid (SF + dbl)	5.3	6.7	6.9

Steel fibers boosted 28 d flexural strength by 38%, basalt by 26%, and PP by 17%. Mesh layering further enhanced performance, with double mesh showing a 43% increase over control. The hybrid specimen exhibited a 58% gain ($p < 0.001$).

4.3 Split Tensile Strength

Specimen	7 d (MPa)	28 d (MPa)	90 d (MPa)
Control	2.2	3.0	3.2
1.0% Steel	2.7	3.7	3.9
1.0% PP	2.4	3.2	3.4
1.0% Basalt	2.6	3.5	3.7
Single Mesh	2.5	3.4	3.6
Double Mesh	2.8	3.9	4.1
Hybrid (SF + dbl)	3.1	4.2	4.4

Comparable trends emerged: steel fibers and mesh layering significantly increased tensile capacity; the hybrid attained the highest values (40% improvement at 28 d, $p < 0.01$).

4.4 Durability Indicators

Water Absorption (28 d) : Control: 5.6%; 1% steel: 5.2%; 1% PP: 5.0%; 1% basalt: 4.9%; double mesh: 4.7%; hybrid: 4.3% (reduction of 23% vs. control, $p < 0.05$).

RCPT (28 d) :

- Control: 3,200 Coulombs
- 1% Steel: 2,850 (−11%)
- 1% Basalt: 2,600 (−19%)
- Double Mesh: 2,450 (−23%)
- Hybrid: 1,850 (−42%)

Freeze–Thaw Durability (300 cycles) :

a) Mass loss: Control: 3.2%; Hybrid: 1.1%
b) Relative dynamic modulus: Control: 68%; Hybrid: 92%

ANOVA confirms that fiber type, volume fraction, and mesh layers significantly ($p < 0.05$) influence all durability metrics.

5. DISCUSSION

5.1 Synergistic Hybrid Effects

The hybrid composite's superior mechanical and durability performance stems from combined internal crack bridging (fibers) and external confinement (mesh). Steel fibers arrest microcracks, while ferrocement jackets restrict crack widths, hindering fluid ingress (Ramesh et al., 2015; Gupta & Sharma, 2018).

5.2 Fiber Type Comparisons

a) **Steel vs. Basalt:** Although basalt fibers provided excellent chemical resistance and comparable tensile gains, steel fibers exhibited slightly higher stiffness, translating to greater flexural capacity (Narayanan & Ramamurthy, 2000; Zhang et al., 2016).
b) **Polypropylene:** While PP fibers improved permeability control, their low modulus limited strength gains, suggesting their use in combination with stiffer fibers for optimum performance (Banthia & Trottier, 1995).

5.3 Durability in Aggressive Environments

Chloride penetration resistance is critical for marine and deicing salt exposures. The hybrid's 42% reduction in RCPT values underscores its potential in coastal structures and bridge decks (ASTM C1202), supported by minimal freeze–thaw damage (ASTM C666).

5.4 Practical Implications

a) **Thin-walled Elements:** Roof shells, façade panels, and gutters can leverage hybrid composites' high toughness and crack control at reduced thickness (Kamanga & Kassim, 2013).
b) **Repair Overlays:** Hybrid ferrocement jackets are ideal for rehabilitating aging structures, combining ease of application with minimal added dead load (Nilson & Guptill, 1998).
c) **Sustainability:** Partial replacement of steel bars with fibers and mesh reduces congestion and enables rapid construction, aligning with green building goals (Mehta & Monteiro, 2014).

5.5 Limitations and Future Work

a) **Scale-up Validation:** Full-scale panels and field trials are needed to confirm laboratory findings under real-world boundary conditions.
b) **Long-Term Monitoring:** Extended exposure tests (e.g., carbonation, sulfate attack) will elucidate durability over decades.
c) **Cost-Benefit Analysis:** Comparative lifecycle assessments should quantify economic and environmental trade-offs of hybrid systems.

6. CONCLUSIONS AND RECOMMENDATIONS

1. **Optimal Reinforcement Strategy:** A hybrid composite with 1.0% hooked-end steel fibers and a double-layer ferrocement shell delivers the best overall mechanical enhancement (≈13% compressive, 58% flexural, 40% tensile gains) and durability improvement (−42% chloride ingress, +24% freeze–thaw resilience).
2. **Fiber Selection:** Steel fibers outperform basalt and PP in stiffness-driven strength gains, while basalt fibers offer superior chemical stability. PP fibers excel in controlling shrinkage cracks.
3. **Mesh Layering:** Double mesh strikes an optimal balance between performance and constructability; triple layers yield marginal further gains at higher labor cost.

4. **Applications:** Recommend hybrid composites for thin structural elements—shells, panels, and overlays—and aggressive-environment infrastructure.
5. **Further Research:** Pursue full-scale demonstrations, long-term durability studies, and detailed lifecycle cost assessments.

REFERENCES :

1. ASTM C1116/C1116M-19. (2019). *Standard Specification for Fiber-Reinforced Concrete*. ASTM International.
2. ASTM C1202-19. (2019). *Standard Test Method for Electrical Indication of Concrete's Ability to Resist Chloride Ion Penetration*. ASTM International.
3. ASTM C642-13. (2013). *Standard Test Method for Density, Absorption, and Voids in Hardened Concrete*. ASTM International.
4. ASTM C666/C666M-15. (2015). *Standard Test Method for Resistance of Concrete to Rapid Freezing and Thawing*. ASTM International.
5. Banthia, N., & Mindess, S. (2015). *Fiber-Reinforced Cement Composites*. CRC Press.
6. Banthia, N., & Trottier, J. F. (1995). "Performance of PVA Fiber-Reinforced Cementitious Composites." *Cement and Concrete Research*, 25(8), 1569–1580.
7. Bentur, A., & Mindess, S. (2007). "Synthetic Fibers." In *Fibre Reinforced Cementitious Composites* (pp. 75–114). Taylor & Francis.
8. Chennakesava Reddy, B. (2011). *Concrete Technology: Theory and Practice* (2nd ed.). CBS Publishers.
9. Gupta, R., & Sharma, S. (2018). "Durability Studies on Ferrocement Overlays in Saline Environments." *Journal of Civil Engineering Research*, 8(4), 123–130.
10. Kamanga, M. R., & Kassim, F. (2013). "Ferrocement Shells for Rural Housing." *International Journal of Sustainable Construction Engineering & Technology*, 4(1), 12–22.
11. Mehta, P. K., & Monteiro, P. J. M. (2014). *Concrete: Microstructure, Properties, and Materials* (4th ed.). McGraw-Hill.
12. Narayanan, N., & Ramamurthy, K. (2000). "Properties of Hardened Fiber-Reinforced Concrete—An Overview." *Cement and Concrete Composites*, 22(4), 345–355.
13. Neville, A. M. (2012). *Properties of Concrete* (5th ed.). Pearson.
14. Nilson, A. H., & Guptill, P. D. (1998). *Ferrocement: A Practical Guide* (2nd ed.). American Concrete Institute.
15. Ramesh, P., Shafique, M., & Raj, M. G. (2015). "Effect of Polypropylene Fibers on the Performance of High-Strength Concrete." *Indian Concrete Journal*, 89(3), 15–22.

16. Ramakrishnan, V. (1995). *Handbook on Nonconventional Materials and Technologies for Concrete Construction*. CIPET.
17. Reddy, B. S., & Rai, D. C. (2012). "Flexural Behavior of Ferrocement Panels." *Journal of Ferrocement*, 42(2), 91–103.
18. Shah, S. P., & Rangan, B. V. (1981). "Properties of Fiber Reinforced Concrete." *ACI Journal*, 78(6), 465–472.
19. Singh, R., & Kulkarni, S. K. (2020). "Hybrid Fiber and Mesh-Reinforced Cement Composites: Mechanical Performance." *Construction and Building Materials*, 230, 116652.
20. Zhang, L., Li, H., & Wang, J. (2016). "Mechanical Properties of Basalt Fiber Reinforced Concrete." *Construction and Building Materials*, 102, 718–725.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 212-215

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महिला उत्पीड़न के प्रकार और कारण

डॉ. गजानन्द मीणा

सहायक आचार्य, हिन्दी, भगवान आदिनाथ जयराज मारवाडा राजकीय महाविद्यालय, नैनवा।

प्रस्तावना :-

महिलाओं की अनेक समस्याओं में सबसे ज्वलंत समस्या उनके विरूद्ध किये जाने वाले हिंसक व्यवहार से है। यह स्थिति ऐसी है जो न केवल अनैतिक है बल्कि हर एक सभ्य समाज के लिए चिन्ता व शर्म का विषय है। सबसे अधिक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि तथाकथित सभ्यता के विकास के साथ–साथ यह समस्या तीव्रतर और विभत्स होती जा रही है। महिलाओं का उत्पीड़न, अपमान, शोषण, दमन, तिरस्कार और यन्त्रणा उतना ही प्राचीन है जितना की पारिवारिक जीवन का इतिहास यद्यपि सामाजिक विधान के परिपेक्ष्य में भारतीय महिलाएं अन्य कई देशों की महिलाओं में कही आगे है किन्तु महिलाओं को अधिकार प्रदान करने की प्रक्रिया इतनी मन्द, अव्यवस्थित तथा असंगत रही है। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से वे पुरूषों से काफी पीछे हैं न केवल काम में उनके साथ भेदभाव किया जाता है लेकिन प्रत्येक क्षेत्र में उनको अधिकारो से वंचित रखा जाता है। घर में तो उनकी स्थिति और भी खराब है। उनके साथ बदतर व्यवहार के अलावा विविध प्रकार के दुर्व्यव्यहार भी किये जाते है उनका अपहास करना, सताया जाना व आतंकित किया जाना कभी–कभी मारा पीटा जाना तथा यदा–कदा जला कर मार दिया जाना स्पष्ट करते है कि वे प्रत्येक भूमिका में शिकार रहती है। स्त्रियों के साथ बढ़ता अत्याचार हमारे दैनिक समाचारों का एक आम हिस्सा हो गया है। जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

(1) बाल-विवाह –

स्त्री का शील मुगल शासन काल में सुरक्षित नहीं था। अतः माता–पिता शीघ्र अपनी जिम्मेवारी से मुक्त होना चाहते थे। अतः पता नहीं कैसे यह नियम बन गया कि "कन्या के रजस्वला" होने के पूर्व विवाह कर देने से माता–पिता को गौरी के विवाह का पुण्य मिलता है। वैदिक काल में तो स्वयंवर की प्रथा थी अर्थात् विवाह योग्य होने पर ही कन्या अपनी पसन्द के वर का वरण करती थी। भारत की जनसंख्या पर बाल–विवाह के प्रचलन का प्रभाव पड़ा। 15–16 वर्ष की आयु से 40 वर्ष तक की आयु तक प्रायः स्त्री के बच्चे होते थे। परिवार नियोजन के साधन की तो दुर सोच तक नहीं थी। आज भी भारत में अनेक स्थानों पर बाल–विवाह का प्रचलन है।

बीसवीं सदी में मानव जब चाँद पर पहुँच चुका है। हम अपने में अभी भी 18वीं शताब्दी की कुप्रथाऐं व रूढियां समेटे बैठे है। गाँव देहातों में आज भी बाल–विवाह प्रथा चालू है। दुनिया के 40 प्रतिशत बाल–विवाह

भारत में होते है लिंग भेद तथा अशिक्षा का यह सबसे बड़ा कारण है राजस्थान, बिहार, मध्यप्रदेश में सबसे ज्यादा खराब स्थिति है। बाल–विवाह एक ऐसा अभिशाप है जिसने बच्चों के बचपन को छीन लिया है। इस बाल–विवाह का सबसे ज्यादा असर लड़कियों पर होता है। कम उम्र में बचपन छीन जाता है।

(2) सती प्रथा –

हमारे समाज में एक सोच बहुत ज्यादा प्रभावशाली है और वो है बिना सोचे समझे किसी प्रथा को जन्म दे देना। संपूर्ण ज्ञान ना होते हुए भी लोग परम्पराओं को मान देने लगते है फिर चाहे से किसी अन्य व्यक्ति के लिए दुखदायी ही क्यों ना हो। कुछ इसी प्रकार की सोच का परिणाम थी "सती प्रथा"। यह कुप्रथा भी मुगल–शासन की देन है। सती प्रथा सदियों पूर्व में विद्यमान एक अत्यन्त घृणित प्रथा थी। यह भारतीय नारियों के अपने पति के भाव के साथ जलने के लिए दुष्प्ररित करती थी।

सती के अभिप्राय – विधवा को उसके मृत पति के भाव या किसी रिश्तेदार के भाव या किसी वस्तु पदार्थ या सामग्री जो उसके पति या रिश्तेदार से संबंधित हो के साथ जीवित जलाना या गाड़ना।

(3) परदा प्रथा –

देश, काल और परिस्थितियॉ रूढियों को जन्म देती है। प्रायः देखा गया है कि इन रूढियों का कुप्रभाव स्त्रियों पर ही पड़ता है वे इस ढोल को पीढी दर पीढी तक पीटती रहती है। गांधी का स्पष्ट कहना था कि भारत में सनातन से पर्दा नहीं था यह मुगलकाल से आया। इतना ही नहीं इस कुरीती ने पंजाब, महाराष्ट्र व दक्षिण भारत का बिल्कूल नहीं छुआ। जैसा भी हो हमारे समाज के लिए परदा प्रथा घातक है। आज स्वतंत्रता के 69 वर्ष बाद भी अनेक जिलों में इतना परदा है कि अनेक महिलाओं के लिए बाहर की दुनिया सपनों की दुनिया है। राजस्थान में हाथ भर घुंघट डाले वधू कई बार बदल गई है। अनेक रूढ़ियों में पर्दा–प्रथा भारत का एक कलंक है जिसके विरूद्ध संस्थात्मक आंदोलन छेड़ना पडेगा।

(4) दहेज प्रथा :–

दहेज की समस्या घरेलू अपराध और अत्याचार की गंभीर समस्या बनी हुई है। दहेज निरोधक कानून जो 1961 में बना इस बारे में बेहद लंचर और बेअसर साबित हुआ। उसमे दहेज की परिभाषा 'विवाह के प्रतिफल और विवाह की शर्त के रूप में दी गई सम्पति' के रूप में रखी गयी। तब अधिकतम सजा छह महीने और 5000 रूपये का जुर्माना था। उस समय अपराध संज्ञेय नहीं था और जमानती था। उस स्थिति में यह कानून 1984 तक रहा यही वह दौर था जब भारत में हरित क्रान्ति हुई और ज्यादातर शहरों का विस्तार हुआ। इस दौरान नये–नये हथकंडों से दहेज हासिल करने का चलन बढा। हजारों बहुओं को यातना दी गई व जलाया गया। वर्तमान समय में दहेज दानव का आकार बढ़ता ही जा रहा है। दहेज प्रतिषेध 1961 के आगमन के बाद भी समस्या में कोई कमी नहीं आई है। इस जटिल समस्या के कारण नव युवतियॉ काल के गाल में जा रही है। दहेज की मांग पूरी न हो पाने की दशा में वधु को शारीरिक तथा मानसिक प्रताड़नाएं दी जाती है। ये प्रताड़नाए उन्हें आत्महत्या करने के लिए विवश करती है।

(5) बलात्कार :–

गम्भीर अपराध और भी है लेकिन बलात्कार को सर्वाधिक घृणास्पद माना जाता है। यहाँ तक कि कुछ स्त्रियों को बलात्कार और हत्या के बीच चुननें की छूट दी जाये तो वे हत्या को चुनेगी। जिस स्त्री के साथ

बलात्कार हुआ हो तथा उसने जी–जान से इसका विरोध न किया हो उसे शंका की निगाह से देखा जाता है। एक स्वस्थ आदमी बलात्कृत स्त्री को नहीं बलात्कारी को घृणा की दृष्टि से देखेगा। बलात्कार के अपराध पर परम्परागत रवैया ही दृढ़ होता जा रहा है। बलात्कार के मामलों का एक बड़ा प्रतिशत दर्ज ही नहीं किया जाता। इसकी वजह यह है कि बलात्कार की शिकार महिला समाज के समक्ष शर्मिन्दगी उठाने का साहस नहीं करती या फिर उसका परिवार अपमानित नहीं होना चाहता, या पुलिस के जुल्मों के डर से या बलात्कारी द्वारा बदला लेने की धमकी के डर से मामला दर्ज नहीं किया जाता। इस संदर्भ में यह तथ्य है कि छेड़छाड़ और बलात्कार जैसे अपराधो का प्रतिशत सबसे ऊँचा है। बलात्कार को एक गम्भीर समस्या के रूप में देखा जाना चाहिए क्योंकि यह अपराध पीड़ित महिलाओं के व्यक्तित्व को अव्यवस्थित कर सकता है। उनके बच्चों को समाज में लांछित कर सकता है व उनके परिवार को समाजिक रूप से अपमानित कर सकता है।

(6) भ्रूण हत्या :–

स्त्रियों के साथ बढता अत्याचार हमारे दैनिक समाचारों का आम हिस्सा हो गया है परन्तु यह जानकारी लोगों को बहुत ही कम है कि जितनी स्त्रियां बलात्कार, दहेज व अन्य मानसिक तथा शारीरिक अत्याचारों से उत्पीड़ित की जाती है। उनसे कई सौ गुना ज्यादा तो जन्म लेने से पहले ही मार दी जाती है। वस्तुतः यह आज स्त्रियों के प्रति प्रभेदकारी समाज की आधुनिक तकनीकों के सहारे की जाने वाली चरम बर्बरता है। यह एक अद्‌भुत बात है कि आज जहाँ हमारे देश में गोहत्या को लेकर दंगे शुरू हो जाते है वही मानव भ्रूण हत्या को सिर्फ एक आर्थिक और सामाजिक मजबुरी ही समझा जाता है। शायद इसीलिए भ्रुण और कन्या शिशु हत्या इतनी प्रचलित हो गई।

जहां राजपूत इस प्रथा का पालन चोरी छिपे करते थे, वहीं सिख बहुत गर्व से अपनी 400 साल से आ रही कन्या शिशु हत्या की परम्परा के बारे में बताने में संकोच नही करते थे। 1977 में एमनियोसेटेसिस का इस्तेमाल पहली बार बम्बई के हरकिशनदास अस्पताल में भ्रूण हत्या के लिए किया गया। 1901 से आज तक पुरूषों के अनुपात के रूप में स्त्रियो की संख्या घटती ही आ रही है।

निष्कर्ष :–

यदि कहा जाये कि महिलाओं के साथ आरम्भ से ही द्वितीयक भाव रखा है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। कन्या के लिए गुप्त एवं गुप्तोतर काल में विवाह की आयु निम्न होकर 12 वर्ष तक स्वीकृत की गई। हरिभद्र शुरी के धर्मबिन्दु ग्रन्थ में इसके बारे में ज्ञात होता है कि विवाह आयु पुत्र के लिए 16 वर्ष तथा कन्या के लिए 12 वर्ष होनी चाहिए। मध्य युग में नारी संबंधी कुछ प्रथाएं जो प्राचीन काल में एक विधान के रूप में प्रचलित हो गई। मध्यकालीन परिस्थितियो में सती प्रथा आवश्यक व एक सामान्य प्रथा का रूप धारण कर गई। इस युग में पर्दा प्रथा भी अपनी सीमा पर पहुंच गई थी। समाज में फैल रहा सभी प्रकार का आतंक, दहशत, भय, दंगे व जातीय संघर्ष स्त्रियों को और बेबस तथा असहाय बना देता है। अपहरण, बलात्कार, मार–पीट आदि अनेक क्रुरतापूर्ण व्यवहार स्त्री के साथ किये जाते है। बलात्कार स्त्री के खिलाफ इस्तेमाल किया जाने वाला सबसे क्रुर हथियार है। भ्रूण हत्या समाने एक बडी विकट समस्या के रूप में सामने आ रही है। मानव सभ्यता के सारे ऊँचे दावे समाज में स्त्रियों की स्थिति को देखते हुए खोखले सिद्ध होते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. श्रीमति सुधारानी श्रीवास्तव, (2009), महिला उत्पीड़न और वैधानिक उपचार, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. डॉ. प्रभा आप्टे, (1996), भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर।
3. श्रीमति सुधारानी श्रीवास्तव, (1999), महिलाओं के प्रति अपराध, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स असारी रोड, नई दिल्ली।
4. श्रीमति सुधारानी श्रीवास्तव, (2006), महिला शोषण और मानवाधिकार, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
5. डॉ. राजकुमार, (2008), नारी के बदलते आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
6. कमलेश कुमार गुप्ता, (2009), भारतीय महिलाएं शोषण, उत्पीडन एवं अधिकार, बुक एनक्लेव जैन भवन, जयपुर।
7. प्रकाश नारायण नाटाली, (2011), कन्या भ्रूण हत्या और महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा, बुक एनक्लेव जैन भवन, जयपुर।

पता – 603, स्वराज एनक्लेव, बोरखेड़ा, कोटा, पिन – 324005

मो. 7597429188

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 216-220

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

NEED TO STUDY SWAMI DAYANANDA EDUCATIONAL PHILOSOPHY : IN THE CONTEMPORY EDUCATION SYSYTEM

Himani Meena

Asst. Professor (English), Government College, Nagar Fort, Distt. Tonk (Raj.) Pin Code : 304024

The present article is specially designed to discuss educational philosophy of great renowned educational thinker/ philosopher Swami Dayanand. Who emphasised the importance of education in a person's life. He stated that this is only education which helps one to acquire knowledge, art, music, literature, righteousness, self-discipline and the like virtues; and eliminate sun awareness and evil habits. He further suggested the multisided curriculum, perfection and importance of humanism and rationalism. He recommended people to follow Vedas philosophy in their life.

Swami Derananda was born in 1825 in a Brahmin family that lived in the state of Morvi, Kathiawar in Gujarat. From the very beginning of his life Among the contemporary Indian philosophies Swami Dayananda may be called to be greatest rationalist. While on the one hand he was a great supporter of vedas and as well other holly texts. He was having very logical vision. He used to drive logical of every happening thing. He wrote in one of his book that " there is not the remotest idea to hurt the feelings of any person directly or in, he was seized of directly". He desired to fathom the mysteries of life and death. At the age of 15 years, from 1845 to 1860, young Deyananda wandered almost all over India in quest of knowledge and truth. And in last he met with Swami Virjanand Saraswati, from who he learnt lot of things. And he pledged his master(Him) that he will devote his life to disseminating truth, to waging unremitting warfare against falsehood and to establish right method of education. He also promised that he will work on social issues.

Mission :-

His mission was for a reformed Hindu Society free from cant and supervision.

The first Arya Samaj was established in Bombay in 1875 and two years later in Lahore the samaj took final shape. The rest of his life -1877 to 1883- was spent I preaching, teaching and writing

books and organizing Aryas Samajas throughout India.

- **Aims of Education : Character Formation-Control of Senses :-**
- Right conduct of life
- Mother, father, teacher-Three Great Tutors
- Education starts before the child's birth-'Sanskars'
- Concept of discipline- self, crucial role of parents and teachers
- Set noble examples
- Education of women
- Compulsory education
- Education for masses
- Physical education
- Education for national integration
- Education for international integration
- Child education
- Diversified Multi-Faceted Curriculum

Six Kinds of Inferential Knowledge

The following picture depicts the six kinds of Inferential

Knowledge as suggested by Swami Ji :-

Six Kinds of Inferential Knowledge

Figure 1 :- Six Kinds of Inferential Knowledge

Contribution of Swami Dayananda

Vedas :- He regarded the Vedas as the source of all true knowledge.

Women :- He declared that women were entitled to social and legal rights to study Vedas.

PURDAH :- he brought out women from the seclusion of the purdah and held them in great esteem.

Hindi as lingua franca of India :

As a protagonist of Hindi and Sanskrit his achievements were notable. He proclaimed that Hindi could and should be the lingua franca of India as well as the basic link for national integration.

Revive the Gurukula system :

Gurukula Kngri was the first and the foremost experiment in the direction of Gurukula system.

How to arrive at Truth-Five Tests

- The Veda and nature of God
- Laws of nature
- The practice and teaching of Aphasic pious truthful

- The purity and conviction of one's own soul
- The eight kind of evidence
    i. direct cognizance (pratyaksha)
    ii. inference, (anumana)
    iii. comparison (upmana)
    iv. Verbal knowledge (sabha)
    v. History/tradition (Aitihya)
    vi. Presumpation (arthapatti)
    vii. Subsumption (sambhava)
    viii. non-existence or Negation (abhava)

Philosophy of Action :-

He was pioneer in social and educational reforms in India. He said everything must relate with logic.

Legacy of swami Dayananda.

The Arya Samaj founded by him has been doing a very useful work in field of education.

On June 1, 1886, the followers of Swami Ji founded D.A.V. School in Lahore, in his memory.

At present there is a long chain of D.A.V. educational institutions spanning the country.

Ideology of Swamiji for entire society;

Spread out pragmatic and value-laden Vedic education.

- Spiritual values advocated by Dayanand.
- Rural regeneration through extension Programmes.
- Conduction of conference, Symposia, roundtable for dissemination.
- Incorporate ideals of Dayanand in Curriculum.
- Organize research programmes on the basis of ideals of Dayanand.
- To reach out all people in the nearby areas with ideals of philosopher.
- To make students to understand, think and express the significance of values.
- To understand and spread out Veda Education.
- To identify the origin of untouchability and other imposed practices.
- To wipe out religious imbalances through education.
- To make and produce "Noble Community" as dreamed by Dayanand.
- To mould India into "Ideal Power" instead of Super Power.
- To rejuvenate and reconstruct by retrieving the glory of past value-oriented India.

Conclusion :-

There is no doubt that Dayanand's educational philosophy is as kin to Vedic philosophy. He worked to save the ancient Hindu values. He maintained Gurukula system of education. He removed many social evils. He emphasized on women, child, universal education and many other areas. He covered every aspect of education in his philosophy. His ideas on education have great significance for contemporary educational philosophy. The contribution of Swami Dayanand towards the philosophy and practice of education is noteworthy. So in the nut shell, it is concluded that the History of Education of modern India cannot be complete without mention of his glorious contribution.

References :-

1. Aggarwal, J. C. (1967) - "Thought on education". Arya Book Depot, New Delhi
2. Anuradha and Narang, Sunita (2007) - "Education in the Emerging Indian Society" Kalyani Publisher, Noida, UP.
3. Bhatia, Sudha and Sarin, Anupama (2004) "Philosophical foundation of education in India". ABD Publishers, Jaipur, Rajsthan.
4. Chandra, S.S. & Sharma, R.K. (2009) - "Philosophy of Education". Atlantic Publishers and Distributor, New Delhi.
5. Chaube, S. P. (1988) - "Indian and western educational philosophers". Vinod Pustak Mandir, Agra.
6. Good, Carter V. (1959) - "Dictionary of Education". McGraw Hill Book Co. Inc., New York.
7. **Web links :-**
   https://en.wikipedia.org/wiki/Philosophy_of_education
   http://shriprbhu.blogspot.com/2012/04/educational-philosophy-of-swami-dayanand.html
8. Autobiography, ed. Kripal Chandra Yadav, New Delhi : Manohar, 1978. ISBN 685196682
9. Aurobindo Ghosh, in Bankim Tilak Dayanand (Calcutta 1947 p 1, 39)
10. Bhan Suraj Swami Dayanand-His life and work, Delhi 1978
11. Buch M.B. Fourth Survey of Research in Education Baroda, NCERT 1988
12. Carlgle, Thomas Education in Commemoration Volume, Edited by Harbilas sarde.1933
13. Cochran, V.G. (Sampling, Bomboy: Asia Publishers House.
14. Satyarth Prakash (English Translation Durga Prasad). New Delhi: Jan Gyan Prakashen 1970
15. Dharmmitra Dayanand Digliez, Jallandhar: Dhanpat Rai Publication 1966
16. Garg, B.R. Bankim Tilak and Dayanand, Calcutta.1973
17. Goldman, Leo. Research Methods for Counselors, New Yourk: Jhon Willy and Sons 1970.

18. Hoermle Rudopy, Christi, Banaras City 1870
19. Indian Political Tradition, by D.K Mohanty. Pub by Anmol Publications ISBN 81-261-20339
20. http://www.iloveindia.com/spirituality/gurus/dayanand-saraswati.html
21. http://www.culturalindia.net/reformers/swami-dayanand-saraswati.html.

Mobile No. 7597429188

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 221-227

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिक्षणाधिगमप्रक्रियायां TPACK – एकमं प्रतिमानम्

(TPACK : A Model In Teaching & Learning Process)

Arun Biswas

Research Scholar in Education, National Sanskrit University,Tirupati, A.P. India

सारांशः (ABSTRACT)

वर्तमानशिक्षाव्यवस्थायां शिक्षणे अधिगमे च प्राविधिक -शिक्षाशास्त्रीय-विषयज्ञानयोः(**Technological Pedagogical And Content Knowledge**) आवश्यकता अनुभूय Punya Mishra & Matthew J.Koehler महोदयोः TPCK / TPACK Model-विषये अत्र आलोचितमस्ति। TPACK- इति प्रतिमाने विविधोपादानानि सन्ति। तेषु गहनसम्बन्धः वर्तते। कक्षाशिक्षणे अधिगमे च शिक्षकाणां कृते एतस्य ज्ञानस्य अत्यधिकमावश्यकं वर्तते। सम्प्रति छात्राणां जीवने प्रविधेः महत्वम् अत्यधिकतया अवलोक्यते। अनेन शिक्षणप्रक्रिया विशेषरूपेण प्रभाविता दृश्यते। अतः शिक्षणे अधिगमे च विषयेन सह प्राविधिक-शिक्षाशास्त्रीयज्ञानयोः एकीकरणस्य आवश्यकता शिक्षकैः अनुभूयते।

उपोद्घातः(Introduction)

"Teaching is not just about what we teach, it's about how we teach it. We must be passionate, enthusiastic and committed to creating and meaningful learning experience for students." -*Anonymous (www.The Teacher treasury.com)*

'शिक्षणम्' इति पदम् आङ्गलभाषायाः 'Teaching' इत्यस्य एव संस्कृतपर्यायपदम्। इयं भवति निरन्तरतं जायमाना काचन सामाजिकप्रक्रिया। अस्यां प्रक्रियायां शिक्षकः, छात्राः, पाठ्यक्रमः त्रयोऽपि मिलित्वा शिक्षारुपमन्दिरं निर्माति। अतः शिक्षणं तादृशप्रक्रियायाः साधनं भवति यत् शिक्षायाः पूर्वोक्तानि

त्रीणि ध्रुवाणि परस्परं सम्बन्धानि। Ryburn महोदयानुसारं – "There are three focal points in education – the teacher , the child and the subject. Teaching is the first place in relationship which established between these three." इतोऽपि अधिकस्पष्टतया विचारेण ज्ञायते यत् शिक्षणं तादृशी काचन प्रक्रिया, या शिक्षकमाध्यमेन छात्रान् पाठ्यविषयानाम् अधिगमार्थं प्रेरयति। शिक्षणे छात्रशिक्षकयोः पारस्परिकान्तक्रिया पाठ्यवस्तुमाध्यमेन भवति । यस्य परिणामतः शिक्षार्थी उद्देश्यप्राप्तये तत्परो भवति। सङ्कुचितार्थे विचारेण ज्ञायते यत् कक्षायां शिक्षकेण शिक्षार्थिभ्यः दीयमानं ज्ञानमेव भवति परामर्शं वा शिक्षणम्। शिक्षकस्य शिक्षणं यथा प्रभावी भवति छात्रणाम् अधिगममपि तथैव उत्तमं भवति। अतः अधिगमे प्रभावोत्पादनमेव प्रत्येकं शिक्षणस्य मुख्योद्देश्यं भवति ।

'अधिगमः' भवति व्यवहारपरिवर्तनस्य एका प्रक्रिया । अधिगमः शब्देन शिक्षणम् अथवा व्यवहारपरिवर्तनम् इति वोध्यते। अतः व्यवहारपरिवर्तनम् अनुभवेन प्रशिक्षणमाध्यमेन च सञ्जायते। Gates महेदयानुसारम्- "अनुभवेन प्रशिक्षणेन च जायमानं व्यवहारपरिवर्तणम् 'अधिगमः' इति उच्यते, न तु प्रेरणया, आवेगेन, पूर्णविकासेन वा।" ("Learning is the modification of behaviour through experience and training, not through motivation, emotion and maturity."-Gates) यदा शिक्षणविषये चर्चा क्रियते, तदा अधिगमं विना शिक्षणम् अपूर्णमिति, शिक्षणं विना अधिगमः अपूर्णः चेति प्रतीयते। एतयोः द्वयोर्मध्ये तादृशः कश्चन दृढसम्बन्धः वर्तते येन शिक्षणप्रक्रिया, अधिगमप्रक्रिया द्वेऽपि शिक्षणाधिगमप्रक्रिया (Process Teaching and Learning) इति एकेन नाम्ना उच्चते। अतः एवं वक्तुं शक्यते यत् अधिगमे शिक्षणप्रक्रियायाः महत्वम् अधिकं वर्तते।

सम्प्रति शिक्षाक्षेत्रे महत्परिवर्तनं जायमानमवलोक्यते। शिक्षणे विभिन्नशिक्षणप्रतिमानानां(Different Teaching Models), शिक्षणविधीनां(Educational Methods), नवीनप्रविधीनां(New Technologies), शिक्षणव्यूहानां(Educational Strategies) च प्रयोगं दृश्यते। अनेन शिक्षणं प्रभावशाली एवञ्च अत्यधिकाधिगमस्य प्राप्तिः भवेत्। प्रभाविशिक्षणमाध्यमेन समुचिताधिगमः उत्पद्यते। शिक्षणप्रतिमानानां द्वारोव अधिगमः द्रढयितुं शक्यः इति शिक्षाविदामभिप्रायः। शिक्षणप्रतिमानं नाम शिक्षणं रुचिकरं, सरलं, सरसञ्च कर्तुं अध्यापकस्य कतिपयानि कौशलानि। शिक्षणप्रतिमानानि तादृशः काचित् प्रयासः, यः शिक्षकं शिक्षणसिद्धान्तदिशि सहकरोति।

हायमन् महाभागः अभिप्रैति यत्–

"प्रतिमानं नाम शिक्षणविषये चिन्तनस्य विचारस्य च कश्चन विधिः, यः वस्तुषु विद्यमानान्तर्निहितगुणान् परिशीलयितुम् आधारं प्रस्तौति। कश्चित् वस्तुविशेषं व्यवस्थाप्य विभज्य च तार्किकक्रमेण तस्य वस्तुनः उपस्थापनविधिः एव प्रतिमानम्" इति।

("The model is a way to talk and think about instruction in which certain facts be organized, classified and interpreted.")

शिक्षणसमये प्रविधीनां प्रयोगं कर्तुं विविधप्रतिमानानां प्रयोगं भवितुं शक्नोति। कारणं शिक्षणम् अधिकं प्रभावपूर्णं कर्तुं प्रविधेः प्रयोगस्य आवश्यकता अधुना दृश्यते। एवमेकं सुविदितं प्रतिमानं भवति- **'TPACK' (Technological Pedagogical And Content Knowledge) Model. TPACK** – इति प्रारूपम् अस्माकं कृते एकं नवीनप्रारूपं ददाति यत् प्रविधि-शिक्षयोर्मध्ये सम्बन्धं स्थापयति। क्रमवर्धमानप्राविधिकयुगे उत्तमशिक्षणेन कथम् अस्माकं श्रेणीकक्षां सक्रियं भवति तदपि वोधयति। शिक्षकः **TPACK**- इति प्रतिमानम् अङ्गीकरणेन शिक्षणाधिगमप्रक्रिययोः प्रविधेः साहाय्यं गृह्णति। एवमेव शिक्षकः प्रविधिना सह अनुदेशनप्रदानेन शिक्षणाधिगमप्रक्रिया अनुवर्तते।

किं नाम TPACK Model (What is TPACK Model ?)

TPACK- इत्यस्य पूर्णरूपं भवति **Technological Pedagogical And Content Knowledge** ,अर्थात् प्राविधिक-शिक्षाशास्त्रीय-विषयज्ञानम्। 2006 तमे वर्षे मिचिगान - स्टेट-विश्वविद्यालयस्य अध्यापकौ Punya Mishra & Matthew J.Koehler शिक्षणे शिक्षकाणां कृते प्राविधिक -शिक्षाशास्त्रीय-विषयज्ञानस्य आवश्यकता अनुभूय TPACK Model दत्ववन्तौ । इतः पूर्वं 1987 तमे वर्षे शुलम्यानमहोदयः PCK (Pedagogical Content Knowledge) Model दत्तवान् । शिक्षणे अधिगमस्य भित्तिः भवति PCK- इति तेनापि दृष्टम्।

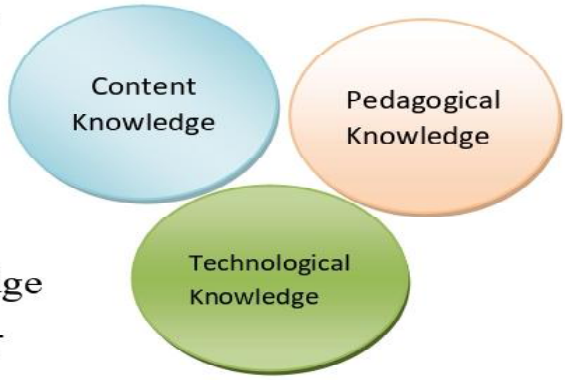

इयम्(TPACK) एका प्रगतिशीला प्रक्रिया, या Pedagogical Knowledge, Content Knowledge and Technological Knowledge - इति विषयत्रयाणां संमिश्रणेन गठितम् । विषयेन सह कथं प्रविधिं संयोजनं क्रियते तदेव अस्मिन् (TPACK) प्रतिमाने दर्शयति।

श्रेणीकक्षायां TPACK Model- कथं कार्यं करोति

1.Content- अनेन शिक्षकः कथयति कः विषयः सः पाठयति, कस्य निदेशनस्य उपयोगं च करोति।

2.Pedagogy- श्रेणीकक्षायां शिक्षकः कथं पाठयति तदेव अयं निर्देशयति। अर्थात् छात्राणां विषयस्य अववोधने अधिगमे च छात्राणुगुणं विषयानुगुणं वा कः पन्थाः,कः विधिः शिक्षकेण अनुसरणीयं तस्य ज्ञानमेव अनेन वोध्यते। यथा- Heuristic method, Projective method, Lecture method , Question-Answer method, Practical Knowledge. एतेषु कस्य चयनं श्रेयं तस्य ज्ञानम् अनेन लभ्यते।

3.Technology- शिक्षणाधिगमप्रक्रियायाम् अयमधिकं प्रभावशाली भवति। अर्थात् श्रेणीकक्षायाम् अथवा शिक्षाप्रतिष्ठाने उपलभ्यमानाः प्रविधयः। यथा- **Projector, Internet, Computer, Laptop, Blackboard, Whiteboard, Learning & Teaching related software(Google classroom, Zoom, Edmodo, Google Book, Canva, Scoology).** एतेषामुपयोगेन छात्राणाम् अधिगमम् अधिकं प्रभावशाली भवितुं शक्नोति।

प्राविधिक शिक्षाशास्त्रीय विषयज्ञानस्य उपादानानि उदाहरणानि च (Components of TPACK and their examples):

1.विषयज्ञानम् (CK-Content Knowledge)-

शिक्षकः ये **विषयाः** पाठयति तस्मिन् **विषये सः विषयज्ञः** भवेत्। अर्थात् विषयं प्रति **सामान्यज्ञानं**, गहनज्ञानं, सिद्धान्तानां ज्ञानं शिक्षकैः अवश्यमेव भवेत्। यथा- Language subjects, Mathematics, Science, History- प्रभृतिविषये ज्ञानम्।

2.शिक्षाशास्त्रीयज्ञानम् (PK-Pedagogical Knowledge)-

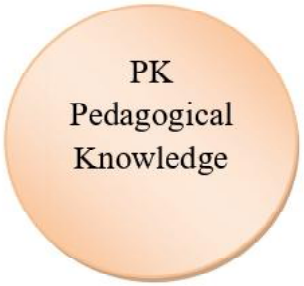

शिक्षकस्य समीपे **इदं ज्ञानम् अवश्यमेव भवेत्**। अर्थात् **तस्य समीपे यत् विषयज्ञानमस्ति तत्छात्राणां समीपे** कथम् उपस्थापनीयं, कः विधिः, कः व्यूहः च अनुसरनीयं तत्विषयकं **ज्ञानमेव** शिक्षाशास्त्रीयज्ञानम्।

शिक्षाशास्त्रीयज्ञानम् एवमधिगन्तुं सहायतां करोति यत् कः विषयः कथमुपस्थापनीयं, कः **अधिगमसिद्धान्तः** (Constructivist theory, Cognitive theory, Behaviourist theory, Connectivist theory etc.) अनुसरणीयम्, कः **निदेशनविधिः** (Problem-based Learning Instruction, Inquiry-based Instruction, Differentiated Instruction etc.) अनुसरणीयं, शिक्षणाधिगमयोः **मूल्याङ्कनं कथं करणीयम्**। अर्थात् अनेन एवं वक्तुं शक्यते यत् **विषयानुसारं** सिद्धान्तः,**विधिः,व्यूहः ग्रहणीयं वापरिवर्तनीयम्।**

3.प्राविधिकज्ञानम् (TK-Technological Knowledge)-

प्रविधिविषयं **ज्ञानं भवति प्राविधिकज्ञानम्**। ICT-सम्बन्धीय विविधोपकरणानां ज्ञानमं **प्राविधिकज्ञानम्**। यथा श्रेणीकक्षायां ICT, Hardware, Software – एतेषामुपोपयोगं कथं करणीयं तस्मिन् विषये ज्ञानम्। प्रविधिसहयोगेन (Laptop, LCD Projector, Wiki ,Blogs , Edmodo , Google class ,PPT etc.) विषयस्य उपस्थापनस्य ज्ञानम्। **अनेन छत्राणां कृते अधिगमं रुचिकरम्** आकर्षकं च **भवति। अपि च शिक्षायाः उद्देश्यं पूर्तिः भवति। परन्तु कदा,** कुत्र एतेषामुपयोगं करणीयं तदपि शिक्षकैः ज्ञातव्यम्।

4.शिक्षाशास्त्रीय-विषयज्ञानम् (PCK-Pedagogical Content Knowledge)

इदं ज्ञानं द्वयोः ज्ञानयोः संमिश्रणं,यथा- शिक्षाशास्त्रीयज्ञानं विषयज्ञानं च। अर्थात् छात्राणाम् आवश्यकतानुसारं तेषां **पूर्ववर्तीज्ञानानुसारं** विषयस्य उपस्थापनार्थं कः विधिः, किं **कौशलं चयनीयं तदाधारितज्ञानं शिक्षकानां भवेत्। निदेशनप्रदानार्थं,** विषयज्ञानं छात्राणां समीपे प्रेरणार्थं विविधकौशलेषु विविधविधिषु (Huristic method, Discussion method, Project method, Lecture method etc.) मार्गेषु **च विषयाधारेण उत्तममार्गचयनस्य** ज्ञानं शिक्षकानां भवेत्। यतोहि **शिक्षकः तदाधारेण** पाठयति, छात्राणां कृतेऽपि सहायकं भवति।

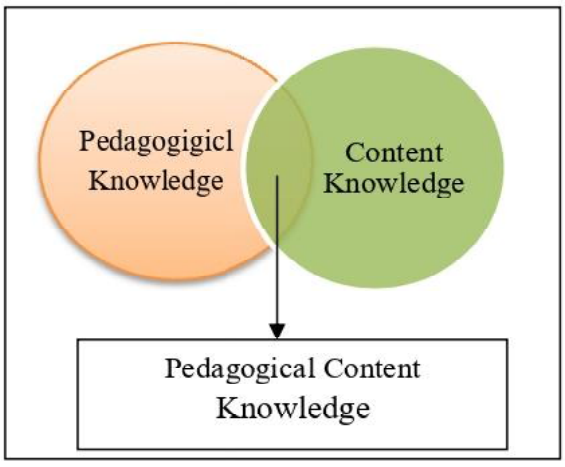

5.प्राविधिक- विषयज्ञानम् (TCK-Technological Content Knowledge)

Technological Content Knowledge- अर्थात् प्राविधिक- **विषयज्ञानं भवति** शिक्षकैः निर्दिष्टविषयार्थं निर्दिष्टप्रविधेः चयनस्य दक्षता।विषयस्याधिगमे विविधप्रविधीनाम् उपयोगं कथं करणीयं तदपि शिक्षकैः ज्ञातव्यम् । केन **विषयेन** सह **कः प्रविधिः यथार्थं** भवति, येन छात्राः सहजतया **अधिगन्तुं** शक्नुवन्ति तदववोधने ज्ञानमिदं शिक्षकान् सहायतां करोति।

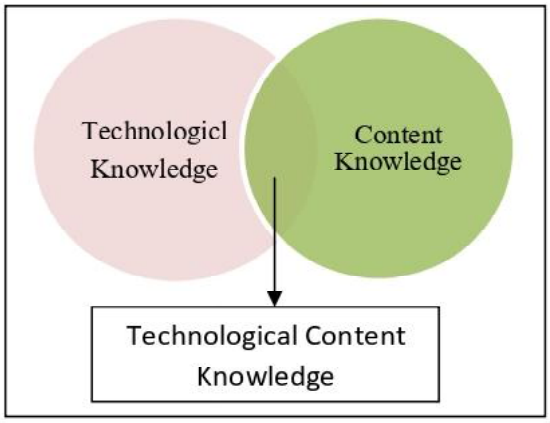

6.प्राविधिक- शिक्षाशास्त्री-यज्ञानम् (TPK-Technological Pedagogical Knowledge)

प्राविधिक- **शिक्षाशास्त्रीयज्ञानं** (TPK) भवति **सुनिर्दिष्टशिक्षणव्यूहचयनस्य क्षमता येन शिक्षकः** वास्तविकरूपेण प्रविधेः उपयोगं **कर्तुं शक्नोति।**

एवञ्च विविधशिक्षाशास्त्रीयव्यूहानाम् अववोधने सहायतं करोति। **कक्षायाम् अध्यापकैः** व्यवहृतानां विविधप्राविधिकोपकरणानां प्रभावः **कथमस्ति** तदधिगन्तुं सहायतां करोति। इतोऽपि **शिक्षणे यदा निर्दिष्टप्राविधिकोपकरणानाम् उपयोगं भवति तदा** शिक्षणे **अधिगमे** च कियत् परिवर्तनम् आयाति तदपि अनेन अनुभूयते।

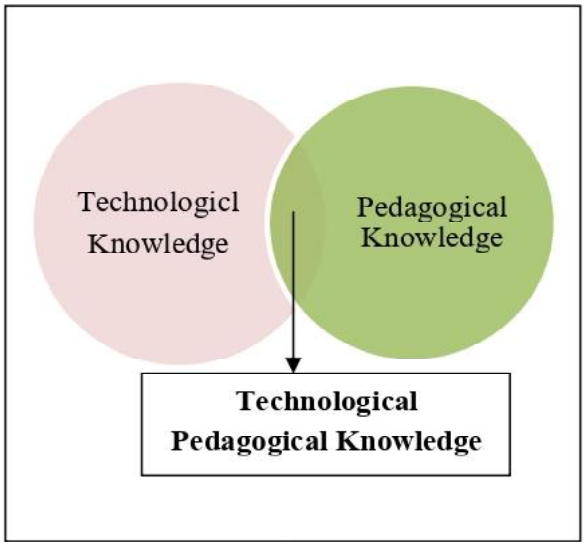

7. प्राविधिक- शिक्षाशास्त्रीयविषयज्ञानम् (TPACK-Technological Pedagogical And Content Knowledge)

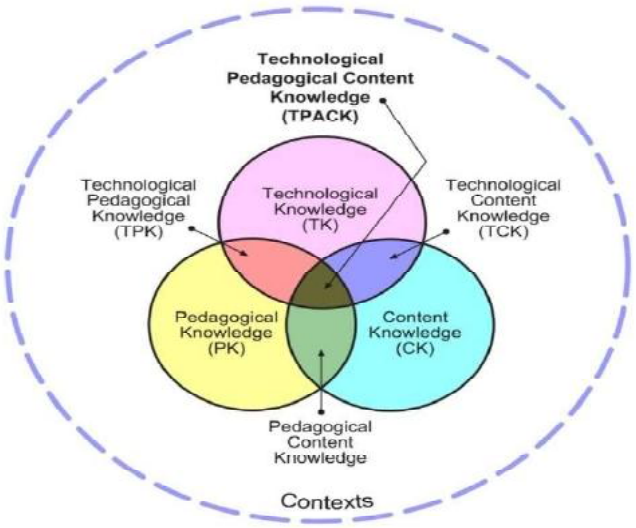

TPACK Framework
Source : http //tpack.org

चित्रे त्रयाणां ज्ञानानां संमिश्रणेन TPACK- प्रदर्शितम् । अत्र T=Technological Knowledge, P=Pedagogical Knowledge And C= Content Knowledge वोध्यते। एतानि प्राविधिक-शिक्षाशास्त्रीयविषयज्ञानम् अन्तर्भवति। शिक्षकैः कस्मिन्नपि विषयशिक्षणे प्रविधिना सह विषयस्य एकीकरणस्य ज्ञानं भवति प्राविधिक- शिक्षाशास्त्रीय-विषयज्ञानम्। शिक्षकस्य समीपे एतेषां समन्वयीकरणं ज्ञानमावश्यकम् । शिक्षणे शिक्षणाधिगमप्रक्रियाद्वयं सरलं, प्रभावपूर्णं, आकर्षकं च करणार्थं विषयज्ञान-शिक्षाशास्त्रीयज्ञानाभ्यां सह प्राविधिकज्ञानम् एकीकरणीयम् TPACK- इति प्रतिमानं वोधयति।

निष्कर्षः (Conclusion)

अतः अस्माभिः एवं ज्ञायते शिक्षणे शिक्षकाणां कृते, अधिगमे छात्राणां कृते TPCK/TPACK - इत्यस्य अधिकं महत्वं वर्तते। एकविंशशताब्दौ प्रविधेः एकीकरणस्य एकः सिद्धान्तः भवति TPACK श्रेणीकक्षायां शिक्षकैः व्यवहृतानां शिक्षणप्रविधीनां वास्तवायितायाः उपरि अयं वलं ददाति। यदि TPACK- इति प्रारूपं शिक्षणे अनुसृयते तर्हि शिक्षणमधिकं प्रभावशीलम् आकर्षकञ्च भवति। अनेन छात्राः किमपि कार्यं सक्रियरूपेण कुर्वन्ति, परिणामोऽपि उत्तमः भवति। वयं एव पश्यामः यत्, शिक्षकः यदि कक्षायां TPACK-प्रारूपं सम्यगरूपेण प्रयोगं करोति तर्हि कक्षावातावरणं शिक्षक-छात्राभ्यां कृते आनन्ददायकं भवति।

REFERENCES

- MishraP. & Koehler, M.J.(2006). Tecnological pedagogical content knowledge: A framework for teacher knowledge.
- Mishra Ramakanta. (2013). शैक्षिकप्रविधिः Chaukhamba Publication Uttar, New Delhi 110002.
- Arulsamy S., Zayapragassarazan Z. , Lalithama M.S. "Teaching Skills and Srategies , NeelkamalPublication Pvt. Ltd. , New Delhi.
- Mangal,S.K. & Mangal,U.(2019). Essential of Educational Technology,PHI Learning, New Delhi.
- https://youtu.be/h6akv3ygaTM?si=IS2oaq16LQeloxzf
- https://youtu.be/KRR1CwkOHAK?si=Kmq4C3I30Xg8ZyIf

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2025 Page No. : 228-234

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

PROBLEM OF CHILD LABOUR IN INDIA IN INFORMAL AND UNORGANISED SECTORS AND LAWS: ISSUES AND CHALLENGES

Dr. Mukta Verma

Assistant Professor, Faculty of Law, University of Allahabad Prayagraj, U.P.

Abstract :

Child labour continues to be a socio-legal menace in India, particularly in the vast and unregulated informal and unorganised sectors. Despite constitutional safeguards under Article 24 and the enactment of the Child and Adolescent Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986, children are routinely employed in sectors such as agriculture, domestic work, construction, bidi-making, and small-scale manufacturing. It highlights the limited reach of key labour statutes, including the Factories Act, Minimum Wages Act, and the recently enacted labour codes primarily designed for formal workplaces. The informal nature of employment, absence of contracts, lack of registration, and poor inspection infrastructure allow exploitative practices to continue unchecked. By drawing on legal analysis, recent judgments, international standards (such as ILO Conventions), and government reports, this study argues that child labour in the informal sector is not merely a socio-economic problem but a legal failure of employment law frameworks. It recommends structural reforms aimed at integrating informal workers into the protective scope of employment law, enhancing inspection and monitoring mechanisms, and ensuring convergence with educational and social welfare policies. A rights-based, child-centric approach to employment regulation is essential for eliminating child labour and upholding the dignity and future of India's children.

Keywords : Child Labour, Informal Sector, Employment Law, Legal Enforcement Gaps, Child Labour Act 2016, child rights in India.

1. The Problem of Child Labour in India

1.1. Introduction :

India's narrative in the 21st century is one of a striking, almost jarring, paradox. It is a nation

celebrated for its rapid economic ascent and a burgeoning youth population, yet this story of progress is haunted by the silent, relentless exploitation of its most vulnerable citizens: its children. Millions of them remain ensnared in labour, their childhoods sacrificed at the altars of agriculture, domestic service, and countless unregulated workshops. This paper examines the menace of child labour, particularly within the vast, shadowy realms of the informal and unorganised sectors, is not simply a tragic byproduct of poverty. Rather, it represents India's legal architecture's deep and systemic failure. Despite a robust Constitution and a dedicated statute, the Child and Adolescent Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986, the legal framework is riddled with deficiencies that, when combined with a near-total collapse of enforcement, render its protections meaningless for those who need them most. This study will therefore dissect the legislative regime, its flawed amendments, the role of the judiciary, and the monumental enforcement challenges to argue that anything less than a rights-based, child-centric legal overhaul will fail to dismantle this national shame.

1.2. Position of Child Labour in the Informal and Unorganised Sectors :

The problem of child labour in India is may be due the nature of its economy. The informal, or unorganised, sector is not a fringe element; it is the behemoth that employs over 90% of the nation's workforce. Characterised by a lacks legal recognition, formal contracts, social security, and adherence to labour statutes this sector is a world away from the regulated environments for which our laws were designed. It stretches from the vast agricultural plains where children toil alongside their parents, to the anonymity of urban homes where they serve as domestic help, and into the dimly lit, unregistered workshops that churn out goods for global supply chains. It is within this sprawling, unregulated space that the vast majority of India's child labourers are lost. The International Labour Organization (ILO) has repeatedly drawn attention to this reality. Employers in this sector operate with a sense of impunity, knowing full well that the state's inspection machinery is ill-equipped and often unwilling to venture into these hidden domains of work.

1.3. Meaning and Contents of Child Labour :

The very concept of 'child labour' has been a contested terrain in policy circles. The international consensus, articulated in ILO Convention C182, defines it as any work that is dangerous to a child's mental, physical, or social development, or that interferes with their schooling. Indian law, however, has often clung to a perilous distinction between 'child work' and 'child labour', permitting activities deemed non-hazardous. This is a false dichotomy. Work that may appears benign on the surface such as assisting in a family shop becomes deeply exploitative when it robs a child of the time and energy needed for education, play, and rest. The 2016 amendment to the primary child labour law dangerously broadened this loophole, giving legal sanction to what is often disguised exploitation. From a rights-

based perspective, therefore, any work that infringes upon a child's fundamental rights under Articles 21 (Right to Life) and 21A (Right to Education) must be treated as unacceptable labour.

2. The Socio-Economic and Legal Aspects on Child Labour

2.1. Factors responsible for Child Labour :

One cannot, of course, ignore the crushing socio-economic realities that propel children into work. Persistent poverty is, without question, the most powerful driver. For millions of families trapped in a cycle of deprivation, a child's income is not supplemental but essential for survival. The statutory bodies like the National Commission for Protection of Child Rights (NCPCR) have consistently demonstrated this grim correlation between household poverty and the prevalence of child labour. The education system, meant to be the great equaliser, often acts as another powerful factor. The promise of free and compulsory education, enshrined in the Right to Education Act of 2009, remains unfulfilled for many. Crumbling infrastructure, a shortage of qualified teachers, and a curriculum that seems disconnected from the realities of their lives lead to high dropout rates, pushing children directly from the classroom into the workforce. Add to this the deeply entrenched social norms that legitimise child work, especially for girls who are often steered towards domestic chores and sibling care, and the scale of the challenge becomes apparent.

2.2. International Law on Child Labour :

India's commitment to curb child labour is not just a domestic policy goal; it is an international legal obligation. As a signatory to the UN Convention on the Rights of the Child (UNCRC), India is bound to uphold the best interests of the child as a primary consideration in all actions. More specifically, India has ratified the two cornerstone ILO Conventions on child labour: Minimum Age and Worst Forms of Child Labour. Ratifying these instruments is not a symbolic gesture; it legally binds the state to harmonise its national laws with these global standards. Convention 182, for instance, demands immediate and effective measures to eliminate the worst forms of child labour, a category that includes all forms of slavery, trafficking, and work which, by its nature, is likely to harm the health, safety or morals of children. Yet, as we will see, a chasm exists between India's commitments on the world stage and the reality of its domestic legal framework, particularly in its narrow and outdated definition of what constitutes hazardous work.

3. Constitutional Measures and Legislation on Child Labour :

3.1. Provisions of the Indian Constitution to Protect Child Labour :

The framers of the Indian Constitution envisioned a nation where childhood will be protected. This vision is enshrined in Article 24, which unequivocally states: No child below the age of fourteen years shall be employed to work in any factory or mine or engaged in any other hazardous employment.

This is not a directive principle; it is an enforceable fundamental right. The Supreme Court of India, in its finer moments, has breathed life into this provision by connecting it to the very heart of the Constitution. In the celebrated case of *Unni Krishnan, J.P. v. State of Andhra Pradesh*, the Court declared that the right to education was an integral part of the Right to Life under Article 21. This judicial insight paved the way for the 86th Amendment, which inserted Article 21A and made education a fundamental right. The judiciary's message was clear: a child's right to a life of dignity is inseparable from their right to be in school and free from labour.

3.2. The Child and Adolescent Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986 :

The Child Labour (Prohibition and Regulation) Act of 1986 stood as the primary legislative instrument. The Act, however, was built on a flawed premise. It adopted a bifurcated strategy: it prohibited the employment of children in a list of specified hazardous occupations, but merely regulated their working conditions in all other sectors. This approach was fundamentally problematic. By regulating child labour in so-called non-hazardous work, the law was, in effect, legitimising it. It sent a message that some forms of child labour were acceptable, failing to grasp that the very denial of a normal childhood is a harm in itself. Furthermore, its schedule of hazardous processes was notoriously incomplete, leaving out scores of dangerous activities, especially in agriculture and the services sector, where the majority of children worked. The Act was a product of compromise, a regulatory framework in a field that demanded outright abolition.

4.0 An Analysis of the 2016 Amendment of Child Labour Act :

The 2016 amendment to the Child Labour Act was touted as a landmark reform. It introduced, on paper, a complete ban on all forms of employment for children under age of 14. This seemingly progressive move, however, was immediately undone by two devastating exceptions. The first, and most damaging, is a provision that allows a child to help their family or family enterprise after school hours or during vacations, as long as the work is not hazardous. This clause was met with dismay by child rights activists, including the Bachpan Bachao Andolan (BBA), who rightly saw it as a catastrophic step backwards. It is a loophole large enough to drive a truck through. So much of India's informal economy from bidi-rolling and carpet weaving to gem polishing is structured around home-based, family-run units. These spaces are impenetrable to labour inspectors, making it impossible to verify working conditions or hours. The provision, in effect, sanitises exploitation, rebranding it as family help and pushing millions of children deeper into the shadows, beyond the law's reach. The second exception for child artists similarly opens the door to abuse in an industry known for its lack of regulation.

4.1 An analysis of Labour Law in the present socio-legal scenario :

The failure is not confined to the primary child labour law. The broader ecosystem of Indian employment law has consistently ignored the informal sector. Foundational statutes like the Factories Act, 1948, and the Minimum Wages Act, 1948, were written for a different era and a different kind of economy. Their application is triggered by thresholds such as number of workers, the use of power that the vast majority of informal units are designed to fall under. A child working in a small roadside dhaba or as a domestic helper is invisible to these laws, with no legal claim to minimum wages, fixed working hours, or safe conditions. Even the recent, much-publicised consolidation of labour laws into four Codes does little to change this. The Code on Social Security, 2020, and the Occupational Safety, Health and Working Conditions Code, 2020, largely carry over the old threshold-based system, thus perpetuating the historic exclusion of the very workers who are most in need of protection.

5. The Role of the Judiciary :

5.1. Judicial Interventions for Child Labour :

In the void left by legislative and executive failure, it has often been the judiciary that has held up the torch for children's rights. The Supreme Court's judgment in *M.C. Mehta v. State of Tamil Nadu* stands as a powerful example of this judicial activism. The Court did not just condemn child labour; it laid down a detailed blueprint for action. It ordered the creation of a Child Labour Rehabilitation-cum-Welfare Fund in every district, to be financed by fines levied on guilty employers and matching contributions from the state. Similarly, in *Bandhua Mukti Morcha v. Union of India*, the Court interpreted the prohibition of forced labour under Article 23 expansively, a ruling with huge implications for the countless children trapped in debt bondage. These judgments were pivotal in shifting the discourse from one of mere welfare to one of inalienable rights.

5.2. The Limits of Judicial Activism :

Judicial intervention has its limits. The unfortunate reality is that the powerful directives issued by the courts have largely been ignored in practice. The ambitious scheme laid out in the *M.C. Mehta* case remains unimplemented or poorly implemented in many parts of the country. The welfare funds, where they exist, are often underfunded and mismanaged. This exposes the fundamental limitation of judicial intervention: the courts can pronounce the law, but they do not command the administrative machinery required to enforce it on the ground. The wide gulf between the Supreme Court's vision and the grim reality for a child labourer illustrates that court orders alone cannot solve a problem so deeply entrenched in our social and economic fabric.

6.0 Role of Social Welfare: Importance of Policies :

6.1. Role of Rehabilitation and Rescue Efforts :

The government's main rehabilitation program, the National Child Labour Project (NCLP), is built around the idea of weaning children away from hazardous work and transitioning them into formal schools via special bridge centres. While the intent is laudable, the project's track record is mixed at best. Independent evaluations and CAG reports have pointed to a host of problems: dilapidated infrastructure in NCLP schools, a lack of motivated and qualified teachers, and a curriculum that fails to hold the children's interest. Consequently, many rescued children eventually drop out and relapse into labour because the root cause their family's poverty remains unaddressed. Rescue without meaningful and sustained rehabilitation is a revolving door, not a solution.

6.2. The Disconnect between Labour, Education, and Social Welfare Policies :

Perhaps the most frustrating failure is the state's inability to connect the dots. The various ministries that are supposed to protect children Labour, Education, Women and Child Development operate in their own bureaucratic silos. There is a stunning lack of convergence. A child might be rescued by the Labour Department, but if that action is not followed by immediate enrolment in a quality school and the provision of social support to their family, the rescue is meaningless. An effective strategy demands a seamless continuum of care that links law enforcement with the Right to Education Act, the Integrated Child Protection Scheme (ICPS), and social security programmes like MGNREGA. Without this holistic, integrated approach, our efforts will continue to be fragmented, inefficient, and ultimately, ineffective.

7.0 Reimagining Legal and Policy Frameworks :

7.1. Towards a Uniform and Inclusive Definition :

The first order of business must be to fix the broken law. This requires abandoning the ambiguous and dangerous exceptions introduced in 2016. The law must be amended to repeal the clause permitting work in family enterprises. The location of work is irrelevant; what matters is its impact on the child. We need a clear, uniform definition of 'child' and 'hazardous work' that is in line with our international commitments, one that recognises that any work that denies a child an education and a healthy upbringing is inherently hazardous.

7.2. Structural Reforms to Employment Law :

Tackling child labour in the informal sector demands that we finally find a way to bring this sector under the rule of law. The old, threshold-based models of our labour laws are obsolete. We need creative thinking about how to regulate the informal economy perhaps through universal registration of all businesses, regardless of size, coupled with a simplified compliance system that does not place an undue burden on small entrepreneurs. The objective must not be to exempt the informal sector, but to find intelligent ways to formalise it and extend legal protections to all workers

within it.

7.3. Strengthening Enforcement and Monitoring :

The enforcement system needs to be rebuilt form the ground up. This means hiring a vastly larger number of labour inspectors, training them properly, and giving them the resources and autonomy to do their jobs without fear or favour. But state action alone will not be enough. We must institutionalise community-based monitoring, empowering local bodies like Panchayats and School Management Committees to act as the eyes and ears of the system. These local institutions are far better positioned to identify and report child labour than any distant inspectorate.

Conclusion :

The continued existence of child labour on such a massive scale is a scar on the conscience of our nation. It is an indictment of a system that has failed its most vulnerable. It is the failure of a legal framework that is full of holes, and the failure of an enforcement regime that is, for millions of children, entirely absent. The 2016 amendment, far from fixing the problem, tragically deepened the crisis by providing legal cover for exploitation within the home.

The only way forward is through a fundamental shift in our approach. We must move decisively from a weak, regulatory, welfare-based model to a strong, abolitionist, rights-based one. This means amending the law to close the loopholes, reforming our labour statutes to embrace the informal sector, and building an enforcement ecosystem which should be robust and accountable. The choice is clear to continue with a broken system that condemns millions to a lost childhood, and moral courage to ensure that every child in India is in a classroom, not a workshop. The future of our nation depends on it.

REFERENCES :

1. The Occupational Safety, Health and Working Conditions Code, 2020 (Act No. 37 of 2020).
2. International Labour Organisation, *Strengthening Labour Inspection Systems in India* (ILO Decent Work Team for South Asia, 2015).
3. National Crime Records Bureau, *Crime in India 2022* (Ministry of Home Affairs, Government of India, 2023).
4. P.K. Sahu, "Child Labour in India: A Critical Analysis of Magnitude, Determinants, and Policies", 45(4) *Indian Journal of Labour Economics* 789-801 (2002).
5. Comptroller and Auditor General of India, *Performance Audit of the National Child Labour Project Scheme*, Report No. 19 of 2013 (Ministry of Labour and Employment).
6. The Child and Adolescent Labour (Prohibition and Regulation) Amendment Act, 2016, S. 3.
7. Bachpan Bachao Andolan, *Critique of the Child Labour (Prohibition and Regulation) Amendment Bill, 2016*, available at: https://bba.org.in/resource/critique-of-the-child-labour-prohibition-and-regulation-amendment-bill-2016/

Email-mktverma6@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

परिचय

डॉ. कोमल सिंह (प्राचार्य)

श्री गुरु माधवानन्द प्रतिभा महाविद्यालय, रूपबास, भरतपुर (राज.)

E-MAIL : komalgeography123@gmail.com

मोबाईल - 9414655624

पिता का नाम - श्री भंवर सिंह

माता का नाम - श्रीमती प्रेमवती

जन्म दिनांक - 25 सितम्बर 1979

निवास - ग्राम-नरहौली, पोस्ट-अडुकी, जिला-मथुरा (उ.प्र.)

शिक्षा - एम.ए., पी.एच.डी. (भूगोल) डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

अन्य - एन.सी.सी. 'C' प्रमाण पत्र

अभिरुचि - किताब लिखना, पढ़ना एवं अध्ययन, अध्यापन।

सम्मान -

1. राष्ट्रिय शिक्षक सम्मान-2018 (स्वामी इंद्रवेश विद्यापीठ, आश्रम ग्राम- टीटोली, रोहतक, हरियाणा)
2. गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर स्मृति सम्मान-2023, ऋषि वैदिक साहित्य पुस्तकालय (रजि.) फतेहाबाद, आगरा (उ.प्र.)
3. डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भारतीय रत्न सम्मान-2024, वर्थी वेलनेस फाउंडेशन
4. स्वामी विवेकानन्द प्रेरणा सम्मान-2024, STARTUP SHIKSHA FOUNDATION, DELHI.
5. विश्व रत्न सम्मान-2024, WORTHI WELLNESS FONDATION, LUCKNOW.

पुस्तक प्रकाशन -

1. विश्व का प्रादेशिक भूगोल, 2. नगरीय भूगोल, 3. कृषि भूगोल, 4. सामाजिक भूगोल, 5. भू-आकृति विज्ञान, 6. पर्यटन का भूगोल, 7. आर्थिक भूगोल, 8. झारखण्ड का भूगोल, 9. भारत का भूगोल, 10. मानचित्रिय कला की तकनीके, 11. प्रादेशिक नियोजन एवं विकास, 12. ग्रामीण विकास, 13. भूगोल पर्यावरण, आपदा प्रबंध एवं जलवायु परिवर्तन, 14. तीन उत्तरी महाद्वीपों का भूगोल, 15. पर्यावरणीय प्रबंध।

पत्रिका संपादन -

ज्योतिष शास्त्र : विविध आयाम विशेषांक, बोहल शोध मंजूषा VOL 20, ISSUE-6 DEC. 2024 ISSN No. : 2395-7115

शोध पत्र- 18 शोध पत्र विभिन्न राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं एवं जर्नलों में प्रकाशित।

सेमीनार एवं कॉन्फ्रेंस - विभिन्न राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनारों/वेबीनारों/कॉंफ्रेंसों में मुख्य वक्ता के रूप में सहभागिता

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर नीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395-7115